ॐ

परमात्मने नमः

प्रवचन सुधा

(भाग-१)

(श्री 'प्रवचनसार' शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन)

(गाथा १-२०)

प्रकाशक

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

भावनगर

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

५८०, जूनी माणेकवाड़ी,
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग,
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) २५१५००५

श्री कुन्दकुन्दकहान परमागम प्रवचन ट्रस्ट

१७३/१७५, मुंबादेवी रोड़, मुंबई-४०० ००२

पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट

कहान नगर, लाम रोड़
देवलाली-४२२ ४०१

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट

`विमलांचल' हरिनगर
अलीगढ़
फोन : (०५७१) ४१००१०/११/१२

प्रथमावृत्ति प्रत : १००० (पूज्य भाईश्री शशीभाई की ७४वीं जन्मजयंती)
पृष्ठ संख्या : ८ + २६० = २६८
लागत मूल्य : ६५/-
विक्री मूल्य : १५/-

टाईप सेटिंग :

पू□ा इम्प्रेशन्स

प्लोट नं. १९२४-बी,
६, शांतिनाथ बंगलोझ,
शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी सर्कल,
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) २५६१७४९

मुद्रक :

□ागवती ऑफसेट

१५/सी, बंसीधर मिल कंपाउन्ड
बारडोलपूरा,
अहमदाबाद
फोन : ९८२५३२६२०२

ACKNOWLEDGEMENT

We sincerely express our gratitude to **“Shree Vitrag Sat Sahitya Prakashak Trust, Bhavnagar”** from where we have sourced **“Pravachan Sudha Part-01”** (Pravachans on Shree **Pravachansaar** by Pujya Shree Kanji Swami)

“Shree Vitrag Sat Sahitya Prakashak Trust, Bhavnagar” have taken due care, However, if you notice any inconsistency or error, you may please address your suggestions to info@vitragvani.com & jain92002@yahoo.com .

प्रकाशकीय

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत पंच परमागमों में `प्रवचनसार' शास्त्र `द्वितीय श्रुतस्कंध' के सर्वोत्कृष्ट आगमोंमें से एक है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का महिमा दर्शित करते हुए कई शिलालेख आज भी मौजूद हैं। उनके लिखे हुए शास्त्र साक्षात् गणधरदेव के वचनों समान प्रमाणभूत माने जाते हैं।

महाविदेहक्षेत्र में विद्यमान त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञ परम देवाधिदेव श्री सीमंधर भगवान की प्रत्यक्ष दिव्य देशना सुनकर भरत में आकर भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कई शास्त्रों की रचना की है। जिनशासन के कई प्रमुख सिद्धांतों के बीज इस `प्रवचनसार' शास्त्र में रहे हैं। पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस शास्त्र के प्रवचनों में फरमाते हैं कि - `प्र' + वचन + सार। प्र अर्थात् दिव्यवचन। जो दिव्यध्वनि - तीनलोक के नाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि - जो ॐ ध्वनि - वह यहाँ कहते हैं। अतः यह `प्रवचनसार' ग्रंथ भगवान श्री सीमंधरस्वामी का दिव्य संदेश ही है। तीन विभाग में विभाजित इस ग्रंथ में वस्तुस्वरूप को समझाते मूलभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ है। जो कि मुमुक्षुजीव को महामिथ्यात्वरूपी अंधकार को नष्ट करने के लिये दिव्य प्रकाश के समान ही है ।

महामिथ्यात्व से प्रभावित इस दुषमकाल में ऐसे सर्वोत्कृष्ट परमागमों के सिद्धांतों का समझना अज्ञानीजीवों का कहाँ सामर्थ्य था ? परंतु भरतक्षेत्र के अहोभाग्य से और भव्यजीवों को तारने के लिये, इस मिथ्यात्व के घोर तिमिर को नष्ट करने के लिये एक दिव्य प्रकाश हुआ ! वे हैं कहान गुरुदेव !! पूज्य गुरुदेवश्री इस काल के एक अजोड रत्न हैं ! जिन्होंने स्वयं की ज्ञानप्रभा से गूढ़ परमागमों के रहस्यों को खोला। जिनके घर में आगम उपलब्ध थे उनमें भी आगमों का रहस्य खोलने की शक्ति नहीं थी, ऐसे इस दुषमकाल में पूज्य गुरुदेवश्री के परम प्रभावना के योग से घर-घर में मूलभूत परमागमों का स्वाध्याय करने की प्रणालिका शुरू हुई। द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद्-व्यय-ध्रौव्य, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त आदि अनेकानेक वस्तुस्वरूप को स्पष्ट करते हुए सिद्धांतों को पूज्य गुरुदेवश्री ने प्रकाशित किये।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन के वचनानुसार `पूज्य गुरुदेवश्री इस काल का एक आश्चर्य ही है। पूज्य गुरुदेवश्री को श्रुत की लब्धि थी। पंचमकाल में निरंतर अमृतझरती गुरुदेव की वाणी भगवान का विरह भूलाती है।' आदि कई बहुमानदर्शित वचन पूज्य गुरुदेवश्री की असाधारण प्रतिभा को व्यक्त करते हैं।

ऐसे भवोदधितारणहार, निष्कारण करुणाशील, अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री ने कई मूल

परमागमों के ऊपर प्रवचन देकर दिव्य अमृतधारा बरसायी है। उन कई शास्त्रोंमें से एक `प्रवचनसार' जैसे गूढ़ परमागम के ऊपर किये हुए गुरुदेवश्री के प्रवचनों को **`प्रवचन सुधा'** के रूप में प्रकाशित करने का महान सौभाग्य `वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट' को संप्राप्त हुआ है। `प्रवचनसार' शास्त्र के ऊपर पूज्य गुरुदेवश्री के कुल मिलाकर २७४ प्रवचन हुए हैं। मूल परमागम तीन अधिकार में विभाजित है। उसमें दूसरे अधिकारों का विभाग करने में आया है। जो `प्रवचनसार' शास्त्र की अनुक्रमणिका में दिया गया है। तदनुसार २७४ प्रवचनों को कुल ११ भाग में प्रकाशित किये जायेंगे। इन प्रवचनों के प्रथम भाग में कुल १६ प्रवचन हैं। जिसमें १ से २० गाथाओं का समावेश किया गया है। गाथा १३ से २० `शुद्धोपयोग अधिकार' के शीर्षक अंतर्गत की गई हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ के स्वाध्याय में सरलता रहे इस हेतु मूल सूत्रकार श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्राकृत गाथाएं, सूत्र टीकाकार आचार्य भगवान श्रीमद् भगवत् अमृतचंद्रआचार्यदेव की `तत्त्वप्रदीपिका' टीका और श्रीमद् भगवत् जयसेनाचार्यदेव की `तात्पर्यवृति' टीका संस्कृत में दी गई है। तदुपरांत गुजराती हरिगीत और टीका भी दी गई हैं।

समादरणीय, सिद्धांनिष्ठ, जिनवाणी रहस्यज्ञ पूज्य भाईश्री `शशीभाई' के मार्गदर्शन तले यह प्रथम `प्रवचन नवनीत' (भाग १ से ४) प्रकाशित करने में आया है। उसीप्रकार इन प्रवचनों के संकलन में भी पूरा ध्यान रखकर पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी अक्षरशः रहे और भावों का प्रवाह भी यथावत् रहे ऐसा प्रयास करने में आया है। पूज्य गुरुदेवश्री के सभी प्रवचन प्रकाशित हो ऐसी उनकी भावना थी। तदर्थ सभी प्रवचन Computer में पुस्तकाकार के रूप में आ जाये ऐसी भी उनकी शोध चलती थी। यह बात उनकी पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति की भक्तिभावना को प्रदर्शित करती है। अतः उनकी इस भावनानुसार यह कार्य करने में आता है। अतः इस प्रसंगपर उनके उपकार को स्मरण में लेकर उनके चरण में वंदन करते हैं।

`वीतराग सत् साहित्य ट्रस्ट' की नीति के अनुसार इन प्रवचनों को प्रथम ऑडियो केसेट पर से अक्षरशः लिख लिये जाते हैं। बाद में इन प्रवचनों को केसेट पर से सुनते-सुनते संपादन करने में आते हैं। वाक्यरचना को पूर्ण करने के लिये कौंस भी भरे जाते हैं। पूर्णरूप से प्रवचन तैयार होने के बाद फिर से एकबार अन्य मुमुक्षु के द्वारा उसे केसेट के साथ मिलान किया जाता है। ताकि किसी भी प्रकार की क्षति न रह जाये।

इस ग्रंथ के कुल मिलाकर १३ प्रवचन श्री हेमंतभाई गांधी, सोनगढ की ओर से तैयार मिले हैं। तदर्थ उनके हम आभारी हैं। ऑडियो केसेट पर से अक्षरशः प्रवचनों

को लिखने के लिये श्री कनुभाई लक्ष्मीचंद शाह, अहमदाबाद और कु. नीताबहिन जयेन्द्रभाई, शाह भावनगर के हार्दिक आभारी हैं। `प्रवचन सुधा' भाग-१ में प्रकाशित इन प्रवचनों का गुजराती से हिन्दी अनुवाद करने के लिये श्री दीपकभाई महेता, भावनगर के हम आभारी हैं। इन प्रवचनों के प्रकाशनार्थ अन्य जिन जिन मुमुक्षुओं का सहयोग मिला है उनके भी हम आभारी हैं। टाईप सेटिंग के लिये `पूजा इम्प्रेशन्स' का और सुंदर मुद्रण कार्य के लिये `भगवती ऑफसेट' के आभारी हैं।

इन प्रवचनों के अनुवाद कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भी क्षति रही हो तो सर्व जिनेन्द्रभगवंतों की, आचार्यभगवंतों की, जिनवाणीमाता की तथा सर्व सत्पुरुषों की शुद्ध अंतःकरणपूर्वक क्षमा याचते हैं। पाठकवर्ग से यह विनती है कि, अनुवाद-कार्य में कोई क्षति दिखे तो हमें मालूम करें। अंत में इन प्रवचनों की दिव्य देशना को अंतरंग में ग्रहण करके सर्व जीव आत्महित को शीघ्र प्राप्त हो, ऐसी भावना भाते हैं।

भावनगर
कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा, दि-०५-११-२००६
(श्रीमद् राजचंद्र जन्मजयंती दिवस)

ट्रस्टीगण
वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का मुमुक्षु समाज अधिक लाभ लेवें इस हेतु से एक मुमुक्षु परिवार, मुंबई की ओर से विशेष आर्थिक सहयोग प्राप्त होने से इस ग्रंथ की कीमत कम रखी गई है।

प्रवचन सुधा भाग-१ के प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशि

श्रीमती चंद्रिकाबहन शशीकान्तभाई शेठ, भावनगर	११,०००/-
श्री कपुरचंद बेलारी (कर्णाटक)	५,०००/-
श्रीमती ललीतादेवी (तेजपुर)	३,१००/-
श्री हुकमचंद सुमेरचंद (इन्दौर)	१,०००/-

प्रवचन अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रम	विषय	दिनांक	पृष्ठ
०१.	गाथा १-५	७-१-१९७९	००८
०२.	गाथा १-५	८-१-१९७९	०२२
०२.	गाथा ६	८-१-१९७९	०३४
०३.	गाथा ६	९-१-१९७९	०३६
०३.	गाथा ७	९-१-१९७९	०४३
०४.	गाथा ७	१०-१-१९७९	०५१
०४.	गाथा ८	१०-१-१९७९	०५४
०४.	गाथा ९	१०-१-१९७९	०५६
०५.	गाथा ९	११-१-१९७९	०६९
०५.	गाथा १०	११-१-१९७९	०७३
०६.	गाथा १०	१२-१-१९७९	०८६
०६.	गाथा ११	१२-१-१९७९	०९९
०७.	गाथा ११	१२-१-१९७९	१००
०७.	गाथा १२	१२-१-१९७९	११३
०७.	गाथा १३	१२-१-१९७९	११६
०८.	गाथा १३	१४-१-१९७९	११७
०८.	गाथा १४	१४-१-१९७९	१२९
०९	गाथा १४	१५-१-१९७९	१३२
०९	गाथा १५	१५-१-१९७९	१४४
१०	गाथा १५	१६-१-१९७९	१४७
१०	गाथा १६	१६-१-१९७९	१५८
११	गाथा १६	१७-१-१९७९	१६५
१२	गाथा १६	१८-१-१९७९	१७८
१३	गाथा १६	१९-१-१९७९	१९२
१४	गाथा १६	२०-१-१९७९	२०५
१४	गाथा १७	२०-१-१९७९	२०७
१५	गाथा १७	२१-१-१९७९	२२१
१५	गाथा १८	२१-१-१९७९	२२५
१६	गाथा १८	२२-१-१९७९	२३६
१६	गाथा १९	२२-१-१९७९	२४१
१६	गाथा २०	२२-१-१९७९	२४६

श्री सद्‌गुरुदेव स्तुति

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो ! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

अहो ! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुन्दना !
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजलंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

हैयुं 'सत् सत्, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
-रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेन्द्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

नित्ये सुधाझरण चंद्र ! तने नमुं हूँ,
करुणा अकारण समुद्र ! तने नमुं हूँ;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ ! तने नमुं हूँ,
आ दासना जीवनशिल्पी ! तने नमुं हूँ।

ऊँडी ऊँडी, ऊँडेथी सुखनिधि सत्‌ना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति ! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊँडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी !

श्री सर्वज्ञवीतरागाय नमः

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः।।१।।
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान्।।२।।
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रुगुरुवे नमः।।३।।

।। श्रीपरमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः।।

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री समयसारनामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्यश्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचितं, श्रोतारः सावधानतया श्रृणवन्तु।।

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।१।।
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्।।२।।

☸ ☸ ☸

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः।

नमोऽनेकान्ताय।

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीतः

श्री

प्रवचनसारः

१

ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन

श्रीमदमृतचन्द्रसूरिकृततत्त्वप्रदीपिकावृत्तिः।

(अनुष्टुभ्)

सर्वव्याप्येकचिद्रूपस्वरूपाय परात्मने।
स्वोपलब्धिप्रसिद्धाय ज्ञानानन्दात्मने नमः।।१।।

श्रीजयसेनाचार्यकृततात्पर्यवृत्तिः।

नमः परमचैतन्यस्वात्मोत्थसुखसम्पदे।
परमागमसाराय सिद्धाय परमेष्ठिने।।

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत मूल गाथाओं और श्रीमद् अमृतचन्द्रासूरिकृत तत्त्वप्रदीपिका नामक टीकाका

हिन्दी भाषानुवाद

[सर्व प्रथम, ग्रंथके प्रारंभमें श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित प्राकृत गाथाबद्ध श्री प्रवचनसार नामक शास्त्रकी `तत्त्वप्रदीपिका' नामक संस्कृत टीकाके रचयिता श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव उपरोक्त श्लोकोंके द्वारा मंगलाचरण करते हुए ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्माको नमस्कार करते

(अनुष्टुभ्)

हेलोल्लुप्तमहामोहतमस्तोमं जयत्यदः
प्रकाशयज्जगत्तत्त्वमनेकान्तमयं महः ।।२ ।।

(आर्या)

परमानन्दसुधारसपिपासितानां हिताय भव्यानाम् ।
क्रियते प्रकटिततत्त्वा प्रवचनसारस्य वृत्तिरियम् ।।३ ।।

अथ प्रवचनसारव्याख्यायां मध्यमरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थायां मुख्यगौणरूपेणान्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्व-प्ररूपणसमर्थायां च प्रथमत एकोत्तरशतगाथाभिर्ज्ञानाधिकारः, तदनन्तरं त्रयोदशाधिकशतगाथाभिर्दर्शना-धिकारः, ततश्च सप्तनवतिगाथाभिश्चारित्राधिकारश्चेति समुदायेनैकादशाधिकत्रिशतप्रमितसूत्रैः सम्यग्ज्ञान-दर्शनचारित्ररूपेण महाधिकारत्रयं भवति। अथवा टीकाभिप्रायेण तु सम्यग्ज्ञानज्ञेयचारित्राधिकारचूलिका-रूपेणाधिकारत्रयम्। तत्राधिकारत्रये प्रथमतस्तावज्ज्ञानाभिधानमहाधिकारमध्ये द्वासप्ततिगाथापर्यन्तं शुद्धोपयोगाधिकारः कथ्यते। तासु द्वासप्ततिगाथासु मध्ये `एस सुरासुर-' इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण चतुर्दशगाथापर्यन्तं पीठिका, तदनन्तरं सप्तगाथापर्यन्तं सामान्येन सर्वज्ञसिद्धिः, तदनन्तरं त्रयस्त्रिंशद्गाथापर्यन्तं ज्ञानप्रपञ्चः, ततश्चाष्टादशगाथापर्यन्तं सुखप्रपञ्चश्चेत्यन्तराधिकारचतुष्टयेन शुद्धोपयोगाधिकारो भवति। अथ पञ्चविंशतिगाथापर्यन्तं ज्ञानकण्डिकाचतुष्टयप्रतिपादकनामा द्वितीयोऽधिकारश्चेत्यधिकारद्वयेन, तदनन्तरं स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन चैकोत्तरशतगाथाभिः प्रथममहाधिकारे समुदायपातनिका ज्ञातव्या।

इदानीं प्रथमपातनिकाभिप्रायेण प्रथमतः पीठिकाव्याख्यानं क्रियते, तत्र पञ्चस्थलानि भवन्ति; तेष्वादौ नमस्कारमुख्यत्वेन गाथापञ्चकं, तदनन्तरं चारित्रसूचनमुख्यत्वेन `संपज्जइ णिव्वाणं' इति प्रभृति गाथात्रयमथ शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयसूचनमुख्यत्वेन `जीवो परिणमदि' इत्यादिगाथासूत्रद्वयमथ तत्फलकथनमुख्यतया `धम्मेण परिणदप्पा' इति प्रभृति सूत्रद्वयम्। अथ शुद्धोपयोगध्यातुः पुरुषस्य प्रोत्साहनार्थं शुद्धोपयोगफलदर्शनार्थं च प्रथमगाथा, शुद्धोपयोगिपुरुषलक्षणकथनेन द्वितीया चेति `अइसयमादसमुत्थं' इत्यादि गाथाद्वयम्। एवं पीठिकाभिधानप्रथमान्तराधिकारे स्थलपञ्चकेन चतुर्दशगाथाभि-स्समुदायपातनिका। तद्यथा -

---

हैं :-]

अर्थ :- सर्वव्यापी (सबका ज्ञाता-दृष्टा) एक चैतन्यरूप (मात्र चैतन्य ही) जिसका स्वरूप है और जो स्वानुभव प्रसिद्ध है (अर्थात् शुद्ध आत्मानुभवसे प्रकृष्टतया सिद्ध है) उस ज्ञानानन्दात्मक (ज्ञान और आनन्दस्वरूप) उत्कृष्ट आत्माको नमस्कार हो।

[अब अनेकान्तमय ज्ञानकी मंगलके लिये श्लोक द्वारा स्तुति करते हैं :-]

अर्थ :- जो महामोहरूपी अंधकारसमूहको लीलामात्रमें नष्ट करता है और जगतके स्वरूपको प्रकाशित करता है ऐसा अनेकांतमय तेज सदा जयवंत है।

अथ खलु कश्चिदासन्नसंसारपारावारपारः समुन्मीलितसातिशयविवेकज्योतिरस्तमितसमस्तैकान्तवादाविद्याभिनिवेशः पारमेश्वरीमनेकान्तवादविद्यामुपगम्य मुक्तसमस्तपक्षपरिग्रहतयात्यन्तमध्यस्थो भूत्वा सकलपुरुषार्थसारतया नितान्तमात्मनो हिततमां भगवत्पञ्चपरमेष्ठिप्रसादोपजन्यां परमार्थसत्यां मोक्षलक्ष्मीमक्षयामुपादेयत्वेन निश्चिन्वन् प्रवर्तमानतीर्थनायकपुरःसरान् भगवतः पंचपरमेष्ठिनः प्रणमनवन्दनोपजनितनमस्करणेन संभाव्य सर्वारम्भेण मोक्षमार्गं संप्रतिपद्यमानः प्रतिजानीते -

---

अत कश्चिदासन्नभव्यः शिवकुमारनामा स्वसंवित्तिसमुत्पन्नपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतविपरीतचतुर्गतिसंसारदुःखभयभीतः, समुत्पन्नपरमभेदविज्ञानप्रकाशातिशयः, समस्तदुर्नयैकान्तनिराकृतदुराग्रहः, परित्यक्तसमस्तशत्रुमित्रादिपक्षपातेनात्यन्तमध्यस्थो भूत्वा धर्मार्थकामेभ्यः सारभूतामत्यन्तात्महितामविनश्वरां पंचपरमेष्ठिप्रसादोत्पन्नां मुक्तिश्रियमुपादेयत्वेन स्वीकुर्वाणः, श्रीवर्धमानस्वामितीर्थंकरपरमदेवप्रमुखान् भगवतः पंचपरमेष्ठिनो द्रव्यभावनमस्काराभ्यां प्रणम्य परमचारित्रमाश्रयामीति प्रतिज्ञां करोति -

---

[अब श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव श्लोक द्वारा अनेकांतमय जिनप्रवचनके सारभूत इस `प्रवचनसार' शास्त्रकी टीका करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं-]

अर्थ :- परमानन्दरूपी सुधारसके पिपासु भव्य जीवोंके हितार्थ, तत्त्वको (वस्तुस्वरूपको) प्रगट करनेवाली प्रवचनसारकी यह टीका रची जा रही है।

[इसप्रकार मंगलाचरण और टीका रचनेकी प्रतिज्ञा करके, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित प्रवचनसारकी पहली पाँच गाथाओंके प्रारम्भमें श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव उन गाथाओंकी उत्थानिका करते हैं।]

अब, जिनके संसार समुद्रका किनारा निकट है, सातिशय (उत्तम) विवेकज्योति प्रगट होगई है (अर्थात् परम भेदविज्ञानका प्रकाश उत्पन्न हो गया है) तथा समस्त एकांतवादरूप अविद्याका अभिनिवेश अस्त होगया है ऐसे कोई (आसन्नभव्य महात्मा श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य), पारमेश्वरी (परमेश्वर जिनेन्द्रदेवकी) अनेकान्तवादविद्याको प्राप्त करके, समस्त पक्षका परिग्रह (शत्रुमित्रादिका समस्त पक्षपात) त्याग देनेसे अत्यन्त मध्यस्थ होकर, सर्व पुरुषार्थमें सारभूत होनेसे आत्माके लिये अत्यन्त हिततम भगवन्त पंचपरमेष्ठीके प्रसादसे उत्पन्न होने योग्य, परमार्थसत्य (पारमार्थिक रीति से सत्य), अक्षय (अविनाशी) मोक्षलक्ष्मीको उपादेयरूपसे निश्चित करते हुए प्रवर्तमान तीर्थके नायक (श्री महावीरस्वामी) पूर्वक भगवंत पंचपरमेष्ठीको प्रणमन और वन्दनसे होनेवाले नमस्कारके द्वारा सन्मान करके सर्वारम्भसे (उद्यमसे) मोक्षमार्गका आश्रय करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं।

अब, यहाँ (भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचित) गाथासूत्रोंका अवतरण किया जाता है।

अथ सूत्रावतार :-

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं।।१।।
सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे।
समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे।।२।।
ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेगं।
वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते ।।३।।
किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं।
अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेवि सव्वेसिं।।४।।

पणमामीत्यादिपदखण्डनारूपेण व्याख्यानं क्रियते-**पणमामि** प्रणमामि। स कः। कर्ता **एस** एषोऽहं ग्रन्थकरणोद्यतमनाः स्वसंवेदनप्रत्यक्षः। कं। वड्ढमाणं अवसमन्ताद्वृद्धं वृद्धं मानं प्रमाणं ज्ञानं यस्य स भवति वर्धमानः, 'अवाप्योरलोपः' इति लक्षणेन भवत्यकारलोपोऽवशब्दस्यात्र, तं रत्नत्रयात्मकप्रवर्तमानधर्मतीर्थोपदेशकं श्रीवर्धमानतीर्थंकरपरमदेवम्। क्व प्रणमामि। प्रथमत एव। किंविशिष्टं। **सुरासुरमणुसिंदवंदिदं** त्रिभुवनाराध्यानन्तज्ञानादिगुणाधारपदाधिष्ठितत्वात्तत्पदाभिलाषिभिस्त्रिभुवनाधीशैः सम्यगाराध्यपादारविन्दत्वाच्च सुरासुरमनुष्येन्द्रवन्दितम्। पुनरपि किंविशिष्टं। **धोदघाइकम्ममलं** परमसमाधि-

---

गाथा १-५

सूर-असूर-नरपतिवंद्यने, प्रविनष्ट घातीकर्मने।
प्रणमन करुं हूँ धर्मकर्त्ता तीर्थ श्रीमहावीरने।।१।।

वली शेष तीर्थंकर अने सौ सिद्ध शुद्धास्तित्वने।
मुनि ज्ञान दृग-चारित्र-तप-वीर्याचरण संयुक्तने।।२।।

ते सर्वने साथे तथा प्रत्येकने प्रत्येकने।
वंदुं वली हूँ मनुष्य क्षेत्रे वर्तता अर्हंतने।।३।।

अर्हंतने श्री सिद्धने य नमस्करण करी ए रीते।
गणधर अने अध्यापकोने सर्व साधु समूहने।।४।।

तसु शुद्ध दर्शन ज्ञान मुख्य पवित्र आश्रम पामीने।
प्राप्ति करुं हूँ साम्यनी, जेनाथी शिवप्राप्ति बने।।५।।

तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज।
उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती ।।५।। [पणगं]

एष सुरासुरमनुष्येन्द्रवन्दितं धौतघातिकर्ममलम्।
प्रणमामि वर्धमानं तीर्थं धर्मस्य कर्तारम् ।।१।।
शेषान् पुनस्तीर्थकरान् ससर्वसिद्धान् विशुद्धसद्भावान्।
श्रमणांश्च ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारान् ।।२।।
तांस्तान् सर्वान् समकं समकं प्रत्येकमेव प्रत्येकम्।
वन्दे च वर्तमानानर्हतो मानुषे क्षेत्रे ।।३।।

समुत्पन्नरागादिमलरहितपारमार्थिकसुखामृतरूपनिर्मलनीरप्रक्षालितघातिकर्ममलत्वादन्येषां पापमलप्रक्षालनहेतुत्वाच्च धौतघातिकर्ममलम्। पुनश्च किंलक्षणम्। **तित्थं** दृष्टश्रुतानुभूतविषयसुखाभिलाषरूपनीरप्रवेशरहितेन परमसमाधिपोतेनोत्तीर्णसंसारसमुद्रत्वात् अन्येषां तरणोपायभूतत्वाच्च तीर्थम्। पुनश्च किंरूपम्। **धम्मस्स कत्तारं** निरुपरागात्मतत्त्वपरिणतिरूपनिश्चयधर्मस्योपादानकारणत्वात् अन्येषामुत्तमक्षमादिबहुविध-

---

अन्वयार्थ :- **[एषः]** यह मैं **[सुरासुरमनुष्येन्द्रवंदितं]** जो सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रोंसे वन्दित हैं तथा जिन्होंने **[धौतघातिकर्ममलं]** घाति कर्ममलको धो डाला है ऐसे **[तीर्थं]** तीर्थरूप और **[धर्मस्य कर्तारं]** धर्मके कर्ता **[वर्धमानं]** श्री वर्द्धमानस्वामीको **[प्रणमामि]** नमस्कार करता हूँ।

[पुनः] और **[विशुद्धसद्भावान्]** विशुद्ध सत्तावाले **[शेषान् तीर्थकरान्]** शेष तीर्थंकरोंको **[ससर्वसिद्धान्]** सर्व सिद्धभगवन्तोंके साथ ही, **[च]** और **[ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारान्]** ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचार युक्त **[श्रमणान्]** श्रमणोंको नमस्कार करता हूँ।

[तान् तान् सर्वान्] उन उन सबको **[च]** तथा **[मानुषे क्षेत्रे वर्तमानान्]** मनुष्य क्षेत्रमें विद्यमान **[अर्हतः]** अरहन्तोंको **[समकं समकं]** साथ ही साथ-समुदायरूपसे और **[प्रत्येकं एव प्रत्येकं]** प्रत्येक प्रत्येकको-व्यक्तिगत **[वंदे]** वन्दना करता हूँ।

[अर्हद्भ्यः] इसप्रकार अरहन्तोंको **[सिद्धेभ्यः]** सिद्धोंको **[तथा गणधरेभ्यः]** आचार्योंको **[अध्यापकवर्गेभ्यः]** उपाध्यायवर्गको **[च एवं]** और **[सर्वेभ्यः साधुभ्यः]** सर्व साधुओंको **[नमः कृत्वा]** नमस्कार करके **[तेषां]** उनके **[विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधानाश्रमं]** (विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधान आश्रमको (**समासाद्य**) प्राप्त करके (**साम्यंउपसंपद्ये**) मैं साम्यको प्राप्त करता हूँ **[यतः]** जिससे **[निर्वाण संप्राप्तिः]** निर्वाणकी प्राप्ति होती है।

टीका :- यह स्वसंवेदनप्रत्यक्ष दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप मैं, जो सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और

कृत्वार्हद्भ्यः सिद्धेभ्यस्तथा नमो गणधरेभ्यः।
अध्यापकवर्गेभ्यः साधुभ्यश्चैव सर्वेभ्यः ।।४।।
तेषां विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधानाश्रमं समासाद्य।
उपसम्पद्ये साम्यं यतो निर्वाणसम्प्राप्तिः ।।५।। [पंचकम्]

एष स्वसंवेदनप्रत्यक्षदर्शनज्ञानसामान्यात्माहं सुरासुरमनुष्येन्द्रवन्दितत्वात्त्रिलोकैकगुरुं, धौतघातिकर्ममलत्वाज्जगदनुग्रहसमर्थानन्तशक्तिपारमैश्वर्यं, योगिनां तीर्थत्वात्तारणसमर्थं, धर्मकर्तृत्वाच्छुद्धस्वरूपवृत्तिविधातारं, प्रवर्तमानतीर्थनायकत्वेन प्रथमत एव परमभट्टारकमहादेवाधिदेवपरमेश्वरपरमपूज्यसुगृहीतनामश्रीवर्धमानदेव प्रणमामि।।१।। तदनु विशुद्धसद्भावत्वादुपात्तपाकोत्तीर्णजात्यकार्तस्वरस्थानीयशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावान् शेषानतीततीर्थनायकान्, सर्वान् सिद्धांश्च, ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारयुक्तत्वात्संभावितपरमशुद्धोपयोग-

---

धर्मोपदेशकत्वाच्च धर्मस्य कर्तारम्। इति क्रियाकारकसम्बन्धः। एवमन्तिमतीर्थकरनमस्कारमुख्यत्वेन गाथा गता ।।१।। तदनन्तरं प्रणमामि। कान्। **सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे** शेषतीर्थकरान्, पुनः ससर्वसिद्धान् **वृषभादि**पार्श्वपर्यन्तान् शुद्धात्मोपलब्धिलक्षणसर्वसिद्धसहितानेतान् सर्वानपि। कथंभूतान्। **विसुद्धसब्भावे** निर्मलात्मोपलब्धिबलेन विश्लेषिताखिलावरणत्वात्केवलज्ञानदर्शनस्वभावत्वाच्च विशुद्धसद्भावान्। **समणे य** श्रमणशब्दवाच्यानाचार्योपाध्यायसाधूंश्च। किंलक्षणान्। **णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे** सर्वविशुद्धद्रव्यगुणपर्यायात्मके चिद्वस्तुनि यासौ रागादिविकल्परहितनिश्चलचित्तवृत्तिस्तदन्तर्भूतेन व्यवहारपञ्चाचारसहकारिकारणोत्पन्नेन निश्चयपञ्चाचारेण परिणतत्वात् सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारोपेतानिति। एवं शेषत्रयोविंशतितीर्थकरनमस्कारमुख्यत्वेन गाथा गता ।।२।। अथ **ते ते सव्वे** तांस्तान्पूर्वोक्तानेव पञ्चपरमेष्ठिनः सर्वान् **वंदामि य वन्दे,** अहं कर्ता। कथं। **समगं समगं** समुदायवन्दनापेक्षया युगपद्युगपत्। पुनरपि कथं। **पत्तेगमेव पत्तेगं** प्रत्येकवन्दनापेक्षया प्रत्येकं प्रत्येकम्। न केवलमेतान् वन्दे। **अरहंते अर्हतः।** किंविशिष्टान्। **वट्टंते माणुसे खेत्ते** वर्तमानान्। क्व। मानुषे क्षेत्रे। तथा हि - साम्प्रतमत्र भरतक्षेत्रे तीर्थकराभावात् पञ्चमहाविदेहस्थितश्रीसीमन्धरस्वामितीर्थकरपरमदेवप्रभृतितीर्थकरैः सह तानेव पञ्चपरमेष्ठिनो नमस्करोमि। कया। करणभूतया मोक्षलक्ष्मीस्वयंवरमण्डपभूतजिनदीक्षाक्षणे मंगलाचारभूतया अनन्तज्ञानादिसिद्धगुणभावनारूपया सिद्धभक्त्या, तथैव निर्मलसमाधिपरिणतपरमयोगिगुणभावनालक्षणया योगभक्त्या चेति। एवं पूर्वविदेहतीर्थकरनमस्कारमुख्यत्वेन गाथा गतेत्यभिप्रायः ।।३।। अथ **किच्चा** कृत्वा। कम्। **णमो** नमस्कारम्। केभ्यः। **अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव** अर्हत्सिद्धगणधरोपाध्यायसाधुभ्यश्चैव। कतिसंख्योपेतेभ्यः। **सव्वेसिं** सर्वेभ्यः। इति पूर्वगाथात्रयेण कृतपञ्चपरमेष्ठिनमस्कारोपसंहारोऽयम् ।।४।। एवं

नरेन्द्रोंके द्वारा वन्दित होनेसे तीन लोकके एक (अनन्य सर्वोत्कृष्ट) गुरु हैं, जिनमें घातिकर्ममलके धो डालनेसे जगत पर अनुग्रह करनेमें समर्थ अनन्तशक्तिरूप परमेश्वरता है, जो तीर्थताके कारण योगियोंको तारनेमें समर्थ हैं, धर्मके कर्ता होनेसे जो शुद्ध स्वरूपपरिणतिके कर्ता हैं, उन परम भट्टारक, महादेवाधिदेव, परमेश्वर, परमपूज्य, जिनका नामग्रहण भी अच्छा है ऐसे श्री वर्द्धमानदेवको प्रवर्तमान तीर्थकी नायकताके कारण प्रथम ही, प्रणाम करता

भूमिकानाचार्योपाध्यायसाधुत्वविशिष्टान् श्रमणांश्च प्रणमामि ।।२।। तदन्वेतानेव पञ्चपरमेष्ठिनस्तत्तद्व्यक्ति-व्यापिनः सर्वानेव सांप्रतमेतत्क्षेत्रसंभवतीर्थकरासंभवान्महाविदेहभूमिसंभवत्वे सति मनुष्यक्षेत्रप्रवर्तिभिस्तीर्थनायकैः सह वर्तमानकालं गोचरीकृत्य युगपद्युगपत्प्रत्येकं प्रत्येकं च मोक्षलक्ष्मीस्वयंवरायमाणपरमनैर्ग्रन्थ्यदीक्षाक्षणोचितमंगलाचारभूतकृतिकर्मशास्त्रोपदिष्टवन्दनाभिधानेन सम्भावयामि ।।३।। अथैवमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधूनां प्रणतिवन्दनाभिधानप्रवृत्तद्वैतद्वारेण भाव्यभावकभावविजृम्भिताातिनिर्भरेतरेतरसंवलन-बलविलीननिखिलस्वपरविभागतया प्रवृत्ताद्वैतं नमस्कारं कृत्वा ।।४।। तेषामेवार्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधूनां विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधानत्वेन सहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावात्मतत्त्वश्रद्धानावबोधलक्षणसम्यग्दर्शनज्ञानसंपादकमाश्रमं समासाद्य सम्यग्दर्शनज्ञानसंपन्नो भूत्वा, जीवत्कषायकणतया पुण्यबन्धसंप्राप्तिहेतुभूतं सरागचारित्रं क्रमापतितमपि दूरमुत्क्रम्य सकलकषायकलिकलङ्कविविक्ततया निर्वाणसंप्राप्तिहेतुभूतं वीतरागचारित्राख्यं साम्यमुपसंपद्ये। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैक्यात्मकैकाग्र्यं गतोऽस्मीति प्रतिज्ञार्थः। एवं तावदयं साक्षान्मोक्षमार्गं संप्रतिपन्नः ।।५।।

पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं कृत्वा किं करोमि। **उवसंपयामि** उपसंपद्ये समाश्रयामि। किम्। **सम्मं** साम्यं चारित्रम्। यस्मात् किं भवति। **जत्तो णिव्वाणसंपत्ती** यस्मान्निर्वाणसंप्राप्तिः। किं कृत्वा पूर्वं। **समासिज्ज** समासाद्य प्राप्य। कम्। **विसुद्धणाणदंसणपहाणासमं** विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणप्रधानाश्रमम्। **केषां** सम्बंधित्वेन। **तेसिं** तेषां पूर्वो-क्तपञ्चपरमेष्ठिनामिति। तथाहि - अहमाराधकः, एते चार्हदादय आराध्या, इत्याराध्याराधकविकल्परूपो द्वैतनमस्कारो भण्यते। रागाद्युपाधिविकल्परहितपरमसमाधिबलेनात्मन्येवाराध्याराधकभावः पुनरद्वैतनमस्कारो भण्यते। इत्येवंलक्षणं पूर्वोक्तगाथात्रयकथितप्रकारेण पञ्चपरमेष्ठिसम्बंधिनं द्वैताद्वैतनमस्कारं कृत्वा। ततः किं करोमि। रागादिभ्यो भिन्नोऽयं स्वात्मोत्थसुखस्वभावः परमात्मेति भेदज्ञानं, तथा स एव सर्वप्रकारोपादेय इति रुचिरूपं सम्यक्त्वमित्युक्तलक्षणज्ञानदर्शनस्वभावं, मठचैत्यालयादिलक्षणव्यवहाराश्रमा-द्विलक्षणं, भावाश्रमरूपं प्रधानाश्रमं प्राप्य, तत्पूर्वकं क्रमायातमपि सरागचारित्रं पुण्यबन्धकारणमिति ज्ञात्वा परिहृत्य निश्चलशुद्धात्मानुभूतिस्वरूपं वीतरागचारित्रमहमाश्रयामीति भावार्थः। एवं प्रथमस्थले नमस्कारमुख्यत्वेन गाथापञ्चकं गतम् ।।५।।

हूँ।।१।।

तत्पश्चात् जो विशुद्ध सत्तावान् होनेसे तापसे उत्तीर्ण हुए (अन्तिम ताव दिये हुए अग्निमेंसे बाहर निकले हुए) उत्तम सुवर्णके समान शुद्धदर्शनज्ञानस्वभावको प्राप्त हुए हैं, ऐसे शेष अतीत तीर्थंकरोंको और सर्वसिद्धोंको तथा ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचारयुक्त होनेसे जिन्होंने परम शुद्ध उपयोगभूमिकाको प्राप्त किया है, ऐसे श्रमणोंको-जो कि आचार्यत्व, उपाध्यायत्व और साधुत्वरूप विशेषोंसे विशिष्ट (भेदयुक्त) हैं उन्हें - नमस्कार करता हूँ।।२।।

तत्पश्चात् इन्हीं पंचपरमेष्ठियोंको, उस-उस व्यक्तिमें (पर्यायमें) व्याप्त होनेवाले सभीको, वर्तमानमें इस क्षेत्रमें उत्पन्न तीर्थंकरोंका अभाव होनेसे और महाविदेहक्षेत्रमें उनका सद्भाव

होनेसे मनुष्यक्षेत्रमें प्रवर्तमान तीर्थनायकयुक्त वर्तमानकालगोचर करके, (महाविदेहक्षेत्रमें वर्तमान श्री सीमंधरादि तीर्थंकरोंकी भाँति मानों सभी पंचपरमेष्ठी भगवान वर्तमानकालमें ही विद्यमान हों, इसप्रकार अत्यन्त भक्तिके कारण भावना भाकर-चिंतवन करके उन्हें) युगपद् युगपद् अर्थात् समुदायरूपसे और प्रत्येक प्रत्येकको अर्थात् व्यक्तिगतरूपसे सम्भावना करता हूँ। किस प्रकार सम्भावना करता हूँ ? मोक्षलक्ष्मीके स्वयंवर समान जो परम निर्ग्रंथताकी दीक्षाका उत्सव (आनन्दमय प्रसंग) है उसके उचित मंगलाचरणभूत जो कृतिकर्मशास्त्रोपदिष्ट वन्दनोच्चार (कृतिकर्मशास्त्रमें उपदेशे हुए स्तुतिवचन) के द्वारा सम्भावना करता हूँ।।३।।

अब इसप्रकार अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व साधुओंको प्रणाम और वन्दनोच्चारसे प्रर्वतमान द्वैतके द्वारा, भाव्यभावक भावसे उत्पन्न अत्यन्त गाढ़ इतरेतर मिलनके

दि. ७-१-१९७९ - प्रवचन नं. - १

ॐ नम: श्रीसिद्धेभ्य: नमोऽनेकान्ताय, श्रीमदभगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवप्रणीत श्री प्रवचनसार। ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। पहला अधिकार (है)। श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरिकृततत्त्वप्रदीपिकावृत्ति: उसका यह अर्थ है। नीचे :

(सर्व प्रथम, ग्रंथ के प्रारंभ में श्रीमद्भगवत्कुंदकुंदाचार्यविरचित प्राकृत गाथाबद्ध श्री प्रवचनसार नामक शास्त्र की `तत्त्वप्रदीपिका' नामक संस्कृत टीका के रचयिता श्री अमतृचंद्राचार्यदेव उपरोक्त श्लोकों के द्वारा मंगलाचरण करते हुए ज्ञानानंदस्वरुप परमात्मा को नमस्कार करते हैं:)

श्लोक :

सर्वव्याप्येकचिद्रूपरस्वरूपाय परात्मने।
स्वोपलब्धिप्रसिद्धाय ज्ञानानंदात्मने नम:।।१।।

कैसा है पूर्ण भगवान आत्मा ? (कि), `**सर्वव्यापी (सब का ज्ञाता-दृष्टा) (है)**' (सर्व)व्यापी अर्थात् (यह) वेदांत कहते हैं सर्वव्यापक ऐसा नहीं, (किन्तु) सब का ज्ञाता-दृष्टा (है)। एक बात। (अब, कहते हैं कि) कैसा है स्वरूप ? कि, वह तो `**एक चैतन्यरूप...**' है। आहाहा ! भगवानआत्मा का तो चैतन्यरूप है - एक चैतन्यरूप (है)। (अर्थात्) भेद भी नहीं, आहाहा ! `**(मात्र चैतन्य ही) जिसका स्वरूप है और जो स्वानुभव प्रसिद्ध है।**' है न (अंदर) ?

कारण समस्त स्वपरका विभाग विलीन होजानेसे जिसमें अद्वैत प्रवर्तमान है ऐसा नमस्कार करके, उन्हीं अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधुओंके आश्रमको, - जो कि (आश्रम) विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान होनेसे सहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभाववाले आत्मतत्त्वका श्रद्धान और ज्ञान जिसका लक्षण है ऐसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका सम्पादक है उसे-प्राप्त करके, सम्यग्दर्शनज्ञानसम्पन्न होकर, जिसमें कषायकण विद्यमान होनेसे जीवको जो पुण्यबन्धकी प्राप्तिका कारण है ऐसे सराग चारित्रको-वह (सराग चारित्र) क्रमसे आ पड़ने पर भी (गुणस्थान-आरोहणके क्रममें बलात् अर्थात् चारित्रमोहके मन्द उदयसे आ पड़ने पर भी) - (दूर उल्लंघन करके, जो समस्त कषायक्लेशरूपी कलंकसे भिन्न होनेसे निर्वाणप्राप्तिका कारण है ऐसे वीतरागचारित्र नामक साम्यको प्राप्त करता हूँ। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी ऐक्यस्वरूप एकाग्रताको मैं प्राप्त हुआ हूँ, यह (इस) प्रतिज्ञाका अर्थ है। इसप्रकार तब इन्होंने (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवने) साक्षात् मोक्षमार्गको अंगीकार किया।।४-५।।

`**स्वोपलब्धिप्रसिद्धाय**' स्व-उपलब्धि का अर्थ किया (कि) भगवानआत्मा ज्ञानानंदस्वरूप है और स्व अनुभव प्रसिद्ध है। (अर्थात्) स्वयं, स्वयं का अनुभव कर सकता है, ऐसा वह प्रसिद्ध तत्त्व है। आहाहा !

`**स्वानुभव प्रसिद्ध है (अर्थात् शुद्ध आत्मानुभव से प्रकृष्टतया सिद्ध है)**' आहाहा! चिदानंद भगवानआत्मा स्वयं के स्वअनुभव से प्रत्यक्ष-प्रकृष्टता से सिद्ध है, आहाहा ! (अर्थात्) अनुभव से (वह) प्रत्यक्ष सिद्ध हो सके ऐसा है। हो सकता है - ऐसा नहीं, ऐसा (सिद्ध ही) है। ऐसा सिद्ध हो सकता है। आहाहा! है ? जिसका स्वरूप चैतन्य है कि जो स्वानुभव प्रसिद्ध है। आहाहा ! अंतरज्ञान में स्वानुभव से वह प्रसिद्ध है। आहाहा ! किन्तु वह राग की क्रिया या देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति आदि के राग से स्वानुभव प्रसिद्ध नहीं होगा। आहाहा ! (क्योंकि) वह तो स्वानुभव प्रसिद्ध है। स्वयं परमानंदमूर्ति प्रभु भगवान(आत्मा) ! स्वानुभव से प्रकृष्टता से प्रसिद्ध है, सिद्ध है। आहाहा!

`**उस ज्ञानानंदात्मक (ज्ञान और आनंदस्वरूप)...**' ज्ञानानंदात्मक - आत्मक अर्थात् स्वरूप। ज्ञान और आनंदस्वरूप प्रभु आत्मा ! `**परात्मने**' शब्द है न ? उस परात्म का अर्थ ऐसा किया है (कि) - उत्कृष्ट (आत्मा)। आहाहा ! सर्वज्ञ परमात्मा स्वयं, उत्कृष्ट ज्ञान और आनंदस्वरूप है। ऐसे `**उत्कृष्ट आत्मा को नमस्कार हो...**' आहाहा! वास्तव में तो स्वयं की स्थिति को नमस्कार करते हैं। भगवानआत्मा स्वानुभव प्रसिद्ध-प्रकृष्ट(ता से) प्रसिद्ध है। और वह ज्ञान और आनंद जिसका सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है, ऐसा जो भगवानआत्मा है, उसको नमस्कार करते हैं। आहाहा ! (वह) पहला श्लोक (हुआ)।

(अब, दूसरा श्लोक) :

हेलोल्लुप्तमहामोहतमस्तोमं जयत्यद:।
प्रकाशयज्जगत्तत्वमनेकान्तमयं मह:।।२।।

आहाहा ! `**जो महामोहरूपी अंधकारसमूह को...**' है न ? `**महामोहतम - महामोहरूपी अंधकारसमूह को लीलामात्र में नष्ट करता है...**' आहाहा ! आनंद की क्रिड़ा में नष्ट करते है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **हेलो** = क्रिड़ा में (और) **उल्लुप्त** = नष्ट करते है। वह पाठ है। **हेलोल्लुप्त** है न ? (बिलकुल आसानी से) उसका नाश करते हैं (वह उसका अर्थ है)। आहाहा ! भगवानआत्मा ! अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप (है)। और वह **हेलो** नाम बिलकुल आसानी से - आनंद की क्रिड़ा में - आनंद में क्रीड़ा करते-करते कर्म का नाश करता है। आहाहा ! ऐसा है !

`**और जगत के स्वरूप को प्रकाशित करता है...**' (स्वयं) ज्ञायक है अत:, स्वयं तो स्वयं को प्रकाशित करता है, वह तो पहले (कलश में) आ गया। (किन्तु) यह तो (अब) जगत के स्वरुप को - सब को - प्रकाशित करता है, ऐसा उसका स्वभाव है (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! `**जगत के स्वरूप को प्रकाशित करता है ऐसा अनेकान्तमय तेज**'... **मह:** है न ? आहाहा ! अनेकान्तमय तेज ! स्वरूप से है और पर से नहीं, द्रव्य से है और पर्याय से द्रव्य नहीं है। कलशटीका में अनेकान्त का अर्थ किया है न ? (कि) सत्ता है - आत्मा सत्तास्वरूप है, ऐसा भेद। (अर्थात्) सत्ता और स्वरूप का भेद करना वह अनेकान्त है। दूसरे श्लोक में अनेकान्त का अर्थ किया है कि अनेकान्त तो संशय का दूरीकरणशील है (संस्कृत में) अनेकान्तमयी है न ? (उसका अर्थ करते हैं)। `**और वस्तुस्वरूप का साधनशील है। उसका विवरण - जो कोई सत्तास्वरूप वस्तु है वह द्रव्य-गुणात्मक है, उसमें जो सत्ता अभेदता से द्रव्यरूप कहने में आती है वही सत्ता भेद से गुणरूप कहने में आती है; इसका नाम अनेकान्त है।**' आहाहा ! क्या कहा ? जो कोई सत्तास्वरूप वस्तु है वह द्रव्य-गुणस्वरूप है। उसमें जो सत्ता अभेदता से द्रव्यरूप कहने में आती है - सत्ता अभेदरूप द्रव्य कहने में आती है - वही सत्ता भेद से गुणरूप कहने में आती है। (वह अनेकान्त है)। (जो) सत्ता अभेदता से द्रव्यरूप कहने में आती है उसी सत्ता को भेद से गुणरूप कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, बापू ! जो कोई सत्तास्वरूप वस्तु है उस सत्ता को अभेदता से द्रव्यरूप कहा जाता है - सत्ता अभेदरूप से द्रव्य कही जाती है। (और) वही सत्ता को भेद से गुणरूप कहने में आती है - इसको अनेकान्त (कहने में आता) है। आहाहा! इसमें (कलशटीका में) - वह दूसरा श्लोक है। अनेकान्तमयीमूर्ति - और (वही) यहाँ पर कहते हैं। देखिये!

`अनेकान्तमय तेज सदा जयवंत है।' ज्ञानस्वरूप द्रव्य है वह द्रव्य से अभेद (है) और ज्ञानगुण है वह भेद (है)। उसका (नाम) अनेकान्त (है)। आहाहा ! ज्ञान सो द्रव्य है - वह अभेद (है) और ज्ञान सो गुण है - वह भेद (है)। आहाहा ! यह अनेकान्त (है)। (किन्तु) अनेकान्त ऐसा नहीं कि, व्यवहार से भी होता है और निश्चय से (भी) होता है - ऐसा अनेकान्त नहीं। निश्चय से होता है और व्यवहार से नहीं होता, वही अनेकान्त है। आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म है।

वह यहाँ कहते हैं (कि), ऐसा अनेकान्तमय, **`महः'** (अर्थात्) चैतन्य तेज... आहाहा! चैतन्य तेज है वह द्रव्य है और चैतन्य तेज है वह गुण है - इसका नाम अनेकान्त (है)। बापू ! यह तो वीतराग की वाणी है। भाई ! वह कोई कथा-कहानी नहीं। आहाहा! (कहते हैं कि) **`ऐसा अनेकान्तमय तेज सदा जयवंत है।'** आहाहा ! सर्वज्ञ सो आत्मा है और सर्वज्ञ सो गुण - ऐसा अनेकान्तमय तेज जयवंत है, जगत में जयवंत है। (अर्थात्) जगत उसके अनेकान्तमय ज्ञानगुण से - पूर्ण गुण से - कभी भी रहित नहीं। आहाहा! जगत में ऐसा ज्ञान जयवंत है... आहाहा !

`अब श्री अमृतचंद्राचार्यदेव श्लोक द्वारा अनेकान्तमय जिनप्रवचन के सारभूत...'** (यह) प्रवचनसार है सही न ? प्र + वचन = दिव्यध्वनि का सार। जिनप्रवचन - प्रवचन अर्थात् दिव्यध्वनि और उसका सारभूत **`इस `प्रवचनसार' शास्त्र की टीका करने की प्रतिज्ञा करते हैं।' आहाहा !

परमानन्दसुधारसपिपासितानां हिताय भव्यानाम्।
क्रियते प्रकटिततत्त्वा प्रवचनसारस्य वृत्तिरियम्।।३।।

श्री जयसेनाचार्य की टीका में `मध्यम रुचिवाला' ऐसा लिया है। समझ में आया? देखिये ! संस्कृत में पहला शब्द है - **`प्रवचनसारव्याख्यायां मध्यमरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थायां'** है ? जिसको रुचि है (ऐसा शिष्य)। (किन्तु) मात्र अकेला जिज्ञासु है ऐसा नहीं। (यहाँ कहते हैं कि) **`परमानंदरूपी सुधारस के पिपासु'** आहाहा ! (अर्थात्) जिसको परमानंदरूपी अमृतरस पीने की - अनुभव करने की पिपासा है। आहाहा ! कोई राग करने की या पुण्य करने की (पिपासा है) ऐसा नहीं लिया। आहाहा ! भगवान-देव-गुरु की भक्ति करने का पिपासु है ऐसा (भी) नहीं लिया। आहाहा ! क्योंकि देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति है वह तो राग है। ऐसी कठिन बात है, प्रभु ! क्या हो सकता है ? स्वयं ही वह वस्तु है।

(यहाँ कहते हैं कि) **`परमानंदरूपी सुधारस के पिपासु...'** आहाहा ! परम अतीन्द्रिय आनंदरुपी अमृतरस की जिसको पिपासा है ऐसे **`भव्य जीवों के हितार्थ...'** आहाहा! पुण्य के अर्थी और स्वर्ग के अर्थी और राग के अर्थी के लिये यह प्रवचनसार नहीं है। आहाहा !

(किन्तु) जिसको परमानंदमय प्रभु आत्मा के अमृत के रस को पीने की तृषा लगी है - पिपासा है - (उनके लिये है)। आहाहा ! पिपासु कहा न ? आहाहा ! (अर्थात्) परमानंदरूपी सुधारस की जिसको तृषा है - पिपासा है, आहाहा! ऐसे '**भव्य जीवों के हितार्थ, तत्त्व को (वस्तुस्वरूप को) प्रगट करनेवाली...**' आहाहा! (भव्य जीवों के) हित के लिये यह टीका है। टीका कैसी (है) ? कि जो (तत्त्व को) प्रगट करती है - वस्तुस्वरूप को जो प्रगट करती है - ऐसी यह प्रवचनसार की टीका (है)। यह टीका की व्याख्या है। आहाहा ! वस्तुस्वरूप को जो प्रगट करती है ऐसी यह टीका है। और (वह टीका) आनंद के अभिलाषी - पिपासु भव्य जीव के लिये (अर्थात्) उसके हित के लिये (है)। जो टीका (तत्त्व को) प्रगट करती है। आहाहा! (यानी कि) वस्तु के स्वरूप को प्रगट करती है। आहाहा !

प्र + वचन + सार। प्र नाम दिव्यवचन। जो दिव्यध्वनि - तीनलोक के नाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि - जो ॐ ध्वनि - (है वह) 'मुख ॐ कार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेशे भविक जीव संशय निवारै' (बनारसीदास) - ऐसी जो वाणी (है) वह यहाँ प्रगट करते हैं। किसके लिये ? (कि भव्य जीव के लिये), आहाहा ! समयसार में ऐसा आता है न ? कि ऐसा (जिज्ञासु) जीव है वह प्रश्न करता है। उसका उत्तर (देने में आता है)। आहाहा ! ऐसे ही सुनने के लिये आया है, ऐसा नहीं। आहाहा ! जिसको ऐसी पिपासा हुई है कि प्रभु ! यह आत्मा आस्रव से किस प्रकार निवृत्त हो ? (गाथा-७३)

सुबह समयसार में चला कि, ज्ञानी का लक्षण क्या है ? (गाथा-७५) ऐसा पूछा है। ऐसी पूछनेवाले की जिज्ञासा है उसको यह कहने में आता है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसे (जीव को) उत्तर देने में आता है। ऐसी श्री अमृतचंद्राचार्य ने शैली ली है। लोग 'पुण्यफला अरहंता' कहते हैं न ? किन्तु उसका अर्थ है कि अरिहंत को पुण्य अकिंचित्कर है। अब उसका अर्थ यह करते हैं कि, पुण्य के फलस्वरूप अरिहंतपद को प्राप्त होंगे, अरे भाई ! तुझे (अर्थ की) ख़बर नहीं। बापू ! आहाहा! अर्थ तो उपर लिखा है। श्री अमृतचंद्राचार्य तो उससे विशेष ऐसा कहते हैं कि पुण्यफल तीर्थंकर को अकिंचित्कर है, उनके आत्मा को कोई (लाभ) करनेवाला नहीं। वह अतिशय और वाणी आदि सब हैं वे पुण्य का फल है, भाई ! आहाहा !

मुमुक्षु :- पुण्य का फल अरिहंतदशा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं, कई (ऐसा) अर्थ करते हैं - पुण्य के फलस्वरूप अरिहंतदशा प्राप्त होती है। अरे प्रभु ! ऐसा नहीं। पुण्य का फल तो उनका अतिशय है। समवसरण मिलता है, वाणी निकलती है, वह पुण्य का फल है। तीर्थंकर के आत्मा को पुण्यफल

अकिंचित्कर है - कुछ (लाभ) करता नहीं। आहाहा ! ऐसा शीर्षक बनाकर बाद में (तो प्रवचनसार गाथा - ४५ बनायी है)। समझ में आया ? आहाहा !

और वहाँ (प्रवचनसार - ७७ वीं गाथा में) कहा है कि (जो कोई) पुण्य नाम शुभभाव और (पाप नाम) अशुभभाव दोनों में - कोई फर्क मानता है (यानी कि) शुभभाव अच्छा है और अशुभभाव बुरा है वह, मोह-मिथ्यात्व से आच्छादित हुआ घोर संसार में भटकनेवाला है। ७७ वीं गाथा है न ? है न उसमें ? देखो ! `**ण हि मण्णहि जो एवं णत्थि विसेसो**' - ७७ वीं गाथा है। शुभभाव और अशुभभाव में कोई फर्क नहीं। दोनों बंध के कारण हैं। आहाहा ! भगवान श्री कुंदकुंदाचार्य ऐसा कहते (हैं) कि हमारी भक्ति करनेवाले को शुभ(भाव) होता है और दूसरे को अशुभ(भाव) होता है, (उन) दोनों में (जो) फर्क मानेगा कि शुभ है वह ठीक है (वह संसार में भटकनेवाला है)। `**ण हि मण्णहि जो एवं णत्थि विसेसो**' (पुण्य-पाप इन दोनों में) विशेष कोई फर्क नहीं। कोई फर्क नहीं। (तथापि जो कोई) ऐसा नहीं मानता है और विशेष - फर्क मानता है वह, `**हिंडदि घोरमपारं संसारं**' - ऐसा श्री कुंदकुंदचार्य कहते (हैं)। आहाहा! गज़ब (बातें हैं), प्रभु !

(कहते हैं कि) हमारी भक्ति करेगा उसको शुभभाव होगा और संसार के पाप करेगा उसमें अशुभ(भाव) होगा। (अब) उन दोनों में कोई फर्क मानता है कि यह शुभ है वह अच्छा है और अशुभ है (वह) बुरा है। (किन्तु उन) दोनों में विशेष कुछ नहीं, दोनों एक समान बंध के कारण हैं ऐसा नहीं मानता तो, `**हिंडदि घोरमपारं संसारं**' आहाहा ! यह श्री अमृतचंद्राचार्य ने उसकी टीका रची है। `**मोहसंछण्णो**' - मिथ्यात्व से आच्छादित प्राणी शुभ अच्छा और अशुभ बुरा (ऐसा मानता है) (अर्थात्) शुभ करते-करते कल्याण होता (है) और अशुभ करने पर (कल्याण) नहीं होता, ऐसा जो फर्क मानता है वह मिथ्यादृष्टि घोर संसार में भटकनेवाला है। आहाहा ! यह वीतराग वाणी ! वह यहाँ पर कहते हैं। उसके हित के लिये - परमानंद प्राप्त हो इसलिये - यह कहने में आता है। (किन्तु) उसको पुण्य प्राप्त हो (इसलिये कहने में आती नहीं)। आहाहा ! समझ में आया ?

(यहाँ कहते हैं कि) तत्त्व के स्वरूप को जो प्रगट करता है। कौन ? (कि) `**प्रवचनसार की यह टीका रची जा रही है।**' आहाहा ! वस्तु के स्वरूप को जो प्रगट करती है ऐसी यह टीका करने में आती है - ऐसी श्री अमृतचंद्राचार्य ने प्रतिज्ञा ली।

आहाहा ! (वे तो मुनि हैं)। महा शुद्धोपयोग को प्राप्त है। भले ही (इस समय) विकल्प आया (है) किन्तु बाद में (उसको) तोड़कर शुद्धोपयोग में ही जाते हैं। (यह बात) आगे कहेंगे। वह पंच महाव्रतादि का विकल्प आता (है) किन्तु वे सब दोष हैं। आहाहा ! जो राग है वह हेय है। भले ही टीका करने के समय विकल्प आया है, किन्तु वह विकल्प

भी हेय है। आहाहा ! ऐसी बात (अज्ञानी को) कहाँ संमत होती है ? आहाहा ! (यहाँ तो) वह टीकाकार कहते हैं कि विकल्प है वह हेय है। किन्तु आये बिना रहता नहीं। (इस समय) आया है किन्तु मैं उसका जाननेवाला हूँ। (मैं तो) राग का ज्ञायक हूँ। किन्तु राग मेरा है या राग से मुझे लाभ होता है, ऐसा मैं नहीं। आहाहा ! इस प्रकार मंगलाचरण किया।

`**इस प्रकार मंगलाचरण और टीका रचने की प्रतिज्ञा कर के, भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवविरचित प्रवचनसार की पहली पाँच गाथाओं के प्रारंभ में श्री अमृतचंद्राचार्यदेव उन गाथाओं की उत्थानिका करते हैं।**' यह टीका करनेवाले महासंत श्री अमृतचंद्राचार्यदेव कहते हैं कि यह गाथा करनेवाले हैं कौन ? शास्त्र करनेवाले वे हैं कौन ? (कि) श्री कुंदकुंदाचार्य।

`**अब, जिनके संसारसमुद्र का किनारा निकट है,...**' आहाहा ! अरे ! किन्तु आप हजार बरस पहले हुये (और) श्री कुंदकुंदाचार्य तो संवत ४९ में हुये और बाद में हजार बरस के बाद तो श्री अमृतचंद्राचार्य हुये - (तथापि) उनको ऐसी जानकारी प्राप्त हो गई ? किन्तु हम (श्री अमृतचंद्राचार्य) कहते हैं कि देखो ! हम महाव्रतधारी हैं। आहाहा ! जिसको संसारसमुद्र का किनारा निकट है (अर्थात्) एक-दो भव करके (जो) मोक्ष जानेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा! `**ऐसे कोई (आसन्नभव्य)**' (अर्थात्) जिसका मोक्ष अब थोड़े समय में नज़दीक है ऐसे। `**महात्मा श्रीमद् भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेव) सातिशय (उत्तम) विवेकज्योति प्रगट हो गई है...**' आहाहा ! `**सातिशय (उत्तम) विवेकज्योति प्रगट हो गई है...**' ऐसा कहने का आशय यह है कि जो भेदज्ञान हुआ है वह अब छूटनेवाला नहीं। आहाहा ! ९२ गाथा में आया है न ? कि हमने आगम कुशलता से और आत्मज्ञान से (जिस) दर्शनमोह का नाश किया है और (जो) सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ है (वह) दर्शनमोह अब फिर से हमको उत्पन्न हो ऐसा नहीं। हम (अमृतचंद्राचार्य) भगवान के पास गये नहीं तथापि हम कहते हैं, आहाहा ! कुंदकुंदाचार्य तो भगवान के पास गये थे। किन्तु टीका करनेवाले अमृतचंद्राचार्य (कि जो भगवान के पास गये नहीं थे) वे ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समयसारजी की ३८ वीं गाथा में वह आता है और इसमें (प्रवचनसार की) ९२ वीं गाथा में भी आयेगा कि हमको जो मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है - अंतर आनंद का नाथ जगकर जो हमको अनुभव हुआ है - वह अब छूटनेवाला नहीं। ९२ वीं (गाथा में) है। देखो ! इस तरफ है, `**यह आत्मा स्वयं धर्म हो, यह वास्तव में मनोरथ है। उसमें विघ्न डालनेवाली एक बहिर्मोहदृष्टि ही है। और वह (बहिर्मोहदृष्टि) तो आगमकौशल्य और आत्मज्ञान से नष्ट हो जाने के कारण अब मुझमें पुन: उत्पन्न नहीं होगी।**' आहाहा ! वह तो ठीक।

किन्तु समयसार की ३८ वीं गाथा में तो ऐसा कहा है कि अप्रतिबुद्ध श्रोता है उसको संत-गुरु-धर्मात्मा उपदेश देते हैं और वह सम्यग्दर्शन पाता है। तो, वे ऐसा कहते हैं - पंचमकाल का अप्रतिबुद्ध श्रोता था, उसको मुनि ने समझाया तो वह ऐसा कहता है कि - हमको जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ है वह छूटनेवाला नहीं। आहाहा ! क्या कहा समझ में आया ? कि यह तो (९२ वीं गाथा में तो) श्री अमृतचंद्राचार्य अपनी (बात) कहते हैं। किन्तु वहाँ तो (३८ वीं गाथा में तो) वह लिया कि (प्रतिबुद्ध हुआ शिष्य कहता है) आहाहा ! क्योंकि जीव का अधिकार पूरा होता है न ? आहाहा ! वैसे श्रीमद् राजचंद्रजी ने स्वयं कहा न ? कि -

'अशेष कर्मनो भोग छे, भोगववो अवशेष रे;

तेथी देह एकधारीने, जाशुं स्वरूप स्वदेश रे...' (धन्य रे दिवस... काव्य)। प्रतिज्ञा की है। उसमें कोई - एक अक्षर भी बदले ऐसा नहीं। आहाहा ! कुछ थोड़ा राग दिखता है। अभी नाश नहीं हुआ। किन्तु हम एक भव करके, इस (राग का) नाश करके स्वरूप को पूर्ण प्राप्त करेंगे। आहाहा ! (श्रीमद् राजचंद्रजी ऐसा कहते हैं)।

ऐसे यहाँ ३८ वीं गाथा में जीव का पूर्ण स्वरूप बताकर कहते हैं कि जो श्रोता अप्रतिबुद्ध था उसको (गुरु ने) समझाया। इस पंचमकाल के साधु और पंचमकाल का श्रोता ! आहाहा ! कोई ऐसा कहता है, पंचमकाल में तो इस समय शुभ योग (उपयोग) ही होता है। अरे...रे ! प्रभु ! प्रभु ! प्रभु! क्या करते हो तुम यह? आहाहा! यहाँ तो ऐसा श्रोता लिया है कि (वह ऐसा कहता है कि) हमको जो दर्शन-ज्ञान प्रगट हुआ है वह अब छूटेगा नहीं। - ऐसा हमको प्रगट हुआ है, हम अप्रतिहत सम्यग्दृष्टि हैं। आहाहा ! ३८ गाथा में उस श्रोता की बात है। किन्तु यहाँ तो (९२ वीं गाथा में तो) अपनी बात है।

आहाहा ! (जो) अनादि का अप्रतिबुद्ध था (उसको) गुरु ने बार बार समझाया। ऐसा है न ? आहाहा! ३८ गाथा का - एक-एक शब्द अलौकिक है। बापू ! वह व्याख्या कोई (साधारण) नहीं। आहाहा ! (उसमें कहते हैं कि) हम अपने परमेश्वर को भूल गये थे, आता है न उसमें ? उस परमेश्वर का हमने स्मरण किया और अनुभव में लिया। आहाहा ! (उससे हमको) दर्शन-ज्ञान प्राप्त हुआ, आत्मा (प्राप्त हुआ)। (अब) हमको वीतराग का विरह है, पंचमकाल में केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती तथापि प्रतिज्ञा करते हैं कि (हम गिरनेवाले नहीं)। आहाहा ! ऐसा है ! (ऐसे) श्रोता की बात है। आहाहा ! भगवानआत्मा जब अंदर से जागृत हुआ और सम्यक् अनुभव हुआ (तो) कहते हैं कि अब हम गिरनेवाले नहीं। हम भगवान के पास गये नहीं, किन्तु इस (अंदर के) भगवान के पास गये हैं।

आहाहा ! इत्यादि बहुत बातें हैं। आहाहा ! यहाँ तो (९२ गाथा में तो) यह आया न? कि (बहिर्मोहदृष्टि) फिर से उत्पन्न होनेवाली नहीं। अत: यह लिया। (३८ वीं गाथा लिया)।

आहाहा ! यहाँ तो `**सातिशय**' शब्द आया न ? (उस पर से ९२ वीं गाथा ली)। सातिशय विवेकज्योत जिसको - कुन्दकुन्दाचार्यदेव को - प्रगट हुई है - ऐसा अमृतचंद्राचार्यदेव कहते हैं। आहाहा ! बापू ! यह तो भगवंतस्वरूप की बात है। भाई! आहाहा ! `द्रव्य छूटे तो द्रव्य की दृष्टि छूटे।' आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि `**सातिशय (उत्तम) विवेकज्योत प्रगट हो गई है (अर्थात् परम भेदविज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हो गया है) तथा समस्त एकान्तवादरूप अविद्या का अभिनिवेश अस्त हो गया है ऐसै कोई...**' अनेकान्त प्रगट होने पर एकान्त - अज्ञान - (जिसका नाश हो गया है)। पर्याय को नहीं माने और द्रव्य को माने, द्रव्य को नहीं माने और पर्याय को माने; व्यवहार को माने और निश्चय को नहीं माने, (तथा) व्यवहार से भी निश्चय होता है ऐसा मानना वह एकान्तवाद है। आहाहा ! समस्त एकान्तवाद की अविद्या का अभिनिवेश - अभिप्राय, निश्चय, आग्रह - जिसका अस्त हो गया है। आहाहा ! कौन कहते हैं यह ? अमृतचंद्राचार्य - (आज से हजार बरस पहले) और भगवान (भगवान) के बाद पंद्रहसो बरस के बाद (हुवे) पंचमकाल के साधु! आहाहा! वे ऐसी पुकार करते हैं कि हम इसप्रकार कहते हैं कि कुंदकुंदाचार्यदेव को उत्तम विवेकज्योति प्रगट हुई है। और समस्त एकान्तवाद की अविद्या का अभिनिवेश जिसको अस्त हो गया है, पतन हो गया है, नष्ट हो गया है।

`**ऐसे कोई पारमेश्वरी (परमेश्वर जिनेन्द्रदेव की) अनेकान्तवादविद्या को प्राप्त करके,...**' आहाहा ! अनेकान्त की व्याख्या की थी कि, सत्ता को अभेद से द्रव्य कहना और भेद से गुण कहना (वह अनेकान्त है)। ऐसा सभी जगह लेना। निश्चय से स्वभाव प्राप्त होता है (किन्तु) व्यवहार से प्राप्त होता नहीं, ऐसे वह अनेकान्त है। व्यवहार से भी प्राप्त होता है और निश्चय से भी प्राप्त होता है, वह एकान्त है। आहाहा! (यहाँ कहते हैं कि) `**पारमेश्वरी (परमेश्वर जिनेन्द्रदेव की) अनेकान्तवादविद्या को प्राप्त करके, समस्त पक्ष का परिग्रह (शत्रुमित्रादि का समस्त पक्षपात)...**' अर्थात् यह मेरा शिष्य है और यह मेरा शत्रु है - ऐसा भी जिनको नहीं। आहाहा ! उन्होंने ये गाथाओं की रचना कि है ऐसा कहना है। अत: (वे) प्रमाणभूत हैं। आहाहा !

`**(शत्रुमित्रादि का समस्त पक्षपात) त्याग देने से अत्यंत मध्यस्थ होकर,...**' (यानी कि) वीतराग होकर ऐसा कहना है। आहाहा ! शत्रु-मित्र का भेद टल गया है (तो) केवल वीतराग (हुवे हैं)। आहाहा ! चाहे तो निंदक हो या चाहे तो प्रशंसक हो - दोनों में वीतराग हैं, मध्यस्थ हैं। आहाहा ! राग-द्वेष से भिन्न मध्यस्थ (हैं)। (अर्थात्) वीतरागभाव

में हैं वे मध्यस्थ हैं। आहाहा !

(अब कहते हैं कि) `**सर्व पुरुषार्थ में सारभूत...**' (अर्थात्) है नीचे ? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष वे चारों पुरुष - अर्थों में (पुरुष - प्रयोजन में) मोक्ष ही सारभूत (श्रेष्ठ, तात्त्विक) पुरुष - अर्थ है। वह पुण्य भी सारभूत नहीं, ऐसा कहते हैं। धर्म यानी पुण्य, अर्थ यानी पैसा, काम अर्थात् भोग (तथा मोक्ष - उन चारों में) जो मोक्ष है वह (ही) यथार्थ है। आहाहा ! (किन्तु) धर्म (कि) जो पुण्य (शुभभाव) है वह भी यथार्थ नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! है (अंदर) ? कि `**सर्व पुरुषार्थ...**' सर्व पुरुषार्थ अर्थात् (ये) चार (कहे वे)। (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष), उनमें `**सारभूत होने से आत्मा के लिये अत्यंत हिततम (है)...**' आहाहा ! (अर्थात्) उत्कृष्ट हितस्वरूप है। (दूसरे कलश में) `भव्यों के हित के लिये' - (ऐसाः कहा था न ? तो यह टीका हितस्वरूप है, मोक्ष हितस्वरूप है। (ऐसा कहते हैं)।

`**भगवंत पंचपरमेष्ठी के प्रसाद से...**' आहाहा ! प्रसाद (अर्थात्) प्रसन्नता, कृपा - उसका अर्थ यह (है)। श्रीमद् कहते हैं न ? कि, `करुणा हम पावत है तुमकी, वह बात रही सुगुरु गमकी...' (यमनियम काव्य)। उसका अर्थ ऐसा है (कि) भगवान! आपके ज्ञान में मेरा मोक्ष और मेरी दशा है (तो) वह ज्ञान ही आपकी करुणा है। सूक्ष्म बात है, बापू ! आहाहा ! नियमसार में आता है न ? नियमसार के श्लोक में आता है कि शास्त्र की उत्पत्ति अरिहंतों से हुई। शास्त्र है वह ज्ञान है (और) वह मोक्ष का कारण है। किन्तु उसकी उत्त्पति तो भगवान से हुई (है)। अतः वह भगवान का उपकार (है)। है न (उसमें) ? (गाथा ६ के बाद श्लोक का आधार) आहाहा! उस प्रकार का विकल्प होता है।

यहाँ कहते हैं कि `**पंचपरमेष्ठी के प्रसाद से...**' अरिहंत और सिद्ध के प्रसाद से - (उनकी) कृपा से। उनकी कृपा है ? पंच पद की कृपा है (ऐसा कहा) तो केवली-सिद्ध की कृपा होगी ? मेहरबानी है ? किन्तु उनके ज्ञान में हम ज्ञानी हैं या मोक्ष को प्राप्त होंगे ऐसा उनके ज्ञान में आया है वही हमारे (लिये तो) हम पर उनका प्रसाद, कृपा है। आहाहा ! यह बात है, भाई ! किन्तु सिद्ध के ज्ञान में - प्रभु ! आपके ज्ञान में - जानने में आया उस प्रकार हम हैं यही आपकी कृपा है। आहाहा ! श्रीमद् राजचंद्र में भी है। स्वयं - श्रीमद् ने - गज़ब काम किया है ! (उन्होंने कहा है कि) `करुणा हम पावत है।' हे नाथ ! आपके अकषायी ज्ञान में हम भासित हुये हैं वह आपकी करुणा है। आहाहा! बापू ! बातें बहुत कठिन हैं। आहाहा !

`**पंचपरमेष्ठी के प्रसाद से**' (ऐसा कहा) तो क्या सिद्ध की प्रसादी-कृपा होगी? अरिहंत की (क्या) कृपा होगी ? क्या अरिहंत-(सिद्ध) को राग है ? (नहीं)। तथापि धवल में (आता) है कि परमेष्ठी की करुणा है। ऐसा शब्द आता है। (तो) वह करुणा कोई कषाय नहीं।

आहाहा ! (उसका अर्थ वह है कि) हे प्रभु ! आपके ज्ञान में हम भासित हुवे वह आपकी करुणा है। (क्योंकि) आप तो वीतराग है। (आपको) राग कहाँ है ? आहाहा !

`**पंचपरमेष्ठी के प्रसाद से**' अरिहंत और सिद्ध के प्रसाद से (ऐसा कहा)। अब, तीन तो (आचार्य, उपाध्याय और साधु) छद्मस्थ हैं। (अत:) भले (उनका प्रसाद हो)। (किन्तु अरिहंत और सिद्ध का प्रसाद क्या ?) (वे) निमित्त है न ! और उनके ज्ञान में यह आया है न ! (वही उनका प्रसाद है)। आहाहा! उनके प्रसाद से - है नीचे? (प्रसाद अर्थात्) प्रसन्नता, कृपा। सिद्ध की प्रसन्नता - कृपा, अरिहंत की प्रसन्नता - कृपा का अर्थ यह (है)। आहाहा ! प्रभु ! हम धर्म को प्राप्त हुवे और हमारा मोक्ष होगा वह आपके ज्ञान में है। आहाहा ! वह आपकी कृपा - आपकी प्रसन्नता - हम कहते (हैं) नाथ ! (अर्थात्) हमारी प्रसन्नता है वह आपकी प्रसन्नता है। (ऐसा कहते हैं)।

श्रोता :- आपकी प्रसन्नता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ तो यह ही प्रसन्नता है - मोक्षमार्ग की प्रसन्नता (है) वह आपकी प्रसन्नता है, ऐसा हम कहते हैं। आहाहा ! अरे...रे ! वीतराग केवलज्ञानी का विरह हुआ, केवली स्थायी रहे नहीं। और लोगों ने अपनी मति अनुसार सब अर्थ किये। आहाहा ! यह तो सिद्ध की कृपा और प्रसन्नता अर्थात् क्या ? (उसका अर्थ किया)।

(अब, कहते हैं कि) `**प्रसाद से उत्पन्न होने योग्य, परमार्थसत्य (पारमार्थिक रीति से सत्य),...**' क्या? (कि) `**अक्षय (अविनाशी) मोक्षलक्ष्मी को...**' आहाहा ! (अर्थात्) जो लक्ष्मी नष्ट नहीं होती ऐसी मोक्षलक्ष्मी को `**उपादेयरूप से निश्चित करते हुए...**' आहाहा! (उपादेय अर्थात्) ग्रहण करने योग्य (मोक्षलक्ष्मी हिततम, यथार्थ और अविनाशी होने से उपादेय है)। श्री कुंदकुंदाचार्य इस प्रकार (निश्चित करते हैं) ऐसा श्री अमृतचंद्राचार्य कहते हैं। आहाहा ! ये तो कोई बातें हैं, बापू ! मार्ग (बहुत सूक्ष्म है)। यह तो सिद्ध की कृपा से मिलता है (ऐसा कहा)।

नियमसार में भी वह है। देखो ! यह नियमसार है न ? उसकी छट्ठी गाथा के बाद कहा है कि, `**इष्ट फल की सिद्धि का उपाय सुबोध है (अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति का उपाय सम्यग्ज्ञान है), सुबोध सुशास्त्र से होता है, सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है; अत: उनके प्रसाद से...**' (यहाँ भी प्रसाद कहा !) आहाहा ! पद्मप्रभमलधारिदेव प्रमाण देकर कहते हैं। प्रमाण तो है विद्यानंदीस्वामी का। किन्तु प्रमाण उन्होंने दिया है। आहाहा! `**अत: उनके प्रसाद से आप्त पुरुष बुधजनों के द्वारा पूज्य हैं।** है (अंदर)? `**अत: उनके प्रसाद से आप्त पुरुष बुधजनों के द्वारा पूज्य हैं (अर्थात् मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से सर्वज्ञदेव ज्ञानीओं द्वारा पूज्य हैं क्योंकि किये गये उपकार को साधु पुरुषों**

(सज्जनों) भूलते नहीं।)' आहाहा ! यहाँ (नियमसार में) भी 'प्रसाद' शब्द लिया है। है न ? उसका अर्थ ही यह (है कि) उनके ज्ञान में आया है वह (उनकी) कृपा (है)। ऐसी बात है, भाई !

(यहाँ कहते हैं कि) '**मोक्षलक्ष्मी को उपादेयरूप से निश्चित करते हुए...**' कौन? (कि) श्री कुंदकुंदाचार्य। आहाहा ! (वे) '**प्रवर्तमान तीर्थ के नायक (श्री महावीरस्वामी) पूर्वक भगवंत पंचपरमेष्ठी को...**' (अर्थात्) सब को। महावीरस्वामी पूर्वक और पंचपरमेष्ठी (अर्थात्) सब आये। '**प्रणमन और वंदन से...**' (प्रणमन अर्थात्) देह से नमस्कार करना। और वंदन (अर्थात्) वचन से स्तुति करना। (नमस्कार में प्रणमन और वंदन दोनों समाविष्ट हैं)। है न ? आहाहा ! '**प्रणमन और वंदन से होनेवाले नमस्कार के द्वारा...**' द्वैत और अद्वैत (नमस्कार) आगे (१ से ५ गाथा में) कहेंगे। विकल्प उठता है वह तो द्वैत नमस्कार है। और अंदर निर्विकल्प होता है वह अद्वैत नमस्कार है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

'**प्रणमन और वंदन से होनेवाले नमस्कार के द्वारा सन्मान करके...**' लीजिये! सन्मान करके आया इसमें ! '**सर्वारम्भ से (उद्यम से) मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए...**' श्री कुंदकुंदाचार्य महाराज 'मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए, प्रतिज्ञा करते हैं। आहाहा ! देखो ! (शास्त्र रचना का शुभ) विकल्प उठा है। किन्तु वह (बात नहीं की)। (वह बात) द्वैत नमस्कार में करेंगे और यहाँ तो '**मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए...**' (ऐसा कहा)। राग का आश्रय करते हुए और निमित्त का आश्रय (करते हुए), ऐसा नहीं। आहाहा! लीजिये ! देखिये ! यह मंगलाचरण !

अब, यहाँ (श्रीमद् भगवत्कुंदकुंदाचार्यविरचित) गाथासूत्रों का अवतरण किया जाता है।
अथ सूत्रावतार :-

एस सुरासुरमणुसिदवंदिदं धोदघाकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं।।१।।
सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे।
समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे।।२।।
ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेगं।
वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते।।३।।
किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं।
अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं।।४।।
तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज।

उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती।।५।। [पणगं]

(हरिगीत)

सुर-असुर-नरपतिवंद्यने, प्रविनष्ट घातीकर्मने।
प्रणमन करूं हुं धर्मकर्त्ता तीर्थ श्रीमहावीरने।।१।।
वली शेष तीर्थंकर अने सौ सिद्ध शुद्धास्तित्वने।
मुनि ज्ञान दृग-चारित्र-तप-वीर्याचरण संयुक्तने।।२।।
ते सर्वने साथे तथा प्रत्येकने प्रत्येकने।
वंदुं वली हुं मनुष्य क्षेत्रे वर्तता अर्हंतने।।३।।
अर्हंतने श्री सिद्धने य नमस्करण करी ए रीते।
गणधर अने अध्यापकोने सर्व साधु समूहने।।४।।
तसु शुद्ध दर्शन ज्ञान मुख्य पवित्र आश्रम पामीने।
प्राप्ति करूं हुं साम्यनी, जेनाथी शिवप्राप्ति बने।।५।।

`**पणमामि वड्ढमाणं**' - पहले `श्री महावीरस्वामीपूर्वक' कहा था न ? `**समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे**' लीजिये ! यह पाठ में आया और टीका में भी आयेगा कि शुद्धोपयोग को प्राप्त (श्रमणों)। किन्तु यह तो श्रीकुंदकुंदाचार्य कहते हैं। ये पंच (ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार) हैं वे निर्विकल्प हैं। `**वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते**' - आहाहा ! जो भगवान बिराजमान हैं उनको वंदन करता हूँ। (जबकि) दूसरे सभी तीर्थंकर तो मोक्ष पधारे हैं।

टीका :- मैं पँचपरमेष्ठी को वंदन करनेवाला (हूँ)। (तो) मैं यानी कौन ? (कि) `यह स्वसंवेदनप्रत्यक्ष' आहाहा ! मैं वंदन करनेवाला कौन हूँ ? कि मैं तो `**स्वसंवेदनप्रत्यक्ष दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप**' (हूँ)। आहाहा! (जो) विकल्प है वह मैं नहीं और एक समय की पर्याय जितना (भी) मैं नहीं। आहाहा ! (किन्तु मैं तो) `**यह स्वसंवेदनप्रत्यक्ष**' (हूँ)। नीचे (मूल शास्त्र में उसका) अर्थ है। (स्वसंवेदनप्रत्यक्ष अर्थात्) स्वानुभव से प्रत्यक्ष। दर्शनज्ञानसामान्य स्वानुभव से प्रत्यक्ष है। वह तो पहले (१ कलश में) आ गया कि, `**स्वोपलब्धि**' स्वानुभव से प्रत्यक्ष - प्रगट - प्रसिद्ध है। आहाहा ! स्वानुभव से प्रसिद्ध ऐसा मैं (हूँ)। आहाहा ! (किन्तु) यहाँ ऐसा नहीं कहा कि मैं पँच महाव्रत का पालन करनेवाला, मैं नग्न और मैं क्षयोपशमभाव की पर्यायवाला। आहाहा ! वैसे जानती है (तो) पर्याय। किन्तु वह पर्याय ऐसा जानती है कि मैं तो `स्वसंवेदनप्रत्यक्ष दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप हूँ।' आहाहा !

३२० गाथा (समयसार की - जयसेनाचार्यकृत टीका) में आता है न ? (कि), पर्याय ऐसा जानती है कि `जो सकलनिरावरण - अखंड़ - एक प्रत्यक्षप्रतिभासमय - अविनश्वर -

शुद्ध - पारिणामिकपरमभावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य वही मैं हूँ' आहाहा! 'जो' ऐसा लिया था न ? (तो) 'निजपरमात्मद्रव्य वही मैं हूँ।' आहाहा! (ऐसा कहा)। यहाँ स्वयं (आचार्य) कहते हैं कि मैं कौन (हूँ) (कि) मैं स्वसंवेदनप्रत्यक्ष दर्शनज्ञानसामान्यस्वपरूप (हूँ)। आहाहा ! जिनको वंदन करता हूँ वे कौन हैं, वह विशेष कहेंगे।

a a a

चैतन्यके अनुभवकी खुमारी...धर्मीका चित्त अन्य कहीं नहीं लगने देती। वह तो स्वानुभवके शान्तरससे तृप्त-तृप्त है। वह तो चैतन्यके आनन्दकी मस्तीमें इतना मस्त है कि अब अन्य कुछ भी करना शेष नहीं रहा। १००१

❁

विकल्प-रहित ज्ञान-वेदना कैसी है...उसका अंतर्लक्ष्य करनेका नाम ही भावश्रुतका लक्ष्य है। रागकी अपेक्षा छोड़कर "स्व"का लक्ष्य करने पर भावश्रुत खिलता है तथा उस भावश्रुतमें ही आनन्दकी वर्षा है। १००२

(परमागमसार)

दि. ८-१-१९७९ - प्रवचन नं. - २

प्रवचनसार, प्रथम पाँच गाथाओं की टीका है। `**एष**' शब्द पहला है न ? `**एष**' श्री कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि - `**एष**' उसका अर्थ `यह' है। श्री कुंदकुंदाचार्य भगवान - सीमंधरप्रभु के पास गये थे और आठ दिन वहाँ रहे थे। वहाँ से आकर ये समयसारादि शास्त्र बनाये हैं। वे स्वयं भगवान कुंदकुंदाचार्य ऐसा कहते हैं कि, यह मैं कौन हूँ ? कि `**स्वसंवेदनप्रत्यक्ष**' हूँ। आहाहा ! (अर्थात्) मेरे स्व-ज्ञान के स्वभाव से वेदन द्वारा प्रत्यक्ष हूँ। आहाहा ! देखो ! ये छद्मस्थ आचार्य ! (कहते हैं कि) मैं `**यह स्वसंवेदनप्रत्यक्ष...**' स्वानुभव से प्रत्यक्ष - `**दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप...**' (हूँ)। है? (अर्थात्) दर्शनज्ञानसामान्य स्वानुभव से प्रत्यक्ष है। दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप अर्थात् **चैतन्य** ऐसा बाद में कहेंगे। दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप ऐसा जो चैतन्य (है) वह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष (है)। आहाहा! मेरे ज्ञान में स्वभाव से - स्व नाम स्वयं का वेदन - स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हूँ। आहाहा ! देखिये ! वंदन करनेवाला ऐसा कहता है कि मैं तो (स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष हूँ)। मेरा दर्शनज्ञान स्वभाव ऐसा जो चैतन्य (है) उस स्वसंवेदन से मैं प्रत्यक्ष हूँ। आहाहा ! एक बात। अब, मैं वंदन करनेवाला यह हूँ। (जोकि) है (यह) विकल्प (तो) भी वंदन करनेवाला मैं यह (स्वसंवेदनप्रत्यक्ष दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप) हूँ। आहाहा! वंदन और प्रणमन - (ये) दो शब्द पड़े हैं न पाठ में ? वंदन और प्रणमन - दोनों हैं। प्रणमन अर्थात् देह से नमन और वंदन अर्थात् वचन से (स्तुति)। है (ये) विकल्प - द्वैत। (यहाँ द्वैत और अद्वैत) दोनों एकसाथ-साथ लेंगे। आहाहा! मैं यह स्वसंवेदनप्रत्यक्ष दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूप चैतन्य (हूँ)। अब मैं वंदन जिसको करता हूँ वे कौन हैं ? वह बात करते हैं।

है तो यह विकल्प। आहाहा ! वह आता है - विकल्प बीच में आया है। तथापि हूँ तो मैं यह - (स्वसंवेदनप्रत्यक्ष दर्शनज्ञानसामान्य स्वरूप)। आहाहा ! विकल्प द्वैतरूप आया है। (तो) भी हूँ तो मैं यह। आहाहा ! (ऐसा कहकर साथ में ऐसा कह दिया कि) उसको (विकल्प को) भी जाननेवाला ऐसा मैं दर्शनज्ञानसामान्य चैतन्यस्वरूप हूँ। आहाहा ! ऐसा

(आया) है !

वंदन और प्रणमन, दो शब्द हैं न ? (तो) प्रणमन यानी कि अंदर भाव तो है किन्तु काया से नमन करता हूँ और वचन से स्तवन करता हूँ (वह) वंदन करता हूँ। आहाहा!

अब, भावपाहुड की ८३ वीं गाथा में ऐसा आया कि - भगवान कुंदकुंदाचार्य स्वयं ऐसा कहते हैं कि - पूजा, भक्ति, वंदन और वैयावृत इत्यादि राग हैं। वह जैनधर्म नहीं। समझ में आया ? और व्रत का विकल्प है वह भी कोई जैनधर्म नहीं। आहाहा! ऐसी बात है ! फिर भी (वह विकल्प) आता है। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) ऐसा मैं, `**जो सुरेन्द्रों...**' आहाहा ! है न सुरेन्द्रों ? (सुरेन्द्रों का अन्वयार्थ में अर्थ है) - ऊर्ध्वलोकवासी देवों के इन्द्र। वे सुरेन्द्रों (और) `**असुरेन्द्रों...**' (वे) अधोलोकवासी देवों के इन्द्र। (तथा `**नरेन्द्रों**' - वे मध्यलोकवासी मनुष्यों के स्वामी - राजाओं। `**सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों के द्वारा वंदित होने से...**' पहले सुरेन्द्रों लिया। भगवान अरिहंत परमात्मा - वर्धमान परमात्मा को पहले स्मरण करते हैं। (क्योंकि) उनका शासन है (तो) प्रथम भगवान वर्धमान को मैं वंदन करता हूँ, आहाहा !

`**सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों के द्वारा वंदित होने से तीन लोक के एक (अनन्य सर्वोत्कृष्ट) गुरु हैं,...**' आहाहा ! सर्वज्ञदेव परमगुरु (हैं)। इस त्रिलोक के गुरु हैं (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! `**तीन लोक के एक...**' (उसमें) एक है न ? (तो) उसका अर्थ (किया) कि, अनन्य, सर्वोत्कृष्ट। आहाहा ! उनके समान कोई गुरु नहीं, वे सर्वोत्कृष्ट गुरु हैं। आहाहा !

(अब, कहते हैं कि) कैसे हैं वे ? कि `**घातीकर्ममल के धो डालने से...**' यहाँ तो घातीकर्ममल, (ऐसा कहा)। (अर्थात्) भावघाती और द्रव्यघाती को धो डालने से। यानी कि वे पहले थे ऐसा सिद्ध हुआ न ? उनको धो डालने से, `**जगत पर अनुग्रह करने में समर्थ...**' आहाहा ! दुनिया पर अनुग्रह करने में समर्थ... आहाहा ! समयसार की पाँचवीं गाथा में आता है न ? कि मेरे पर गुरु ने अनुग्रह किया। वे (गुरु) तो छद्मस्थ हैं। यहाँ तो तीर्थंकर - केवली (हैं)। आहाहा ! `**जगत पर अनुग्रह करने में समर्थ अनंतशक्तिरूप परमेश्वरता है,...**' आहाहा ! वर्धमान भगवान महावीर परमात्मा की - पहले बात कहते हैं कि, (उनको) अनंतशक्तिरूप परमेश्वरता है - एक बात। (तथा) `**जो तीर्थता के कारण योगियों को तारने में समर्थ हैं...**' (अर्थात्) जो कोई स्वरुप में अनुसंधान करनेवाले योगी हैं उनको निमित्तरूप से तारने के लिये समर्थ हैं। आहाहा ! `तिन्नाणं, तारयाणं' - आता है न ? `नमोत्थुणं' में आता है। `**योगियों को तारने में समर्थ हैं,**' आहाहा ! `**धर्म के कर्ता होने से...**' (वे) धर्म के कर्ता हैं (किन्तु) वाणी के कर्ता नहीं। आहाहा ! **धर्म के कर्ता होने**

से जो शुद्ध स्वरूपपरिणति के कर्ता हैं,... आहाहा ! (अर्थात्) भगवान महावीर - शुद्धस्वरुप परिणति के कर्ता हैं। आहाहा ! वर्धमान का अर्थ जयसेनाचार्य की संस्कृत टीका में किया है। देखो! `**वड्ढमाणं अवसमन्ताद्दद्धं वृद्धं मानं प्रमाणं ज्ञानं यस्य स भवति वर्धमान:**' जिनका ज्ञान वर्धमान - पूर्ण हो गया है (वे वर्धमान हैं)। आहाहा! `**वड्ढमाणं प्रमाणं ज्ञानं यस्य स भवति वर्धमान:**' आहाहा !

ऐसे भगवान `**धर्म के कर्ता होने से...**' धर्म यानी कि शुद्ध परिणति के कर्ता होने से - (यह) धर्म की व्याख्या। आहाहा ! अपनी जो वीतरागी केवलज्ञान की शुद्ध परिणति है उसका कर्ता होने से धर्म के कर्ता हैं। आहाहा ! वे वाणी के कर्ता नहीं। किन्तु यहाँ तो भगवान - द्रव्य - शुद्ध परिणति के कर्ता हैं, (ऐसा सिद्ध किया) वरना (तो) जो शुद्ध परिणति है (वह) अपने षट्कारकरूप परिणमित होती हुयी स्वतंत्र है। किन्तु यहाँ तो पर से भिन्न बतलाकर (कहा है)। आहाहा ! शुद्ध परिणति(रूप) ऐसा जो धर्म (है उस) `**धर्म के कर्ता होने से जो शुद्धस्वरूपपरिणति के कर्ता हैं,...**' आहाहा ! यह सिद्धांत ! यह प्रवचनसार !

(यहाँ कहते हैं कि) `**उन परम भट्टारक**' भट्टारक (अर्थात्) पूजनीय। `परम भट्टारक` ये सब इस समय के जो भट्टारक नामधारी हैं वे नहीं (किन्तु) परम भट्टारक। एक बात। `**महादेवाधिदेव...**' महादेवाधिदेव (यानी कि) गणधर के भी देव।जो गणधरदेव (हैं) उनके भी देवाधिदेव। आहाहा ! महादेवाधिदेव `परमेश्वर (वह) तीसरा विशेषण (दिया)। आहाहा ! `**परमपूज्य**' (अर्थात्) उत्कृष्टरूप से पूजने के योग्य हैं। आहाहा ! (जो) मैं पूजनेवाला हूँ (वह) मैं चैतन्यस्वरूप हूँ और वह पूजनेवाला है। और ये (भगवान) पूजन करने योग्य हैं - ऐसा विकल्प ऊठा है। आहाहा ! समझ में आया ?

दो बातें हुई न ? कि मैं पूजनेवाला हूँ और ये पूज्य हैं। (तो कहते हैं कि) `**परम पूज्य, जिनका नामग्रहण भी अच्छा है ऐसे श्री वर्धमानदेव को,...**' आहाहा ! वर्धमान (अर्थात्) वृद्धिगत हुआ पूर्ण स्वभाव। ऐसा जहाँ नाम भी आता है (वहाँ) वर्धमान - अंदर का ज्ञान पूर्ण प्राप्त है ऐसा अंतर में स्मरण हो जाता (है)। आहाहा ! ऐसी बात है, यह तो संतो की वाणी है।

`**जिनका नाम ग्रहण भी अच्छा है...**' `नाम ग्रहण भी अच्छा है।' (ऐसा कहा)। (क्योंकि) ऐसा विकल्प है न ? `**ऐसे श्री वर्धमानदेव को...**' आहाहा `**ऐसे श्री वर्धमानदेव को, प्रवर्तमान तीर्थ की नायकता के कारण...**' कहते हैं, उनको क्यों नमन करता हूँ ? कि प्रवर्तनेवाला तीर्थ जो है उसकी नायकता के कारण `**प्रथम ही, प्रणाम करता हूँ।**' पहले से ही उनको देह से नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! नमस्कार करता (हूँ) और वंदन करता

(हूँ) - दोनों तरह से नमस्कार करता हूँ (वह) देह से ऐसे नमन करता हूँ और वंदन करता हूँ और वचन से - वचन उच्चार से - वंदन करता हूँ। हैं तो दोनों द्वैत - विकल्प (यहाँ) बाद में द्वैत और अद्वैत दोनों लेंगे। आहाहा !

(अब, कहते हैं कि) `**तत्पश्चात् जो विशुद्ध सत्तावान होने से...**' आहाहा ! जो विशुद्ध - निर्मल सत्तावान् होने से (अर्थात्) तीर्थंकरों और सिद्ध (जो) भूतकाल में हो गये (हैं वे सब) विशुद्ध सत्तावान होने से - इस कारण से - `**ताप से उत्तीर्ण हुए (अन्तिम ताव दिये हुए अग्निमें से बाहर निकले हुए) उत्तम सुवर्ण के समान...**' आहाहा! ध्यान(रूप) अग्नि के अन्तिम ताव से (जो) अन्त में सर्वज्ञ और सर्वदर्शी परमात्मा हुए (हैं वे) ताव से उत्तीर्ण हुए - बाहर निकले हुए - `**उत्तम सुवर्ण समान शुद्ध दर्शनज्ञानस्वभाव को प्राप्त हुए हैं...**' आहाहा ! पहले कहा था न ? कि मैं शुद्ध दर्शनज्ञानसामान्य चैतन्यस्वरूप हूँ। तो वे भी शुद्ध दर्शनज्ञानस्वरूप - चैतन्यस्वरूप को प्राप्त हुए हैं। आहाहा !

`**शुद्ध दर्शनज्ञानस्वभाव को प्राप्त हुए हैं ऐसे शेष अतीत तीर्थंकरों को...**' (अर्थात्) भूतकाल के अनंत तीर्थंकरों को... आहाहा ! वर्तमान में भी (उनके) तीर्थ की नायकता के कारण प्रथम वंदन करता हूँ - नमस्कार करता हूँ। आहाहा ! (किन्तु अब) इन अतीत के तीर्थंकरों को - भूतकाल में हुए (तीर्थंकरों को) `**और सर्व सिद्धों को...**' नमस्कार करता हूँ वह कहेंगे। `**तथा ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार...**' आहाहा! (यह निश्चय की बात है)। ज्ञान का निश्चय आचरण, दर्शन का निश्चय आचरण, चारित्र का (निश्चय) आचरण, तपाचरण (अर्थात्) इच्छा निरोधरूप तपाचरण और `**वीर्याचारयुक्त होने से जिन्होंने परम शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त किया है,...**' देखिए ! ये आचार्य, उपाध्याय और साधु ! आहाहा ! तथा (पं. टोडरमल्लजी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक के पहले अध्याय में) ऐसा लिया है। पहले अरिहंत और सिद्ध का स्वरूप बतलाने के बाद, शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म को प्राप्त आचार्य, उपाध्याय और साधु। ऐसे तीन नाम लिए हैं।

(कहते हैं कि) जैन के आचार्य, उपाध्याय और साधु कैसे होते हैं ? आहाहा! अन्यमत में तो वे (आचार्य, उपाध्याय और साधु) हो सकते ही नहीं। (किन्तु) जैन के आचार्य, उपाध्याय और साधु कैसे होते हैं ?) कि `**जिन्होंने परम शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त किया है।**' आहाहा ! वंदन करने के समय तो विकल्प है। तथापि परम शुद्ध उपयोगभूमिका को हमने प्राप्त किया है (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! यह तो समुच्चय बात करते हैं न? `**जिन्होंने परम शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त किया है,...**' आहाहा! तीर्थंकरों तो उत्तम सुवर्ण के समान (संसार से) पूर्ण बाहर निकल गये हैं। ये (आचार्य, उपाध्याय और साधु) शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त हुए हैं। (किन्तु) सर्वज्ञगुरु - परमगुरु अभी नहीं हुए। आहाहा!

और इसलिये कहा था न कि भगवान शुद्ध परिणतिरूप धर्म के कर्ता हैं। आहाहा ! (जब कि) ये - आचार्य, उपाध्याय और साधुओं ने - परम शुद्ध उपयोगदशा को प्राप्त की है। आहाहा !

अभी ऐसा कहते हैं कि पंचमकाल में - शुभ उपयोग ही होता है। अरे प्रभु! क्या कहते हो ? भाई ! आगे भले ही न बढ़ सको किन्तु इसका स्वीकार तो करो कि मार्ग तो यह है। आहाहा! आचार्य, उपाध्याय और साधु उनको कहते हैं कि जिन्होंने परम उत्कृष्ट शुद्ध उपयोग(दशा को) प्राप्त किया है। आहाहा ! इसका अर्थ यह (हुआ) कि चतुर्थ और पंचम (गुणस्थान में) भी थोड़ा शुद्ध उपयोग किसी समय होता है। भाई ! आहाहा ! किन्तु इन मुनियों ने (तो) - आचार्यों, उपाध्यायों और साधुओं ने (तो) - परम शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त किया है। आहाहा ! क्या शैली! सम्यग्दर्शन पाते हैं तब भी शुद्ध उपयोग ही होता है। परंतु वह परम शुद्ध उपयोग - आचार्य, (उपाध्याय और साधुओं को) ही होता है ऐसा नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है !

`**जिन्होंने परम शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त किया है।**' आहाहा ! (अर्थात्) जिन्होंने पुरुषार्थ से परम शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त किया है ऐसा कहते हैं। `**ऐसे श्रमणों को...**' है न (अंदर) ? श्रमण अर्थात् ? कि आचार्यत्व - आचार्यपना, उपाध्यायपना (और) साधुपना। `**श्रमणों को - जो कि आचार्यत्व उपाध्यायत्व और साधुत्वरूप विशेषों से विशिष्ट (भेदयुक्त) हैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।**' (अर्थात्) ऐसे विशेषों से विशिष्ट भेदवाले हैं उनको नमस्कार करता हूँ। उनको भी देह से नमस्कार करता हूँ। आहाहा ! यह तो शांति का मार्ग है। बहुत धीरे से ग्रहण करे (तो) समझ में आये ऐसा है, बापू ! आहाहा !

भूतकाल के अनंत तीर्थंकरों जो कि सिद्ध हो गये हैं। (तथापि) वे भूतकाल के अनंत तीर्थंकरों और सर्व सिद्धों को लिया है न ? आहाहा ! वरना (तो जो) तीर्थंकर भूतकाल के हैं वे तो सिद्ध हो गये हैं। परंतु उन्होंने इस प्रकार प्राप्त किया है और बाद में सिद्ध हुए हैं (ऐसा बतलाना है)। आहाहा ! तथा परम शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त किया है ऐसे श्रमण (हैं)। आहाहा ! ये आचार्य भगवंत, उपाध्याय भगवंत और साधु भगवंत। आहाहा ! बापू ! जिनकी बाह्य तो नग्नदशा होती है (और) जिनको वस्त्र का एक टुकडा भी होता नहीं (तथा जिन्होंने) अभ्यंतर में शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त करके, उसमें स्थिर नहीं रहते और विकल्प आता है (तो) भी उन्होंने शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त किया है। - वे साधु हैं, वे उपाध्याय हैं और वे आचार्य हैं। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसे उनको नमस्कार करता हूँ - उनको सर झुकाकर नमन करता हूँ। देह से यानी कि सर झुकाकर (नमन करता हूँ)। आहाहा !

(अब, कहते हैं कि) **`तत्पश्चात् इन्हीं पंचपरमेष्ठीयों को,...'** पांचों परमेष्ठी आ गये न ? **`उस-उस व्यक्ति में (पर्याय में) व्याप्त होनेवाले सभी को,...'** (यानी कि) उस-उस पर्याय में रहनेवाले सभी को... आहाहा ! और **`वर्तमान में इस क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभाव होने से...'** आहाहा ! (पहले तो) महावीर भगवान को लिया। और बाद में अतीत के अनंत तीर्थंकरों और सिद्धों को लिया। (और अब) इस वर्तमान काल के तीर्थंकर हैं (उनकी बात करते हैं)। आहाहा ! समझ में आया ? (पहले) वर्धमान महावीर (भगवान को) लिया - नमस्कार (किया)। (क्योंकि) उनका शासन चलता है। अत: प्रवर्तमान तीर्थ की नायकता के कारण (नमस्कार किया) और बाद में अतीत के अनंत तीर्थंकरों हो गये, सिद्ध हो गये उनको (नमस्कार किया) और अब वर्तमान में महाविदेह में प्रभु (सीमंधर भगवान) बिराजमान हैं (उनको नमस्कार करते हैं)। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) **`इस क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभाव होने से...'** इस क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभाव होने से, किन्तु महाविदेहक्षेत्र में... अब वर्तमान लेना है न ? (तो कहते हैं कि) वर्तमान में... आहाहा ! इस क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभाव है। पहले वर्धमान प्रभु को लिया। और बाद में अतीत को लिया। अब वर्तमान (लेते हैं)। वर्तमान में इस क्षेत्र में (तीर्थंकर) उत्पन्न होने का अभाव है। आहाहा! **`महाविदेहक्षेत्र में उनका सद्भाव होने से...'** आहाहा ! वर्तमान में यहाँ (तीर्थंकर) नहीं। अतीत में हुवे महावीर भगवान को वंदन किया, नमस्कार किया। वर्तमान में यहाँ (तीर्थंकर) नहीं। किन्तु वर्तमान में महाविदेह में हैं। आहाहा ! **`महाविदेहक्षेत्र में उनका सद्भाव होने से मनुष्यक्षेत्र में प्रवर्तमान...'** वे मनुष्यक्षेत्र में हैं न ? (तो) **`मनुष्यक्षेत्र में प्रवर्तमान तीर्थनायकयुक्त...'** जो सभी वर्तमान में हैं वे तीर्थनायकयुक्त **`वर्तमानकालगोचर करके,...'** (अर्थात्) सभी अतीत के तीर्थंकरों को भी वर्तमान में स्थापना करके (स्मरण करता हूँ, ऐसा कहते हैं)। आहाहा! समझ में आया ?

मनुष्यक्षेत्र में (प्रवर्तमान) तीर्थनायकयुक्त वर्तमानकालगोचर कर के (यानी कि) वर्तमान में जैसे भगवान बिराजमान हैं वैसे ही अतीत के तीर्थंकरों को भी वर्तमान में स्थापना करके... आहाहा ! वर्तमानकाल में गम्य करके (अर्थात्) (**`महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान श्री सीमंधरादि तीर्थंकरों की भाँति मानों सभी पंच परमेष्ठी भगवान वर्तमानकाल में ही विद्यमान हों, इस प्रकार अत्यंत भक्ति के कारण भावना भाकर - चिंतवन करके उन्हें**) **युगपद् युगपद्'** अर्थात् सभी को **`अर्थात् समुदायरूप से और प्रत्येक प्रत्येक को'** (यानी कि) एक-एक को, भिन्न-भिन्न आहाहा ! **`अर्थात् व्यक्तिगतरूप से सम्भावना करता हूँ'** (सम्भावना अर्थात्) सन्मान करना, आराधन करना। आहाहा ! टीका बहुत गंभीर है। आहाहा !

श्रोता :- यहाँ भविष्य की बात नहीं आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- इस समय तो हो गये (हैं) और वर्तमान में हैं (यानी कि) हुवे (हैं) और वर्तमान हैं (इतने लिये हैं)। श्री वर्धमान भगवान हो गये हैं और (श्री सीमंधर भगवान) वर्तमान हैं। (तो) उतने लिये। आहाहा ! (उनको) व्यक्तिगतरूप से सन्मान करता हूँ। प्रत्येक को अर्थात् वर्तमान और अतीत के सभी को वर्तमानवत् सन्मान करता हूँ। आहाहा ! (अब) 'किस प्रकार से संभावना करता हूँ ?' किस प्रकार सन्मान करता हूँ? आहाहा ! (वह कहते हैं)।

'मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर समान जो परम निर्ग्रंथता की दीक्षा का उत्सव...' आहाहा! उनकी (आचार्य की) तो दीक्षा का उत्सव हो चुका है। किन्तु (जैसे कि) इस समय ही (दीक्षा का उत्सव हो इस प्रकार बात करते हैं)। आहाहा ! मोक्षलक्ष्मी (अर्थात्) सिद्ध की अनंत ज्ञान, दर्शन आदि लक्ष्मी (और) उसके स्वयंवर समान मेरी दीक्षा है (ऐसा कहते हैं)। (स्वयंवर यानी कि) उसको स्वयं - मैं खुद वरता हूँ। आहाहा ! यह स्वयंवर नहीं होता ? (जैसे) कन्या के लिये स्वयंवर होता है वैसे यह मेरी दीक्षा (मोक्षलक्ष्मी का) स्वयंवर है - (वह स्वयं मुझे वरण करती है।

मेरे लिये परम निर्ग्रंथ दीक्षा का उत्सव स्वयंवर के समान है, आहाहा ! आनंदमय प्रसंग है। आहाहा ! परम निर्ग्रंथता की दीक्षा का प्रसंग हमारे लिये है। आहाहा! **'उसके उचित मंगलाचरणभूत'** - (अर्थात्) मंगल के आचरणभूत... आहाहा ! अभी यह व्यवहार से बात है हँ ! विकल्प की (बात है)। **'मंगलाचरणभूत जो कृतिकर्मशास्त्रोपदिष्ट वंदनोच्चार (कृतिकर्मशास्त्र में उपदेशे हुए स्तुतिवचन) के द्वारा संभावना करता हूँ।'** कृतिकर्मशास्त्रोपदिष्ट अर्थात् अंगबाह्य १४ प्रकीर्णको में छट्ठा प्रकीर्णक 'कृतिकर्म' है। जिसमें नित्य-नैमित्तिक क्रिया का वर्णन है। पहले प्रणमन था, अब वंदन कहा। प्रणमन करता हूँ अर्थात् देह से नमन करता (हूँ)। वंदनोच्चार (अर्थात्) वाणी से (स्तुति)। **'...वंदनोच्चार (कृतिकर्मशास्त्र में उपदेशे हुए स्तुतिवचन) के द्वारा संभावना करता हूँ।'** आहाहा !

देखा ? स्तुति वचन का विकल्प है, भेद (है)। (क्योंकि) नमस्कार किया है। (उसमें) मैं और परम ऐसे दो (हैं)। मैं आराधक (और) वह आराध्य ऐसे भेद से उनका सन्मान करता हूँ। आहाहा ! यह विकल्प, व्यवहार है। आहाहा ! (यहाँ तो) दूसरा कहना है कि वह (विकल्प) है उसका ज्ञान किया है, उसमें मैं हूँ, इस प्रकार। आहाहा ! मैं संवेदन में हूँ ऐसा आया है न ? जो (विकल्प) है उसका यहाँ ज्ञान होता है (और) उस ज्ञान में - स्वसंवेदन में मैं हूँ, दर्शनज्ञान के चैतन्यस्वरूप में मैं हूँ। आहाहा ! क्या उनकी शैली ! आहाहा !

श्रोता :- परम निर्ग्रंथता में श्रेणी गिनना ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- मुनित्व, मुनित्व। (मुनित्व यह) परम निर्ग्रंथता की दीक्षा का उत्सव है। आहाहा ! परम निर्ग्रंथ (मुनि हैं) (और) समकिती को भी एक न्याय से निर्ग्रंथ तो कहने में आता है। (क्योंकि) राग की गाँठ से (वह) निकल गया है। किन्तु इन मुनियों को तो परम निर्ग्रंथता (है)। आहाहा ! परम निर्ग्रंथ मुनि हैं। आहाहा! ये तो आचार्य हैं। (उनको) परम निर्ग्रंथता की दीक्षा का उत्सव है। आहाहा ! आनंदमय उत्सव है। आहाहा ! **`उसके उचित मंगलाचरणभूत जो कृतिकर्मशास्त्रोपदिष्ट वंदनोच्चार (कृतिकर्मशास्त्र में उपदेशे हुए स्तुतिवचन) के द्वारा संभावता हूँ।**' विकल्प से (सम्मान करता हूँ)। आहाहा!

`अब इस प्रकार अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व साधुओं को प्रणाम और वंदनोच्चार**' दो हुवे न ? सिर सहित और वचन उच्चार से (यानी कि) देहनमन और वचनोच्चार, आहाहा ! **`...से प्रवर्तमान द्वैत के द्वारा,...' आहाहा ! यह द्वैत है। (क्योंकि) मैं और यह (इस प्रकार दो हैं न ?) प्रणमन करता हूँ और वचन उच्चार से (वंदन करता हूँ तो वह भी) द्वैत है, विकल्प है, राग है। आहाहा !

अब अद्वैत कहते हैं, `भाव्यभावक भाव से...' भाव्य (अर्थात्) भावना करने योग्य, चिंतवन करने योग्य, ध्यान करने योग्य अर्थात् ध्येय (और भावक अर्थात्) भावना करनेवाला, चिंतवन करनेवाला, ध्यान करनेवाला अर्थात् ध्याता। ध्याता और ध्येय, भाव्य-ध्येय (है) और भावक-ध्याता (है)। उस रूप होने के कारण **`उत्पन्न अत्यंत गाढ़ इतरेतर मिलन के कारण...**' आहाहा ! मैं आराधक और मैं (ही) आराध्य इस प्रकार अभेद हो गया। (जो) विकल्प है वह तो है। किन्तु उसके बाद में भी और उस काल में भी एक न्याय से अद्वैत नमस्कार हो गया है। आहाहा !

नमस्कार के दो प्रकार (हैं)। द्वैत और अद्वैत। द्वैत में प्रणमन और वंदन (हैं)। (किन्तु) अद्वैत में (वे) दो नहीं। नमस्कार के दो प्रकार !! समझ में आया ? आहाहा! है न (अंदर) ? **`अत्यंत गाढ़ इतरेतर मिलन के कारण...**' है ? (इतरेतर मिलन अर्थात्) एक दूसरे का परस्पर मिल जाना अर्थात् एकरूप हो जाना। यानी कि भिन्नता नहीं रहना। आहाहा ! **`समस्त स्वपर का विभाग विलीन हो जाने से...**' (पहले) द्वैत कहा और अब अद्वैत कहते हैं। आहाहा ! **`जिसमें अद्वैत प्रवर्तमान है...**' है ? आहाहा! (अद्वैत का अर्थ मूल शास्त्र में नीचे है कि) `पंच परमेष्ठी के प्रति अत्यंत आराध्य भाव के कारण आराध्यरूप पंच परमेष्ठी भगवान और आराधकरूप अपने भेद का विलय हो जाता है।' आहाहा ! `इसप्रकार नमस्कार में अद्वैत देखा जाता है।' आहाहा ! नमस्कार में द्वैत भी है और इसप्रकार अद्वैत भी है। आहाहा ! नमस्कार में प्रणमन और वंदन ऐसे भेद भी हैं और नमस्कार में भाव्यभावक की भिन्नता छोड़कर अंदर अभेदरूप नमन करता है (तो ऐसी

अभेदता भी है)। ऐसा (अभेद) नमस्कार (भी है)। (इस प्रकार) नमस्कार के दो प्रकार (हैं)। आहाहा!

प्रश्न :- हमें दोमें से कौन सा नमस्कार करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- ज्ञान करने को दो हैं। (किन्तु) करने की (यहाँ बात नहीं)। यह तो विकल्प आता है कि मैं वंदन करनेवाला और ये वंदन के योग्य। मैं वंदन करनेवाला यानी कि वचन उच्चार से (स्तुति) और मैं नमस्कार करनेवाला अर्थात् देह से (नमन)। ऐसा जो नमस्कार (है) वह द्वैत नमस्कार है और अंदर में विकल्प रहित आराध्य और आराधक मैं ही हूँ (वह अद्वैत नमस्कार है)। आराधक मैं और आराध्य भगवान यह (भेद) छूटकर, आराधक और आराध्य, ध्येय और ध्याता, दोनों एक ही, `मैं' हूँ। (अर्थात्) व्यवहार में निमित्त जो पर था उसे छोड़कर कहते हैं कि ध्येय भी मैं और ध्याता भी `मैं' (वह अद्वैत नमस्कार है) आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म है, प्रभु !

प्रश्न :- द्वैत-अद्वैत नमस्कार इस समय में और बाद में किस प्रकार है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वे सभी (द्वैत-अद्वैत) साथ में ही हैं। जितना अंतर एकाग्र हुआ उतना अद्वैत नमस्कार (है) (और) जितना विकल्प है उतना द्वैत (नमस्कार है)। आहाहा! ज्ञानप्रधान कथन है न, अत: उसमें ज्ञान है। आहाहा ! विकल्प छूट जाता है तब ही ऐसा होता है और विकल्प के काल में (भी) जो द्वैतपना है उसकी जब अभेदता हो जाती है तब अद्वैत नमस्कार (होता) है। `नम: समयसाराय' आहाहा ! यह प्रवचनसार! आहाहा ! (कहते हैं कि) **`जिसमें अद्वैत प्रवर्तमान है ऐसा नमस्कार करके...'** देखा? आहाहा ! दो हुये न ? कि `प्रणाम और वंदनोच्चार से प्रवर्तमान द्वैत के द्वारा...' वह भी नमस्कार (है) और भाव्यभावकभाव का विभाग विलीन हो जाने से जिसमें अद्वैत प्रवर्तमान है ऐसा (भी) नमस्कार (है)। (इस प्रकार) दो हुवे न ? भाई ! आहाहा ! समझ में आया?

(अब कहते हैं कि) **`उन्हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्व साधुओं के आश्रम को,...'** आहाहा ! अरहंत-सिद्ध-आचार्य का पद क्या है ? पंच परमेष्ठी का आश्रम (आश्रयस्थान) क्या है ? कि अंदर विशुद्ध ज्ञानदर्शनप्रधान उनका आश्रम है। - भाव आश्रम (है)। यह बाहर का आश्रम (वह उनका आश्रम) नहीं। आहाहा ! (तो कहते हैं कि) **`आश्रम को - जो कि (आश्रम) विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान होने से...'** जिसके आश्रम में - (जिसके) अंदर में - जिसमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रधान (हैं)। (वह) पंच परमेष्ठी का आश्रम है। (यानी कि) स्वयं ही अंदर आश्रम है वह विशुद्धज्ञानदर्शन संपन्न (है)। है (अंदर)? `**विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधान होने से सहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभाववाले**' (अर्थात्) सहज शुद्ध दर्शन और ज्ञान जिसका स्वभाव है ऐसे। `**सहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभाववाले आत्मतत्त्व का...**' यह आत्मतत्त्व कैसा है ? (कि)

सहज शुद्ध (जो) दर्शन है और सहज शुद्ध (जो) ज्ञान है (उसके) स्वभाववान (है) ऐसे **`आत्मतत्त्व का श्रद्धान और ज्ञान जिसका लक्षण है...'** यह आश्रम-भावआश्रम (है)। **`ऐसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का संपादक है उसे - प्राप्त करके,...'** आहाहा ! (संपादक अर्थात्) प्राप्त करानेवाला। आश्रम (उसको सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान) प्राप्त करानेवाले हैं (ऐसा कहते हैं)।

यहाँ कहते हैं कि वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान को प्राप्त हुआ (ऐसा) मैं अब चारित्र अंगीकार करता हूँ।

प्रश्न :- चारित्र तो है ही ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वही तो यहाँ समझाना है न ? कि इसप्रकार चारित्र अंगीकार किया है और इस प्रकार चारित्र अंगीकार (होता है)। - ऐसा बतलाना है न ? आहाहा! (तो कहते हैं कि) **`उसे - प्राप्त करके, सम्यग्दर्शनज्ञानसंपन्न होकर,...'** देखा ? आहाहा! भगवानआत्मा ज्ञायकस्वरूप है उसका दर्शन प्राप्त करके (और) उसके ज्ञान को प्राप्त करके (अर्थात्) निश्चय दर्शन, ज्ञान को प्राप्त करके... आहाहा !

कोई कहता है कि निश्चय सम्यग्दर्शन का खयाल नहीं आता ! अरे प्रभु ! क्या कहता है, भाई ? आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि विशुद्ध - सहज विशुद्ध - **`सहज शुद्धदर्शनज्ञानस्वभाववाले आत्मतत्त्व का श्रद्धान और ज्ञान जिसका लक्षण है ऐसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का संपादक है...'** वह आश्रम - भावआश्रम (है) **`उसे - प्राप्त कर के, सम्यग्दर्शनज्ञानसंपन्न होकर, जिसमें कषायकण विद्यमान होने से...'** अब चारित्र की व्याख्या आती है। आहाहा !

कहते हैं कि **`जिसमें कषायकण'** (अर्थात्) कषाय का छोटा अंश **`विद्यमान होने से जीव को जो पुण्यबंध की प्राप्ति का कारण है...'** आहाहा ! (यानी कि) छट्ठे गुणस्थान में अभी राग का अंश है। आहाहा ! सम्यग्दर्शन और ज्ञान को प्राप्त करके अब मैं साम्यभाव को, वीतरागभाव को (प्राप्त करता हूँ) कि जिसमें छट्ठे गुणस्थान में कषाय का अंश खड़ा है। आहाहा !

`पुण्यबंध की प्राप्ति का कारण है ऐसे सराग चारित्र को - वह (सराग चारित्र) क्रम से आ पड़ने पर भी...' (यहाँ) इस प्रकार (छट्ठे गुणस्थान को पहले) लिया है। वरना तो पहले सातवाँ (गुणस्थान) आता है। भाई ! किन्तु यहाँ तो दर्शन-ज्ञान को प्राप्त करके अब चारित्र को - वीतराग चारित्र को - अंगीकार करता हूँ। उसके पहले ऐसा एक विकल्प, राग सराग(चारित्र) आता है (ऐसा बतलाना है)। (किन्तु) वह चारित्र सराग है और बंध का कारण है। आहाहा !

(कहते हैं कि) `**(सरागचारित्र) क्रम से आ पड़ने पर भी...**' अर्थात् बाद में (ऐसा लिया कि) छट्ठे गुणस्थान में कषाय का अंश आया है (वह उसके क्रम में आया है)। `**(गुणस्थान-आरोहण के क्रम में बलात् अर्थात् चारित्रमोह के मन्द उदय से आ पड़ने पर भी) - दूर उल्लंघन करके,...**' आहाहा ! पंच महाव्रतादि का विकल्प उठा है वह कषाय का अंश है, आहाहा ! `**दूर उल्लंघन करके,...**' ऐसे फिर भाषा (देखी) ? `उल्लंघन करके' ऐसा भी नहीं। आहाहा ! (किन्तु) `**(दूर उल्लंघन करके)**' (अर्थात्) दूर से उसे उत्पन्न नहीं होने दिया। `**जो समस्त कषायक्लेशरूपी कलंक से भिन्न होने से निर्वाणप्राप्ति का कारण है ऐसे वीतरागचारित्र...**' देखिये ! यह चारित्र! वीतरागचारित्र ! आहाहा! मुनि का वीतराग चारित्र हँ ! केवली की बात दूसरी है। आहाहा ! `**समस्त कषायक्लेश**' वह राग था वह क्लेश था। आहाहा! (उसका उल्लंघन करके) यहाँ पर समस्त कषायक्लेश है वह कलंक है। आहाहा! `**जो समस्त कषायक्लेशरूपी कलंक से भिन्न होने से निर्वाणप्राप्ति का कारण है ऐसे वीतरागचारित्र नामक साम्य को प्राप्त करता हूँ।**' सम्यग्दर्शन, ज्ञान को प्राप्त करके - क्रम से राग का अंश सरागरूप से आता है, उसका उल्लंघन करके मैं, `**वीतरागचारित्र नामक साम्य को प्राप्त करता हूँ।**' यहाँ पंचमकाल के आचार्य मुनि स्वयं कहते हैं। आहाहा!

अरे भगवान ! (आचार्य स्वयं कहते हैं कि) ज्ञायकभाव है उसका दर्शन-ज्ञान हुआ है। (तथापि कहते हैं कि) अभी चारित्र में राग का अंश आता है, आहाहा! (तथापि) उसका उल्लंघन करके वीतरागचारित्र नामक साम्य को प्राप्त करता हूँ। ओहो...हो! यह कुंदकुंदाचार्य ऐसा कहते हैं, उसी प्रकार उनके टीकाकार कहते हैं। आहाहा !

(कहते हैं कि) `**सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एक्यस्वरूप एकाग्रता को मैं प्राप्त हुआ हूँ....**' आहाहा ! भगवान कुंदकुंदाचार्य कहते हैं कि मैं पंच परमेष्ठी का स्थान - आश्रम - जो घर (है) ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान को प्राप्त करके अब चारित्र को - वर्तमान में विकल्प आता है तथापि उसको छोड़कर वीतरागचारित्र को - अवलम्बता हूँ। आहाहा ! वही (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) इन तीनों की एकस्वरूप एकाग्रता को मैं प्राप्त हुआ हूँ। आहाहा ! क्या वाणी है, और क्या तत्त्व ! आहाहा ! अलौकिक है! `**यह (इस) प्रतिज्ञा का अर्थ है।**' आहाहा !

`**इस प्रकार तब इन्होंने (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) साक्षात् मोक्षमार्ग को अंगीकार किया।**' आहाहा ! देखो, पंचमकाल के संत आचार्य ऐसा कहते हैं कि मुझे सम्यग्दर्शनज्ञान प्राप्त हुआ है, अब जो राग का अंश बाकी है उसे समाप्त करके वीतरागचारित्र को प्राप्त करता हूँ। इस प्रकार तीनों (की एकरूपता) का आश्रय लिया है - इस प्रकार इस

प्रतिज्ञा का अर्थ है। आहाहा ! क्या टीका है ! आश्चर्यकारी बात है ! ओहोहो ! एक-एक अक्षर व एक-एक शब्द में बहुत गम्भीरता (है)। आहाहा! यह कोई कथा-कहानी नहीं है। आहाहा !

`साक्षात् मोक्षमार्ग को अंगीकार किया।'** है (अंदर) ? आहाहा ! है न ? वह तो टीका मैं है न ? **`एवं तावदयं साक्षान्मोक्षमार्ग संप्रतिपन्नः' आहाहा ! ज्ञायकस्वभाव (कि) जो दर्शनज्ञानसामान्यस्वरूपचैतन्यस्वरूप (है) उसमें मैं दर्शन और ज्ञान को प्राप्त करके अब, बीच में (जो) राग आया है उसका उल्लंघन करके, आहाहा ! वीतराग चारित्र को अंगीकार करता (हूँ)। कि जो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकाग्रता को - एकस्वरूप की एकाग्रता को - तीनों की एकस्वरूप एकाग्रता को - मैं प्राप्त हुआ हूँ। (यानी कि) ऐसे साक्षात् मार्ग को अंगीकार किया। आहाहा ! धन्य काल ! धन्य दिन ! देखिये! ये आचार्य, उपाध्याय और साधु। प्रभु ! आचार्य-उपाध्याय-साधु कैसे होते हैं, यहाँ तो जिन्होंने परम शुद्ध उपयोगभूमिका को प्राप्त किया है (वे आचार्य - उपाध्याय और साधु हैं ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! उस (परम शुद्ध उपयोगभूमिका को हमने प्राप्त किया है) वह हम जानते हैं, उसका हमें ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! जानते नहीं ऐसा नहीं।

आहाहा ! भगवान ज्ञायकस्वरूप की अनुभव में प्रतीत वह सम्यग्दर्शन, भगवान ज्ञायकस्वरूप का ज्ञान (वह सम्यग्ज्ञान) और वह (भगवान ज्ञायकस्वरूप में) राग रहित मग्नता वह वीतराग (सम्यक्) चारित्र (है)। वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकाग्रता की एक्यता को - उस स्वरूप की एकाग्रता को - मैं प्राप्त हुआ हूँ। (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! (यहाँ) पर्यायें कही - तीन पर्याय को प्राप्त हुआ (ऐसा कहा)। (क्योंकि) ज्ञानप्रधान कथन है न ? आहाहा !

(कहते हैं कि) **`साक्षात् मोक्षमार्ग को अंगीकार किया।'** अरे ! पंचमकाल के संत आहाहा ! दर्शन-ज्ञान का तो ज्ञान हुआ किन्तु मैंने चारित्र को अंगीकार (किया) - साम्यभाव को प्राप्त करता हूँ। (और) एक की एकाग्रता को भी मैं प्राप्त हुआ हूँ उसका मुझे ज्ञान है (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! वाणी न्यारी, बापू ! यह दिगंबर संतो की वाणी न्यारी ! आहाहा ! वीतरागता ही चारित्र है और सकल चारित्र (भी) यही है। आहाहा ! पंचपरमेष्ठी की पाँच गाथा बहुत (गंभीर हैं)। अब छट्ठी गाथा।

`अब वे ही (कुन्दकुन्दाचार्यदेव) वीतरागचारित्र इष्ट फलवाला है इसलिये...'** आहाहा! रागरहित जो चारित्र (है) वह इष्ट फलवाला है। (क्योंकि) उसका फल मोक्ष है। अतः वह इष्ट है, **`उसकी उपादेयता' (है), आहाहा ! वीतराग चारित्र वह इष्ट अर्थात् मोक्ष को देनेवाला होने से उसकी उपादेयता (है)। (अर्थात्) ग्रहण करने योग्य (है)। **`और सरागचारित्र अनिष्ट फलवाला है इसलिये...'** आहाहा ! (वह) राग का अंश है। (किन्तु) अकेला राग

अथायमेव वीतरागसरागचारित्रयोरिष्टानिष्टफलत्वेनोपादेयहेयत्वं विवेचयति -

संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविहवेहिं।
जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणप्पहाणादो।।६।।

संपद्यते निर्वाणं देवासुरमनुजराजविभवैः।
जीवस्य चरित्राद्दर्शनज्ञानप्रधानात्।।६।।

संपद्यते हि दर्शनज्ञानप्रधानच्चारित्राद्वीतरागान्मोक्षः। तत एव च सरागाद्देवासुरमनुजराजविभवक्लेशरूपो बन्धः। अतो मुमुक्षुणेष्टफलत्वाद्वीतरागचारित्रमुपादेयमनिष्टफलत्वात्सरागचारित्रं हेयम्।।६।।

अथोपादेयभूतस्यातींद्रियसुखस्य कारणत्वाद्वीतरागचारित्रमुपादेयम्। अतींद्रियसुखापेक्षया हेयस्येन्द्रियसुखस्य कारणत्वात्सरागचारित्रं हेयमित्युपदिशति - **संपज्जदि** संपद्यते। किम्। **णिव्वाणं** निर्वाणम्। कथम्। सह। कैः। **देवासुरमणुयरायविहवेहिं** देवासुरमनुष्यराजविभवैः। कस्य। **जीवस्स** जीवस्य। कस्मात्। **चरित्तादो** चारित्रात्। कथंभूतात्। **दंसणणाणप्पहाणादो** सम्यग्दर्शनज्ञानप्रधानादिति। तद्यथा-आत्माधीनज्ञानसुखस्वभावे शुद्धात्मद्रव्ये यन्निश्चलनिर्विकारानुभूतिरूपमवस्थानं तल्लक्षणनिश्चयचारित्राज्जीवस्य समुत्पद्यते। किम्। पराधीनेन्द्रियजनितज्ञानसुखविलक्षणं, स्वाधीनातीन्द्रियरूपपरमज्ञानसुखलक्षणं निर्वाणम्। सरागचारित्रात्पुनर्देवासुरमनुष्यराजविभूतिजनको मुख्यवृत्त्या विशिष्टपुण्यबन्धो भवति, परम्परया निर्वाणं चेति। असुरेषु मध्ये सम्यग्दृष्टिः कथमुत्पद्यते इति चेत् निदा-नबन्धेन सम्यक्त्वविराधनां कृत्वा तत्रोत्पद्यत इति ज्ञातव्यम्। अत्र निश्चयेन वीतरागचारित्रमुपादेयं सरागं हेयमिति भावार्थः।।६।।

नहीं। (क्योंकि) मुनि है इसलिये (सम्यक्) चारित्र का अंश है। तथापि अभी भी राग का अंश साथ में है (तो) ऐसा सरागचारित्र अनिष्ट फलवाला होने से... गज़ब है ! आहाहा ! साधु के पंचमहाव्रत के परिणाम और २८ मूलगुण सरागचारित्र (है, और वह अनिष्ट फलवाला होने से '**उसकी हेयता का विवेचन करते हैं।**' (अर्थात्) वह त्यागेने योग्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! (आचार्य भगवान ने) द्वैत नमस्कार किया है - प्रणमन और वंदन (किया है) तथापि कहते हैं कि वे सब हेय हैं... आहाहा !

आहाहा ! ऐसे (जीव) लिये (हैं) कि जो समकित से भ्रष्ट हुये हैं और असुरेन्द्र का आयुष्य बँध गया है। (तथापि, वे निर्वाण की प्राप्ति करेंगे ऐसे कहते हैं)।

टीका :- '**दर्शनज्ञानप्रधान चारित्र से...**' जिसमें सम्यग्दर्शन और ज्ञान प्रधान हैं... निश्चय हाँ, व्यवहार तो राग है, (जिसमें) दर्शनज्ञान प्रधान है ऐसे चारित्र से '**यदि वह** (**चारित्र**) **वीतराग हो तो मोक्ष प्राप्त होता है;...**' आहाहा !

प्रभु ! आप ऐसा कहते हैं किन्तु इस समय मोक्ष तो नहीं है ? तथापि, 'हमने तो वीतराग चारित्र अंगीकार किया है' - (ऐसा कहते हो) ? वह उतना ही मोक्ष है। और

अब वे ही (कुंदकुंदाचार्यदेव) वीतरागचारित्र इष्ट फलवाला है इसलिये उसकी उपादेयता और सरागचारित्र अनिष्ट फलवाला है इसलिये उसकी हेयता का विवेचन करते हैं :-

गाथा-६

सुर असुर-मनुजेन्द्रो तणा विभवो सहित निर्वाणनी।
प्राप्ति करे चादित्रथी जीव त्रानदर्शन मुख्य थी।।६।।

अन्वयार्थ :- [जीवस्य] जीवको **[दर्शनाज्ञानप्रधानात्]** दर्शनज्ञानप्रधान **[चारित्रात्]** चारित्रसे **[देवासुरमनुजराजविभवैः]** देवेन्द्र, असुरेन्द्र और नरेन्द्रके वैभवोंके साथ **[निर्वाणं]** निर्वाण **[संपद्यते]** प्राप्त होता है। (जीवको सराग चारित्रसे देवेन्द्र इत्यादिके वैभवोंकी और वीतराग चारित्रसे निर्वाणकी प्राप्ति होती है।)

टीका :- दर्शनज्ञानप्रधान चारित्रसे, यदि वह (चारित्र) वीतराग हो तो मोक्ष प्राप्त होता है; और उससे ही, यदि वह सराग हो तो देवेन्द्र-असुरेन्द्र-नरेन्द्रके वैभवक्लेशरूप बन्धकी प्राप्ति होती है। इसलिये मुमुक्षुओंको इष्ट फलवाला होनेसे वीतरागचारित्र ग्रहण करने योग्य (उपादेय) है, और अनिष्ट फलवाला होनेसे सरागचारित्र त्यागने योग्य (हेय) है।।६।।

अंत में (२७४ गाथा में) कहेंगे न ? (कि) मोक्षमार्ग है वह मोक्ष ही है। आहाहा ! भगवान(आत्मा) मुक्तस्वरूप है। प्रभु ! उसका दर्शन-ज्ञान हुआ तब उतना मुक्त हो गया। और चारित्र हुआ तब (तो) बहुत मुक्त हो गया। आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि मुक्तस्वरूप का दर्शन, मुक्तस्वरूप का ज्ञान और मुक्तस्वरूप में वीतरागी मग्नता हो तो मोक्ष प्राप्त होता है। '**और उससे ही, यदि वह सराग हो तो देवेन्द्र...**' वह तो ठीक कि वैमानिक देव होता है। किन्तु 'असुरेन्द्र' - वह बात थोड़ी... (सूक्ष्म है)। आहाहा ! किसी समय कहते हैं कि उसे निदान आदि हो जाता है और समकित से भ्रष्ट हो जाये ऐसा जरा हाल में समय है। तथापि वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे। विशेष बात कहेंगे।

a a a

दि. ९-१-१९७९ - प्रवचन नं. - ३

प्रवचनसार, छट्ठी गाथा (चलती है)। (यहाँ कहते हैं कि) `**दर्शनज्ञानप्रधान चारित्र से...**' कुंदकुंदाचार्य महाराज ऐसा कहते हैं कि मैं साम्य को प्राप्त करता (हूँ)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान(रूप जो) भावाश्रम है उसे प्राप्त करके (अब) मैं वीतराग साम्यभावरूपी धर्म को अंगीकार करता हूँ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना चारित्र होता नहीं।

दर्शनज्ञानप्रधान (अर्थात्) मुख्य, आत्मदृष्टि - द्रव्यदृष्टि, ज्ञायक स्वभाव की दृष्टि प्रधान (होती है)। और उस ज्ञायक स्वभाव का ज्ञान वह (भी) पहले प्रधान (होता है)। आहाहा ! (बाद में) चारित्र से (अर्थात्) सम्यग्दर्शनज्ञानप्रधान चारित्र से `**यदि वह (चारित्र) वीतराग हो तो...**' राग के अंश के बिना की मग्नता (हो तो) (अर्थात्) स्वरूप में मग्नतारूप वीतराग चारित्र (हो तो) `**मोक्ष प्राप्त होता है।**' (और) उनकी दशा बाह्य में नग्न (ही) होती है।

अंतर में उनकी दशा वीतराग चारित्र की हो तो वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं। `**और उससे ही, यदि वह सराग हो तो...**' उससे ही अर्थात् दर्शन-ज्ञान तो है, किन्तु चारित्र की वीतरागता नहीं हो और छट्ठे गुणस्थान में राग का विकल्प हो (तो) आहाहा! उससे ही वह सराग हो (तो) (अर्थात्) छट्ठे गुणस्थान में जो पंच महाव्रतादि के राग का भाग रहता है, वह यदि हो तो, उस राग से `देवेन्द्र' - वैमानिक देव का इन्द्र आदि होता (है) और `असुरेन्द्र' - असुर का इन्द्र होता (है)।

तो (प्रश्न होता) है कि दर्शनज्ञानप्रधान से यदि सराग हो तो असुर(देव) कैसे होता है ?

(श्री जयसेनाचार्य ने) उसका स्पष्टीकरण किया है कि दर्शन से भ्रष्ट हो जाये (तो असुरदेव होता है) आहाहा ! जयसेनाचार्य की टीका में है न ? `**निदानबन्धेन**'।`**असुरेषु मध्ये सम्यग्दृष्टिः कथमुत्पद्यते इति चेत्**' संस्कृत में तीसरी पंक्ति है। `**निदानबन्धेन सम्यक्त्वविराधनां कृत्वा**' आहाहा ! अंदर में कोई राग की कुछ अपेक्षा हो जाये और सम्यग्दृष्टि भ्रष्ट हो जाये (तो असुरदेव होता है)। देखा ? दर्शनज्ञानप्रधान चारित्र था तो वे मुक्ति को पाते (हैं) और दर्शनज्ञानप्रधान चारित्र होने पर भी जिसको राग है वे तो वैमानिक में - सुरेन्द्रों में जाते (हैं)। किन्तु वह यदि दर्शनज्ञान से भ्रष्ट हो जाये - जिसने प्राप्त

किया है वह भी भ्रष्ट हो जाये (तो असुरेन्द्र में जाता है)। पंचमकाल है इसलिये ऐसा एक भाव लिया। वरना तो ३८ गाथा आदि में तो ऐसा लिया कि जो सम्यग्दर्शन हुआ वह अब हमको (छूटकर) फिर से मिथ्यात्व उत्पन्न होनेवाला नहीं। - ऐसी एक राजमार्ग की बात की। आहाहा !

किन्तु यहाँ थोड़ी (ऐसी बात की) सम्यग्दर्शन था, ज्ञान था (और) चारित्र भी था, किन्तु उससे वह भ्रष्ट हुआ। आहाहा ! (अर्थात्) द्रव्यदृष्टि - ज्ञायकभाव की जो दृष्टि होनी चाहिये वह दृष्टि बदल गई और किसी राग और विकल्प के प्रेम में फँस गया। तो वह जीव-मिथ्यादृष्टि-मरकर असुरेन्द्र होता है, असुर-असुर (होता है)। आहाहा ! पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र था। किन्तु बाद में भ्रष्ट हुआ उसकी यहाँ बात है। आहाहा ! वह असुरेन्द्रों में जाता है, (और) सम्यग्दर्शन सहित सराग चारित्र हो तो, वह नरेन्द्रों में (भी) जाता है। (किन्तु) स्वर्गमें से आकर मनुष्य होता है। पहले तो (वह) स्वर्ग में ही जाता है। सम्यग्दृष्टि जो मनुष्य होता है वह मरकर स्वर्ग में वैमानिक में ही जाता है। सम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर मनुष्य नहीं होता। - वह परमागम का लेख है, सिद्धांत (है)। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ जो 'नरेन्द्र (होता है)' ऐसा कहा है (उसका अर्थ यह है कि) वह स्वर्गमें से आकर मनुष्य होता है। (क्योंकि) सम्यग्दर्शन सहित चारित्र होता है और मरकर मनुष्य(गति) में जाये ऐसा कभी होता नहीं। - ऐसा परमागम का सिद्धांत है, सिद्ध हुये तत्त्व हैं। (जो) मनुष्य समकिती हो वह मरकर महाविदेह में जाये (ऐसा) कभी भी होता नहीं। हाँ, मिथ्यात्व में बंध पड़ गया हो और बाद में भी मिथ्यात्व रह गया हो तो, वह महाविदेह में जा सकता है। किन्तु मिथ्यात्व में मनुष्य(गति) का बंध पड़ गया हो और बाद में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया हो तो वह जीव भोगभूमि में जाता है - युगलिया में जाता है। आहाहा! ऐसा भगवान का सिद्धांत है। बापू ! उसमें (यदि) इधर-उधर - बदलाव कर डाले तो (वह) स्वच्छंद है। आहाहा !

यहाँ तो (जो) समकित से भ्रष्ट हुआ (है उसकी बात है)। और फिर बाद में शब्द तो ऐसा है कि... है न ? कि '**संपज्जदि णिव्वाणं**' - '**संपद्यते निर्वाणं**' फिर भले ही मनुष्य होकर मोक्ष जाये, किन्तु पहले तो समकित से भ्रष्ट हो जाता है (वह) मिथ्यादृष्टि (हो जाता है) - (और) असुरेन्द्र में जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो भगवान की वाणी है। आहाहा !

(तो कहते हैं कि) '**यदि वह सराग हो तो, देवेन्द्र-असुरेन्द्र-नरेन्द्र के वैभवक्लेशरूप...**' वे (देवेन्द्र-असुरेन्द्र और नरेन्द्र के वैभव) तो क्लेश हैं (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! (यदि) सराग भाव रह गया और वीतराग नहीं हुआ (हो तो), (अर्थात्) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र

सहित हो - छठ्ठे गुणस्थान की (सराग) चारित्रदशा हो (तो) वे भी स्वर्ग में जाते (हैं) और वहाँ से मनुष्य होते (हैं)। किन्तु वे सब (वहाँ) क्लेश में (हैं)। - वह सब क्लेश है। आहाहा ! वैमानिक का भव भी राग से प्राप्त हुआ है (तो) वह दुःख है। आहाहा !

`वैभवक्लेशरूप बंध की प्राप्ति होती है।' आहाहा ! केवल क्लेश (है)। ज्ञानी को भी यदि राग बाक़ी रह गया और स्वर्ग में जाता है तो क्लेश में जाता है। (क्योंकि वहाँ) केवल क्लेश है। आहाहा ! भले ही वह क्लेश का कर्ता नहीं। दृष्टि (अपेक्षा से) हँ ! (शेष) पर्याय (अपेक्षा) से उसका ज्ञान करना हो तो उस पर्याय में राग है और (वह) परिणमन उसका है। अत: कर्ता भी कहने में आता (है)। आहाहा ! वह तो द्रव्यदृष्टि से (कहा था कि कर्ता नहीं)।

(यहाँ कहते हैं कि) स्वभाव की जब दृष्टि (हुई) ज्ञायकमूर्ति प्रभु (आत्मा है) ऐसा जब अनुभव हुआ - (तब) उसको भी यदि राग बाक़ी रह जाये तो वह वैमानिक के क्लेश में जाता (है)। आहाहा ! और वहाँ से नरेन्द्र भी होता है। अत: कोई ऐसा कहे कि वहाँ से (मनुष्यगतिमें से) सीधा नरेन्द्र होता है (तो) ऐसा नहीं। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन - आत्म अनुभव (जिसको हुआ है) उसको जो राग बाकी रहा और उस सम्यग्दर्शन के काल में आयुष्य का बंध हो तो, वैमानिक का ही बंधता है। **उसके अलावा दूसरा बंधता ही नहीं।** किन्तु कदाचित् मिथ्यात्व में मनुष्य आयुष्य का पहले बंध हो गया हो और बाद में समकित - सम्यग्दर्शन सहित हो तो वह मरकर भोगभूमि में जाता है। किन्तु महाविदेह में नहीं जाता। आहाहा ! इस प्रकार परमागम का सिद्धांत, कुंदकुंदाचार्य के लेख हैं। समझ में आया ?

(यहाँ) नरेन्द्र कहा है तो कोई ऐसा कहे कि सराग चारित्रवाला सीधा नरेन्द्र में जाता (है), (तो ऐसा नहीं)। समझ में आया ? आहाहा ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान है और तीन कषाय के अभावरूप चारित्र भी है। किन्तु अभी वीतराग चारित्र हुआ नहीं और राग का अंश बाक़ी रहा है तो वह स्वर्ग में - वैमानिक में जाता (है) और वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जाता (है)। समझ में आया ? **किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव यहाँ से सीधा महाविदेह में जाये और केवलज्ञान प्राप्त करे ऐसी वीतराग की वाणी नहीं -** परमागम का वह कथन नहीं। आहाहा !

अत: यहाँ (कहते हैं कि) देवेन्द्र - समकित सहित जाते हैं। (और) असुरेन्द्र-समकित से भ्रष्ट होकर जाते हैं। (तथा) नरेन्द्र-वैमानिकमें से नरेन्द्र होते हैं। समझ में आया ? उनके वैभव क्लेशरूप बंध (है)। (अर्थात्) उतना राग बाक़ी रह जाने के कारण स्वर्ग में भी गया तो वह दुःखी है। वहाँ क्लेश का बंधन है। आहाहा !

प्रश्न :- द्रव्यलिंगी हो तो भी नरेन्द्र नहीं होता न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- समकित नहीं हो किन्तु द्रव्यलिंग हो - द्रव्यलिंग का आचरण सही हो - तो, (वह) मरकर स्वर्ग में ही जाता है। (किन्तु) द्रव्यलिंगी को मिथ्यात्व में आयुष्य का बंध हो गया हो और बाद में मिथ्यात्व सदा रहे जब तो कोई मरकर मनुष्य भी होता है। किन्तु जिसको मिथ्यात्व तो है किन्तु शुभभाव बढ़ गये हों - नौवीं ग्रैवेयक जैसे शुभभाव हुवे - तो वह मरकर स्वर्ग में ही जाता है। काम बहुत कठिन, बापू ! आहाहा ! परमागम की यह स्थिति है। (उसमें अपने) घर से स्वच्छंद की कोई भी कल्पना करना वह स्वच्छंद है।

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान से भ्रष्ट, असुरेन्द्र होता है और सम्यग्दर्शन-ज्ञानप्रधान चारित्र (यदि) राग सहित हो तो वह देवेन्द्र होता (है) और वहाँ से मरकर नरेन्द्र होता (है)। किन्तु वे सब वैभव के क्लेशरूप बंध को (प्राप्त) होते (हैं)। आहाहा! `**इसलिये मुमुक्षुओं को...**' आहाहा ! (अर्थात्) परमानंद के लाभरूपी मोक्ष के अभिलाषी जीव को... आहाहा ! ऐसा पहले कहा था न ? परमानंद के लाभ की इच्छावाले भव्य जीवों के लिये यह कहता हूँ। - ऐसा आया था न ? पहले आया था। तीसरा श्लोक है न ? उसमें आया था कि `**परमानंदरूपी सुधारस के पिपासु भव्य जीवों के हितार्थ,...**' यह कहता हूँ। है न ? आहाहा ! यह तो सत्यश्रुत है। (यह) भगवान की वाणीमें से निकला हुआ (सार है), दिव्यध्वनि का - प्र+वचन का सार है। प्रवचनसार है न ? तो (प्र+वचन+सार) अर्थात् दिव्य वचनों का (सार), दिव्यध्वनि का सार। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, अत: मुमुक्षु को (अर्थात्) परमानंदरूपी अमृत के पिपासु जीवों को, आहाहा ! `**इष्ट फलवाला होने से...**' आहाहा ! उस वैभव को क्लेशरूप बंध (कहा)। (जबकि अब कहते हैं कि) `**मुमुक्षुओं को इष्ट फलवाला होने से वीतरागचारित्र ग्रहण करने योग्य (उपादेय) है।**' आहाहा ! जिसमें राग का अंश नहीं (किन्तु) आत्मा की मग्नता (है) (अर्थात्) सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित ज्ञायकभाव में जिसकी मग्नता जम गई है, आहाहा ! ऐसे वीतराग चारित्र को मुमुक्षु नाम परमानंदरूपी सुधारस के पिपासु को (ग्रहण करने योग्य है)। यह वीतराग चारित्र ग्रहण करने योग्य है। आहाहा ! `**और अनिष्ट फलवाला होने से...**' देखा ? आहाहा ! सम्यग्दर्शन हो, ज्ञान हो और चारित्र का एक अंश भी हो। किन्तु (अभी) यदि राग बाक़ी है तो (वह) अनिष्ट फलवाला है। (और उस कारण) `**सरागचारित्र त्याग ने योग्य (हेय) है।**' आहाहा !

मुनि को जो पंच महाव्रत का राग आता है वह कहते हैं कि सराग है। अत: त्याग करने योग्य है। आहाहा ! ऐसी बातें (हैं)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित चारित्र है, किन्तु अंदर

राग शेष है, तो वह (सरागचारित्र) ऐसा होने से (अनिष्ट फलवाला होने से) त्याग करने योग्य है। यह केवल मिथ्यादृष्टि की बात नहीं। (किन्तु) जिसको महाप्रभु ज्ञायकभाव दृष्टि में - अनुभव में - वेदन में आया है (उसकी बात है)। **वेदन में तो पर्याय आती है। किन्तु उस ज्ञायकभाव की दृष्टि हुई अत: उसका वेदन है ऐसा कहने में आता है।** आहाहा !

मुमुक्षु को वीतराग चारित्र ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि वह इष्ट फल-मोक्ष का कारण है। किन्तु यदि उसे सरागभाव रह जायेगा तो वह सराग चारित्र अनिष्ट फलवाला (है)। केवल क्रियाकांड के राग की यहाँ बात नहीं। (किन्तु) यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित (जिसको) चारित्र का अंश भी है (उसकी बात है)। किन्तु साथ में यदि राग का अंश रह गया तब वह सराग चारित्र अनिष्ट फलवाला होने से त्याग करने योग्य है, हेय है। आहाहा !

पंच महाव्रत, पांच समिति (और) गुप्ति (आदि का) व्यवहार हो, वह सब राग है। आहाहा ! वह राग ज्ञानी को ज्ञेय है। तथापि जो शेष रहा है उसका फल तो अनिष्ट है, अत: वह हेय है। आहाहा ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-अनुभव सहित जो चारित्र की मग्नता का अंश है और साथ में राग (भी) यदि रह गया तो, अनिष्ट फलवाला होने से वह सराग चारित्र त्याग करने योग्य है। आहाहा ! (वीतराग चारित्र को) ग्रहण करने योग्य कहा न ? तो उसे उपादेय कहा। और (सराग चारित्र को) त्याग करने योग्य कहा (था) तो उसे हेय कहा। - (यह तो) उसका स्पष्टीकरण किया।

वीतराग चारित्र, आहाहा ! धन्य ! वह मुनिदशा में होता (है)। (और) बाहर में नग्न होती है। वस्त्रसहित मुनिपना होता नहीं। आहाहा ! और (जो) वस्त्रसहित है वह (अपने को) मुनिपना मनाता है (तो) वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! भगवान कुंदकुंदाचार्य के वचन है कि **`णग्गोविमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे'** - (सूत्रपाहूड गाथा-२३) मुनि नग्न हो और उनको यदि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो तो वह मोक्षमार्ग है किन्तु नग्न बिना के (साधु) मोक्षमार्ग में नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! क्या कहा ? सूक्ष्म बात है ! बापू ! इस संसार के व्यापार के जो काम हैं वह तो केवल पाप (है)। ये व्यापार भले ही क्रोड़ों और अरबों रुपये का (हो) और अरबों रुपये (प्राप्त) होते हो। (किन्तु) व्यापार में जो सारा दिन यह किया और यह किया (होता है) वह तो केवल पाप है। आहाहा! उस पाप का फल तो केवल दुर्गति है। दुनिया कहती है कि ये अरबपति हैं, किन्तु वे सब दु:खी हैं। वे बेचारें भिखमंगे दु:खी हैं। (क्योंकि) मांगता है कि पैसा लाओ, वह लाओ, यह लाओ, यह लाओ। अंदर चैतन्य भगवान की आनंदस्वरूप लक्ष्मी पड़ी है उसकी तो जिसको

ख़बर नहीं, उस लक्ष्मी की कीमत नहीं और जगत की लक्ष्मी की कीमत करता है वह तो मिथ्यादृष्टि है और पापी है और उसका फल दुर्गति है। आहाहा ! पुण्य का फल क्या ? वह बाहर की धूल (है)। आहाहा ! भाई ! बातें-मार्ग न्यारा, बापू ! भाई ! बहुत कठिन लगे (ऐसा है)। आहाहा ! पैसेवाले मर जाते हैं तब पैसा और डाक्टर कुछ कर सकते नहीं। आहाहा ! किन्तु वह क्या कर सकता है, बापू !

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि जिसको सम्यग्दर्शन हो, आत्मा का अनुभव हो और उसका वास्तविक ज्ञान (भी) हो उसे, संसार के काम की रुचि-प्रेम छूट गया हो (और) जिसको आत्मदर्शन और आत्मज्ञान हो उस जीव को चारित्र का अंश भी हो किन्तु यदि अभी जो राग शेष रह गया है तो उसका फल क्लेश है।

प्रश्न :- यहाँ तो वैभव लिखा है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह दुनिया तो इस धूल को वैभव कहती है। किन्तु (यहाँ तो) वैभव को क्लेश कहा है। आहाहा ! क्लेश है, क्लेश। बाहर में लोगों को ऐसा लगता है न कि महाराज पधारते हैं वहाँ पैसा होता है, ऐसा बिलकुल नहीं है। सब बातें हैं। वह तो पुण्य हो तो होता है। पधारने से क्या होता है ? यहाँ तो उससे अधिक (उत्कृष्ट) बात कहते हैं कि सम्यग्दर्शन और चारित्र हो तथापि थोड़ा राग बाक़ी रह गया और पूर्ण वीतराग चारित्र नहीं हो (तो) उसको भी वैभवरूप क्लेश की प्राप्ति होगी। आहाहा ! ऐसा है, बापू ! मार्ग न्यारा (है) भाई ! सम्यग्दर्शन - आत्मद्रव्य की दृष्टि - अतिरिक्त उसको चारित्र का अंश होगा और वह (भी) वीतराग चारित्र यदि होगा - वीतरागता होगी - जब तो मोक्ष को प्राप्त होगा। आहाहा !

देखिये ! (इस प्रकार) पंचमकाल के संत कहते हैं। (कि) जिसका स्वर्ग जाना निश्चित है। आहाहा ! (तथापि) मैंने तो वीतराग चारित्र अंगीकार किया है, ऐसा कहते हैं। तथापि जो राग बाकी रहा उसके फल में कुंदकुंदाचार्य भी स्वर्ग-वैमानिक में गये। (तो कहते हैं कि) उस राग का फल आयेगा वह वैभव का क्लेश है ऐसे उसको क्लेश मानकर यहाँ से हम जाते हैं। ऐसा कहते हैं। आहाहा ! वहाँ स्वर्ग में सुख है ऐसा माननेवाले तो मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा ! (वह तो) वैभव का क्लेश (है)। अत: मुमुक्षु को - परमानंदरूपी आत्मलाभरूपी मुक्ति के अभिलाषी जीव को -इष्ट फलवाला होने से वीतरागचारित्र ग्रहण करने योग्य है। आहाहा ! और अनिष्ट फलवाला होने से सरागचारित्र हेय है।

राग का शेष - अंश रहा (है) किन्तु अब उसमें क्लेश मिलेगा। वह (राग का अंश) पुण्य है और उस पुण्य के फल में उसको क्लेश मिलेगा। क्योंकि वर्तमान पुण्य है वह दुःखरूप है और उसका फल भी दुःखरूप है। आहाहा ! ऐसी बात है, बापू !

प्रश्न :- वहाँ तो अनासक्ति रहेगी न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- दृष्टि की अपेक्षा से अनासक्ति (है)। किन्तु परिणामों में क्लेश होगा न ? आहाहा ! वह तो सुबह में कहा था न ? कि पुण्य के परिणाम का ज्ञानी कर्ता नहीं। वैसे उसका भोक्ता (भी) नहीं। वह आगे आयेगा। तथापि, पर्याय में है। यहाँ तो द्रव्यदृष्टि के स्वभाव की - दृष्टिवंत की - बात करनी है (अत:) उस जीव की द्रव्य पर दृष्टि है तब तक वह राग का कर्ता नहीं। राग आता है तथापि (कर्ता नहीं)। किन्तु जब उसको ज्ञान कराना हो तब ज्ञानी को भी राग है (वह) उसका परिणमन है, उतना वह कर्ता है। (किन्तु) वह करने योग्य है, ऐसा नहीं, आहाहा ! किन्तु जितना राग है उतना परिणमन है अत: कर्ता हुआ और राग है अत: उसका (राग का) भोक्ता भी है।

आहाहा ! एक तरफ़ - द्रव्य स्वभाव की दृष्टि में नकार करते हैं। (क्योंकि) उसकी दृष्टि में राग होता नहीं। इसलिये वह बात की। (किन्तु) बाद में (दूसरी तरफ़) उसी ज्ञानी को पर्याय में जो थोड़ा राग होता है... यहाँ सराग (चारित्र) कहा न? उसका वह कर्ता भी है, कर्ता अर्थात् परिणमित होता है इसलिये कर्ता है। (किन्तु) करने योग्य है ऐसा नहीं। और उसका भोक्ता भी (है)। प्रवचनसार - ४७ नय में आया न ? - वह ज्ञानप्रधान कथन है वहाँ पर्याय का भी ज्ञान कराते हैं। किन्तु यह (समयसार में) तो द्रव्यदृष्टिप्रधान कथन है। समयसार का दृष्टिप्रधान कथन है। आहाहा ! और तथापि उसमें अज्ञानी के मिथ्यात्वादि परिणाम जीव के हैं और जड़ के परिणाम हैं वे भिन्न हैं ऐसा (८७ गाथा में) बतलाते हैं। आहाहा ! श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि -

`ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहाँ समझवुं तेह।

त्यां त्यां ते ते आचरे, आत्मार्थी जन ऐह।।' (आत्मसिद्धि गाथा - ८)

आहाहा ! बापू ! यह भगवान का मार्ग है, जिस अपेक्षा से हो (उस बात को) उस अपेक्षा से समझना चाहिये, भाई !

अथ चारित्रस्वरूपं विभावयति -

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।

मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो।।७।।

चारित्रं खलु धर्मो धर्मो यस्तत्सामिति निर्दिष्टम्।

मोहक्षोभविहीनः परिणाम आत्मनो हि साम्यम्।।७।।

स्वरूपे चरणं चारित्रं, स्वसमयप्रवृत्तिरित्यर्थः। तदेव वस्तुस्वभावत्वाद्धर्मः। शुद्धचैतन्यप्रकाशनमित्यर्थः। तदेव च यथावस्थितात्मगुणत्वात्साम्यम्। साम्यं तु दर्शनचारित्रमोहनीयोदयापादितसमस्तमोहक्षोभाभावादत्यन्तनिर्विकारो जीवस्य परिणामः।।७।।

अथ निश्चयचारित्रस्य पर्यायनामानि कथयामीत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं निरूपयति, एवमग्रेऽपि विवक्षितसूत्रार्थं मनसि धृत्वाथवास्य सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचित्तं भवत्येवं निश्चित्य सूत्रमिदं प्रतिपादयतीति पातनिकालक्षणं यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम् - **चारित्तं** चारित्रं कर्तृ **खलु धम्मो** खलु स्फुटं धर्मो भवति। **धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो** धर्मो यः स तु शम इति निर्दिष्टः। **समो** यस्तु शमः सः **मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु** मोहक्षोभविहीनः परिणामः। कस्य। आत्मनः। **हु** स्फुटमिति। तथाहि - शुद्धचित्स्वरूपे चरणं चारित्रं, तदेव चारित्रं मिथ्यात्वरागादिसंसरणरूपे भावसंसारे पतन्तं प्राणिनमुद्धृत्य निर्विकारशुद्धचैतन्ये धरतीति धर्मः। स एव धर्मः स्वात्मभावनोत्थसुखामृतशीतजलेन कामक्रोधादिरूपाग्निजनितस्य संसारदुःखदाहस्योपशमकत्वात् शम इति। ततश्च शुद्धात्मश्रद्धानरूपसम्यक्त्वस्य विनाशको दर्शनमोहाभिधानो मोह इत्युच्यते। निर्विकारनिश्चलचित्तवृत्तिरूपचारित्रस्य विनाशकश्चारित्रमोहाभिधानः क्षोभ इत्युच्यते। तयोर्विध्वंसकत्वात्स एव शमो मोहक्षोभविहीनः शुद्धात्मपरिणामो भण्यत इत्यभिप्रायः।।७।।

`**अब चारित्र का स्वरूप व्यक्त करते हैं।**' चारित्र किस को कहना ? आहाहा! (अब) सातवीं गाथा (है)। है ? मूल में (संस्कृत में) देखिये ! `**अथ चारित्रस्वरूपं विभावयति**' - बतलाते हैं, व्यक्त प्रगट करते हैं। आहाहा ! केवल अमृत बरसाये हैं !

टीका :- `**स्वरूप में चरण करना (रमना) सो चारित्र है।**' चारित्र (यह) कोई पंचमहाव्रत के विकल्प (या) वह कोई (क्रिया) चारित्र नहीं। आहाहा ! भगवान तेरा स्वरूप... सच्चिदानंद प्रभु ! अतीन्द्रिय आनंद का दल, अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर, अतीन्द्रिय शांति - वीतरागता का सागर प्रभु (आत्मा है)। आहाहा ! उसके दर्शन-ज्ञान सहित स्वरूप में रमणता करना (वह चारित्र है)। आहाहा !

`निज पद रमे सो राम कहीए, रागमां रमे सो हराम कहीए...'

आहाहा ! कहते हैं (कि) स्वरूप में चरण करना... जैसे पशु है वह घास चरता है न, हरा घास चरता है। वैसे आत्मा क्या चरता है ? वह कहते हैं। अंदर (आनंद)

अब चारित्रका स्वरूप व्यक्त करते हैं :-

गाथा-७

चारित्र छे ते धर्म, जे धर्म छे ते साम्य छे।
ने साम्य जीवनो मोह क्षोभ विहीन निज परिणाम छे।।७।।

अन्वयार्थ :- [चारित्रं] चारित्र **[खलु]** वास्तवमें **[धर्मः]** धर्म है। **[य धर्मः]** जो धर्म है **[तत् साम्यम्]** वह साम्य है **[इति निर्दिष्टम्]** ऐसा (शास्त्रोंमें) कहा है। **[साम्यं हि]** साम्य **[मोहक्षोभविहीनः]** मोहक्षोभरहित ऐसा **[आत्मनः परिणामः]** आत्माका परिणाम (भाव) है।

टीका :- स्वरूपमें चरण करना (रमना) सो चारित्र है। स्वसमयमें प्रवृत्ति करना (अपने स्वभावमें प्रवृत्ति करना) ऐसा इसका अर्थ है। यही वस्तुका स्वभाव होनेसे धर्म है। शुद्ध चैतन्यका प्रकाश करना यह इसका अर्थ है। वही यथावस्थित आत्मगुण होनेसे (विषमतारहित सुस्थित आत्माका गुण होनेसे) साम्य है। और साम्य, दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीयके उदयसे उत्पन्न होनेवाले समस्त मोह और क्षोभके अभावके कारण अत्यन्त निर्विकार ऐसा जीवका परिणाम है।

भावार्थ :- शुद्ध आत्माके श्रद्धारूप सम्यक्त्वसे विरुद्ध भाव (मिथ्यात्व) वह मोह है और निर्विकार निश्चल चैतन्यपरिणतिरूप चारित्रसे विरुद्ध भाव (अस्थिरता) वह क्षोभ है। मोह और क्षोभ रहित परिणाम, साम्य, धर्म और चारित्र यह सब पर्यायवाची हैं।।७।।

चरता है। आहाहा ! आत्मा का (स्वभाव) आनंदस्वरूप हो उसको वह चरता है। आहाहा! जगत से न्यारी बातें हैं, बापू ! आहाहा ! स्वरूप में चरना अर्थात् रमणता करना। चारित्र है न ? चारित्र अर्थात् चरना। (तो) क्या चरना ? (कि) अंदर अतीन्द्रिय आनंद का भोग करना, उपभोग करना, अनुभव करना। आहाहा! पशु जैसे हरा घास चरता है वैसे चारित्रवंत स्वयं के आनंदस्वरूप में रमणता करते हैं, चरण करते हैं, उसका अनुभव करते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? भाई ! यह तो बात (जगत से) न्यारी है ! बापू ! जगत से पूरी निराली है, भाई ! आहाहा! तीनलोक के नाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि का यह सार है। (यह) प्रवचनसार है न ?

भाई ! तीनलोक के नाथ परमात्मा महाविदेह में बिराजमान हैं। वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य गये थे (और) आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह बनाया है (कि) भगवान का संदेश

यह है। आहाहा ! त्रिलोकनाथ जिनेश्वर परमेश्वर तीर्थंकर ऐसा कहते हैं कि स्वरूप में रमणता करना वह चारित्र है। (किन्तु) पंचमहाव्रत के परिणाम कोई चारित्र नहीं। आहाहा ! वह तो चारित्र में दोष है।

स्वरूप में रमणता करना-चरण करना वह चारित्र है। आहाहा ! टीकाकार भी गज़ब करते हैं ! अब देखिये ! फिर और कहते हैं कि, चारित्र अर्थात् (क्या)? स्वरूप में रमणता करना वह चारित्र। और स्वरूप कैसा (है) ? कि `**स्वसमय में प्रवृत्ति**' आहाहा ! भगवान(आत्मा) अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप प्रभु (हैं)। ऐसे स्वसमय नाम अपने आत्मा में प्रवृत्ति `(**अपने स्वभाव में प्रवृत्ति करना**) **ऐसा इसका अर्थ है।**'

आहाहा ! क्या कहते हैं ? स्वरूप (अर्थात्) आनंदमूर्ति प्रभु भगवान(आत्मा) ! अंदर अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप है उसमें रमणता करना ऐसा चारित्र (का स्वरुप है)। अर्थात् ? कि `**स्वसमय में प्रवृत्ति**' स्वसमय ऐसा जो भगवानआत्मा ! पूर्णानंद का नाथ ! उसकी प्रवृत्ति का नाम चारित्र (है)। आहाहा ! ऐसी बातें हैं, बापू ! आहाहा ! ऐसी बात आयी है। बहुत उत्तम बात आयी है। बापू ! मार्ग ऐसा (है)। क्या कहें... आहाहा!

आहाहा ! तीन प्रकार के अर्थ करेंगें। (उसमें) एक तो (वह कि) स्वरूप जो है उसमें रमणता करना - चरण करना वह चारित्र (है)। अब (कहते हैं कि) स्वरूप अर्थात् क्या ? कि स्वसमय जो भगवानआत्मा। (और) उसमें प्रवृत्ति (अर्थात्) स्वसमय वह स्वरूप (है और) उसमें प्रवृत्ति वह, चारित्र (है)। आहाहा ! `**जीवो चरित्तदंसणणाणठियो तं हि ससमयं जाण**' **-** आहाहा ! समयसार की दूसरी गाथा। वह यहाँ कहते हैं।

क्या कहा भाई ? शांति से सुन ! यह कोई कहानी नहीं। यह तो भगवान के - त्रिलोकीनाथ के - मुख से निकली हुई दिव्यध्वनि है। भाई ! वह पामर को संमत हो ऐसी बातें नहीं। आहाहा ! (कहते हैं कि) चारित्र अर्थात् क्या ? कि स्वरूप जो है उसमें चरना - ठरना - रमना वह चारित्र (है)। अब स्वरूप अर्थात् क्या ? कि स्वसमय जो आत्मा है (और) उसकी प्रवृत्ति (वह चारित्र है) ऐसा उसका अर्थ है।

क्या कहा वह ? (कि) स्वरूप में चरना (अर्थात्) आनंदस्वरूप भगवान(आत्मा में) आनंद का भोजन करना। (यानी कि) आनंद - अतीन्द्रिय आनंद में रमना उसका नाम चारित्र (है)। अर्थात् (क्या) ? कि स्वसमय (ऐसा) जो पूर्णानंद का नाथ प्रभु भगवान! स्वसमय (ऐसा जो) अपना आत्मा (है) - उसमें प्रवृत्ति करना वह चारित्र का अर्थ है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो वीतराग की वाणी (है)। बापू ! वह कोई साधारण-सामान्य का काम नहीं। आहाहा ! समयसार है वह दृष्टिप्रधान कथन है और यहाँ (प्रवचनसार में) सब ज्ञानप्रधान कथन है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं (कि) स्वरूप में... स्व+रूप में (तो) स्वरूप अर्थात् ? कि आनंदस्वरूप भगवान(आत्मा) ! उसमें चरना-रमना वह चारित्र (है)। आहाहा ! यहाँ तो लोगों अभी बाह्यक्रिया का - पंचमहाव्रत का - ठिकाना नहीं और मानते हैं चारित्र ! आहाहा! वस्त्रसहित को तो द्रव्यचारित्र भी नहीं। उसका तो द्रव्यलिंग भी यथार्थ नहीं। किन्तु वस्त्ररहित नग्न होता है वह भी यदि अंदर स्वरूप में रमता है तो (उसको) चारित्र कहने में आता (है)। वरना तो नग्नता वह कोई वस्तु नहीं। (वह) होता है सही, मुनि होता है उसको नग्नता ही होती है। वस्त्रसहित हो वह मुनि है ही नहीं। आहाहा! (वह तो) कुलिंग ही है। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) स्वसमय में प्रवृत्ति... चरना है न ? इसलिये प्रवृत्ति कही। राग से निवृत्ति किन्तु स्वसमय भगवान पूर्णानंद(स्वरूप), अतीन्द्रिय आनंद का दल! अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर ऐसा जो स्वसमय (है) उसमें प्रवृत्ति (है)। वह चारित्र है (राग से) निवृत्तिस्वरूप (है)। किन्तु स्वरूप में प्रवृत्ति(रूप) है। राग से निवृत्ति है और स्वरूप में प्रवृत्ति है। ऐसा है, बापू ! सुनना भी कठिन पड़े। क्या हो सकता है ? भाई!

दो (बातें हुई)। क्या कहा ? कि स्वरूप में चरना वह चारित्र (है)। और स्वसमय में प्रवृत्ति ऐसा उसका अर्थ है। आहाहा ! (अब कहते हैं कि) '**यही वस्तु का स्वरूप होने से धर्म है।**' देखा ? अब धर्म सिद्ध करना है न ? आहाहा ! (पहले कहा था कि) स्वरूप में रमणता करना वह चारित्र, परंतु पंच महाव्रत की क्रिया या राग यह कहीं चारित्र नहीं, नग्नपना यह भी कोई चारित्र नहीं। आहाहा ! पूर्णानंद का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनंद का सागर ऐसा जो स्वरूप है उसमें रमना वह चारित्र है अर्थात् स्वसमय की प्रवृत्ति, ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा ! (दो अर्थ हुये)।

अब तीसरा। '**यही वस्तु का स्वभाव होने से...**' आहाहा ! यहाँ पर्याय की बात है हाँ ! आहाहा ! स्वसमय में रमण करना वह धर्म है (और) वह वस्तु का धर्म है, ऐसा कहते हैं। (वस्तु का) त्रिकाल स्वभाव है यह बात तो है ही परंतु (यहाँ तो) त्रिकाल स्वभाव में वर्तमान की रमणता यह स्वसमय की प्रवृत्ति (है) (और वह) वस्तु का स्वभाव है इसलिये धर्म है (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! तीन अर्थ किये।

यह वस्तु का स्वभाव अर्थात् त्रिकाली स्वभाव की बात अभी नहीं, त्रिकाली की तो दृष्टि है, ज्ञान है और स्वरूप की लीनता है। वह रमणता अर्थात् क्या ? स्वरूप की रमणता वह चारित्र अर्थात् क्या ? स्वसमय स्वरूप भगवानआत्मा में प्रवृत्ति ऐसा उसका अर्थ है। वह वस्तु का स्वभाव होने से वीतरागता की जो पर्याय प्रगट हुयी वह वस्तु का स्वभाव है, क्योंकि वस्तु का स्वभाव त्रिकाली वीतरागी है उसका त्रिकाल स्वभाव जिनस्वरूप है। उसके आश्रय से जो पर्याय प्रगट हुयी वह धर्म अर्थात् वीतराग पर्याय है, वह धर्म

है। आहाहा !

वस्तु का स्वभाव, भगवान आत्मा का स्वभाव जिनस्वरूप है, वह (त्रिकाली स्वभाव की) यहाँ बात नहीं, परंतु जिनस्वरूप के आश्रय से जो दशा हुयी अर्थात् रमणता और स्वसमय की प्रवृत्ति हुयी वह वस्तु का स्वभाव है (ऐसा कहते हैं)। राग है वह कहीं वस्तु का स्वभाव नहीं, समझ में आया ? ऐसी बात है। (कहते हैं कि) '**यही वस्तु का स्वभाव**' भाषा है ? कि यही वस्तु का स्वभाव होने से (अर्थात्) वस्तु जो वीतरागमूर्ति है उसमें रमते हैं, वही वस्तु का स्वभाव है, आहाहा ! पंच महाव्रत का जो राग है वह कुछ वस्तु का स्वभाव नहीं, वह चारित्र नहीं, वह स्वसमय की प्रवृत्ति नहीं, इसलिये वह वस्तु का स्वभाव नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? अरे, जगत के जीव कहाँ रुके हुये हैं ! अरेरे, उनको स्वयं की दया नहीं है। यहाँ तो जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप है उसकी पूर्णता की जिसको प्रतीति हो, उसे स्वदया कहने में आता है। उसके ज्ञान को स्व का ज्ञान कहते हैं और उस स्वरूप की रमणता को चारित्र कहते हैं, आहाहा ! उसने आत्मा की उत्कृष्ट दया पाली, आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) '**यही वस्तु का स्वभाव होने से...**' यह वस्तु का स्वभाव अर्थात् पर्याय में वीतरागता - चारित्ररूप रमणता जो हुयी कि जो स्वसमय प्रवृत्ति है वह वस्तु का स्वभाव है। (जब जो) राग आता है वह वस्तु का स्वभाव नहीं, ऐसा बताते हैं। आहाहा ! भगवान आत्मा पूर्णानंद के नाथ की प्रतीति और ज्ञानसहित स्वरूप की रमणता वह चारित्र। अर्थात् कि स्वसमय (ऐसे) भगवानआत्मा में प्रवृत्ति वह चारित्र है (इसलिये) (वह) वस्तु का स्वभाव है इसलिये उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! भाषा तो सरल (है)। प्रभु मार्ग तो जो है सो है, भाई ! आहाहा !

'**शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना यह उसका अर्थ है।**' बाद में यह दूसरा अर्थ कहा। (पहला अर्थ यह कहा) स्वरूप में रमना वह चारित्र है अर्थात् स्वसमय में प्रवृत्ति उसका अर्थ है, अब दूसरा (अर्थ) वही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। अर्थात्? अब इसका अर्थ (क्या) ? ऐसा कहते हैं कि '**शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना यह इसका अर्थ है।**' (अर्थात्) शुद्ध चैतन्य भगवानआत्मा पर्याय में प्रकाशित हुआ - वीतरागभाव से प्रकाशित हुआ - आहाहा ! चारित्र किसको कहना वह बात भी कहाँ सुनी है? आहाहा !

यहाँ तो परमात्मा और संत कहते हैं वे तो आढ़तिया होकर परमात्मा की वाणी कहते हैं। प्रभु ! चारित्र उसको कहते हैं, आहाहा ! जो स्वरूप (है) उसकी जिसको ख़बर नहीं (उसको) उसमें रमना कहाँ से हो ? जो स्वरूप पूर्णानंद का नाथ है उसका दर्शन हुआ नहीं, उसका ज्ञान हुआ नहीं तो उसका स्वरूप में रमना (कहाँ से हो) ? (अर्थात्)

स्वरूप (जैसा) है वैसा खयाल में आया नहीं तो रमना उसको कैसे हो ? आहाहा ! स्वरूप में रमना वह चारित्र (है) और स्वसमय की प्रवृत्ति उसका अर्थ है। आहाहा ! क्या टीका ! वह भी गज़ब है न ? उसका अर्थ यह (है) कि स्वसमय में प्रवृत्ति (किन्तु) राग में प्रवृत्ति नहीं। आहाहा ! यह स्वसमय में रमना ऐसे चारित्र का यह अर्थ है।

(अब कहते हैं कि) **`वही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है।'** आहाहा ! भगवानआत्मा के आनंदस्वरूप में रमता है वह वस्तु का स्वभाव होने से धर्म (है)। - यह पर्याय धर्म (है) हाँ ! अब (कहते हैं कि) धर्म का अर्थ क्या ? कि **`शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना।'** राग का प्रकाश करना नहीं (किन्तु) शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना। (यानी कि) पर्याय में झलाझल ज्योति प्रगट हो (ऐसा उसका अर्थ है)। आहाहा !

परमात्मस्वरूप जिनस्वरूप चैतन्य (आत्मा) जो शुद्ध चैतन्य प्रकाश से (भरा है) उसका प्रकाश करना आहाहा ! (अर्थात्) उस शुद्ध चैतन्य का प्रकाश बाहर पर्याय में आना उसका नाम स्वसमय में प्रवृत्ति ऐसा चारित्र, वह वस्तु का स्वभाव (है)। उसका नाम धर्म (है)। आहाहा ! यहाँ (लोगों को) तो चारित्र मतलब याने कुछ नहीं ! (सामान्य मनुष्य हो और) बाद में दीक्षा ले तो हो गया चारित्र !! अरे बापू ! आहा भाई! चारित्र का मुँह बड़ा है। भाई ! स्वरूप में रमना (वह चारित्र है)। (तो) जिसको (अभी) स्वरूप ही कैसा है वह दृष्टि में आया नहीं। - सम्यग्दर्शन नहीं है (उसको उसमें रमना कहाँ से हो) ? आहाहा ! जिसको स्वरूप आनंद का कंद - अनंतगुण का पिंड प्रभु ! (आत्मा) चैतन्य चमत्कारी पदार्थ है ! आहाहा ! वही जिसकी दृष्टि में - दर्शन में - प्रतीति में (आया नहीं)। (और) ज्ञान में जानने में आया नहीं (उसको) उसमें रमना कहाँ से हो ? भाई ! आहाहा ! और (उस स्वरूप में) रमना यानी कि स्वसमय में प्रवृत्ति ऐसा उसका अर्थ है। यानी कि वह वस्तु का स्वभाव है। जो वीतरागस्वभाव (त्रिकाल) था वह पर्याय में भी वीतरागतारूप से आया। वह वस्तु का स्वभाव है। अर्थात् ? उसका अर्थ ? कि शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना - शुद्ध चैतन्य का पर्याय में प्रकाश होना। आहाहा ! वीतरागभाव (स्व)रूपी स्वभाव है। उसका वीतरागभाव का - पर्याय में प्रकाश होना (वह उसका अर्थ है)। आहाहा ! गज़ब टीका है न!

शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना (यानी कि) जो दृष्टि में आया था, जिसका ज्ञान हुआ था, वह शुद्ध चैतन्य भगवानआत्मा की शुद्धता का पर्याय में प्रकाश करना। (अर्थात्) (आत्मा) वीतरागभाव स्वरूप है। उस वीतरागभाव का पर्याय में परिणमन होना ऐसा उसका अर्थ है। आहाहा ! **`वस्तु सहावो धम्मो'** अर्थात् यह उसका अर्थ है। आहाहा!

(आत्मा) वीतरागभाव (स्वरूप) चैतन्य प्रकाश (है)। पर्याय में (उस) वीतरागभाव का आना

वह शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना (है)। उसे चारित्र कहो, वस्तु स्वभाव कहो, वीतरागता कहो, स्वसमय की प्रवृत्ति कहो (या) धर्म कहो (सब पर्यायवाची हैं)। आहाहा! यहाँ तो शुद्ध चैतन्य का स्थिररूप प्रकाश करना (वह चारित्र है)। (अर्थात्) जैसा शुद्ध चैतन्य वीतरागस्वरूप है वैसा ही पर्याय में वीतरागस्वरूप से प्रकाश करना, उसका नाम शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना (है)। स्वरुप में रमना यानी कि स्वसमय की प्रवृत्ति। (और स्वसमय की प्रवृत्ति अर्थात् यह कि) जो शुद्ध चैतन्यस्वरूेप है उसका पर्याय में (शुद्ध चैतन्यरूप प्रकाश करना)। जो वीतरागस्वरूप है उसका पर्याय में वीतरागरूप होना। आहाहा ! ऐसा उसका अर्थ है। प्रभु !

(अब कहते हैं कि) **`वही यथावस्थित आत्मगुण होने से...**' आहाहा ! अब फिर से उसकी व्याख्या करते हैं। **`वही यथावस्थित आत्मगुण होने से...**' यह पर्याय है, हँ ! वह यथावस्थित (अर्थात्) वीतरागस्वभाव पर्याय में आया (वह)। आत्मगुण होने से **`साम्य है।**' अर्थात् **`(विषमतारहित सुस्थित आत्मा का गुण होने से) साम्य है।**'

(स्वरूप की) रमणता वह स्वसमय की प्रवृत्ति, वह वस्तु का स्वभाव, वह शुद्ध चैतन्य का प्रकाशन, उसको यहाँ साम्य कहते हैं। क्योंकि वह यथास्थित आत्मगुण (है)। वह है तो पर्याय। वह आत्मगुण है तो पर्याय। किन्तु पर्याय को यहाँ `गुण' कहा है। **`वही यथावस्थित आत्मगुण होने से (विषमतारहित सुस्थित आत्मा का गुण होने से) साम्य है।**' गुण अर्थात् (यहाँ पर) पर्याय, त्रिकाली गुण है वह अलग वस्तु है। आहाहा ! राग है वह अवगुण है। और वीतरागपर्याय है वह गुण है ऐसा वहाँ कहा है। आहाहा ! ऐसा (बाहर में) कहाँ मिलता है ? सभी जगह भटकने का (मिलता) है। आहाहा !

`वही**' है न ? आहाहा ! पहले कहा था कि **`वही वस्तु का स्वभाव होने से...' (और अब कहा कि) **`वही यथावस्थित आत्मगुण होने से...**' आहाहा ! अर्थात् विषमतारहित यानी कि राग की (जो) विषमता है उसके बिना का - सुस्थित - आत्मा में गुण होने से (अर्थात् ऐसा आत्मा का पर्यायरूपी) गुण होने से उसे साम्य कहते हैं। उस चारित्र को, समता को और साम्य को वीतरागभाव कहते हैं। आहाहा !

`और साम्य, दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीय के उदय से उत्पन्न होनेवाले...**' अब जीव के परिणाम(रूप) समता की फिर से व्याख्या करते हैं। आहाहा ! जीव के साम्य (परिणाम) दर्शनमोह से उत्पन्न होनेवाले मिथ्यात्व और चारित्रमोह से उत्पन्न होनेवाले (राग के अभाव के कारण) **`समस्त मोह और क्षोभ के अभाव के कारण' (अर्थात्) मिथ्यात्व और अस्थिरता के अभाव के कारण, दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के उदय से उत्पन्न होनेवाले समस्त मोह और क्षोभ के - मोह अर्थात् मिथ्यात्व और क्षोभ अर्थात् चारित्र की

अस्थिरता, उसके अभाव के कारण (साम्य) `**अत्यंत निर्विकार ऐसा जीव का परिणाम है।**' आहाहा ! देखो! (आगे) परिणाम को गुण कहा था। आहाहा ! पर्याय में अत्यंत निर्विकारपना ऐसा जीव का परिणाम है। उसे चारित्र कहो, स्वसमय की प्रवृत्ति कहो, वस्तु के स्वभाव का धर्म कहो और शुद्ध चैतन्य का प्रकाश कहो, वह जीव का परिणाम है। रागादि जीव के परिणाम नहीं। विशेष कहेंगे।

a a a

स्वभाव-ओर झुके हूए ज्ञान ने ही स्वभावको उपादेय माना है तथा रागकी रुचि छूटना ही रागकी हेयता है । स्वभाव, उपादेय व राग हेय...ऐसा विकल्प करना कोई कार्यकारी नहीं है। अज्ञानी तो विकल्पका नाश करनेका उद्यम ही नहीं करता। अज्ञानी, विकार-विमुखता व स्वभाव-सन्मुखता ही नहीं करता। रागादि-परिणाम हेय हैं... अज्ञानीके ऐसा श्रद्धान संभवित ही नहीं है। आत्मा उपादेय है, संवर-निर्जरा कथंचित्-उपादेय हैं तथा पुण्य-पाप, आस्त्रव-बंध हेय हैं... ऐसी प्रतीति-बिना सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। यही जीव-अजीवादि सातों तत्त्वोंके श्रद्धानका प्रयोजन है । (परमागमसार - **९९०**)

दि. १०-१-१९७९ - प्रवचन नं. - ४

(प्रवचनसार सातवीं गाथा चलती है। उसका भावार्थ)।

भावार्थ :- `**शुद्ध आत्मा के श्रद्धारूप सम्यक्त्व से विरुद्ध भाव (मिथ्यात्व) वह मोह है...**' आहाहा ! स्वरूप सन्मुख होकर उसकी जो श्रद्धा हुई वह सम्यग्दर्शन (है)। उससे विरुद्ध मिथ्यात्व (है)। अर्थात् मोह (है)। मोह-क्षोभरहित परिणाम कहना है न? `**और निर्विकार, निश्चल चैतन्यपरिणतिरूप चारित्र से...**' आहाहा ! श्री जयसेनाचार्य की शैली ऐसी है न ! (कहते हैं कि) निर्विकारी निश्चल चैतन्यपरिणति - चैतन्य की ज्ञान, आनंद की परिणति, पर्याय - वह चारित्र (है)। इसका नाम चारित्र (है)। उससे `**विरुद्ध भाव (अस्थिरता) वह क्षोभ है।**' आहाहा ! `**मोह और क्षोभ रहित परिणाम**' (अर्थात्) मिथ्यात्व और अस्थिरता रहित परिणाम वह `**साम्य**' है, समता है, `**धर्म**' है `**और चारित्र**' (है)। - `**यह सब पर्यायवाची हैं।**' एक-एक शब्द भले ही भिन्न है किन्तु उसका एक ही वाच्य है। साम्य - समता कहो, धर्म कहो, आहाहा ! चारित्र कहो - सब का एक ही अर्थ है। - यह सातवीं गाथा का अर्थ हुआ।

(अब) आठवीं (गाथा)। `**अब आत्मा की चारित्रता (अर्थात् आत्मा ही चारित्र है ऐसा) निश्चय करते हैं।**' जो चारित्र परिणाम है वह आत्मा है, और आत्मा उसरूप परिणमित हुआ है (ऐसा कहते हैं)। आहाहा !

`**जे भाव मां प्रणमे दरव,**' (अर्थात्) वस्तु `**ते काल तन्मय ते कह्युं,**' (अर्थात्) उस समय वह द्रव्य उस परिणाम में तन्मय है। उसकी टीका :- `**वास्तव में जो द्रव्य**' (अर्थात्) वस्तु है, आत्मा - चिद्धन द्रव्य - `**जिस समय जिस भावरूप से परिणमन करता है,**' (यानी कि) जिस काल में जिस पर्याय में जिस भावरूप से होता है `**वह द्रव्य उस समय उष्णतारूप से परिणमित लोहे के गोले की भाँति...**' आहाहा ! उष्णतारूप परिणमित गोला जैसे उष्णतारूप है - `**उस मय है**' इस प्रकार आत्मा जिस काल में जिस भावरूप परिणमित होता है (उस काल में) उस मय है। आहाहा ! यहाँ तो धर्म की बात है। बाद में (९ वीं गाथा में) शुभ और अशुभ की बात करेंगे।

अथात्मनश्चारित्रत्वं निश्चिनोति -

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयं ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो।।८।।

परिणमति येन द्रव्यं तत्कालं तन्मयमिति प्रज्ञप्तम्।
तस्माद्धर्मपरिणत आत्मा धर्मो मन्तव्यः।।८।।

यत्खलु द्रव्यं यस्मिन्काले येन भावेन परिणमति तत् तस्मिन् काले किलौष्ण्यपरिणतायःपिण्डवत्तन्मयं भवति। ततोऽयमात्मा धर्मेण परिणतो धर्म एव भवतीति सिद्धमात्मनश्चारित्रत्वम्।।८।।

अथाभेदनयेन धर्मपरिणत आत्मैव धर्मो भवतीत्यावेदयति - **परिणमदि जेण दव्वं तक्काले तम्मय त्ति पण्णत्तं** परिणमति येन पर्यायेण द्रव्यं कर्तृ तत्काले तन्मयं भवतीति प्रज्ञप्तम् यतः कारणात्, **तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेदव्वो** ततः कारणात् धर्मेण परिणत आत्मैव धर्मो मन्तव्य इति। तद्यथा - निजशुद्धात्मपरिणतिरूपो निश्चयधर्मो भवति। पञ्चपरमेष्ठ्यादिभक्तिपरिणामरूपो व्यवहारधर्मस्तावदुच्यते। यतस्तेन तेन विवक्षिताविवक्षितपर्यायेण परिणतं द्रव्यं तन्मयं भवति, ततः पूर्वोक्तधर्मद्वयेन परिणतस्तप्तायःपिण्डवदभेदनयेनात्मैव धर्मो भवतीति ज्ञातव्यम्। तदपि कस्मात्, उपादानकारणसदृशं हि कार्यमिति वचनात्। तच्च पुनरुपादानकारणं शुद्धाशुद्धभेदेन द्विधा। रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानमागमभाषया शुक्लध्यानं वा केवलज्ञानोत्पत्तौ शुद्धोपादानकारणं भवति। अशुद्धात्मा तु रागादीनामशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादानकारणं भवतीति सूत्रार्थः। एवं चारित्रस्य संक्षेपसूचनरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम्।।८।।

'**इसलिये यह आत्मा धर्मरूप परिणमित होने से धर्म ही है।**' वस्तु स्वभाव शुद्ध चैतन्यधन (है), (वह) स्वयं के शुद्ध परिणामरूप परिणमित होता हुआ धर्म है। आहाहा! यह आत्मा पर्याय में धर्मी हुआ - परिणमित हुआ - धर्म ही है। '**इसप्रकार आत्मा की चारित्रता सिद्ध हुई।**' इसका नाम चारित्र है। आहाहा ! (किन्तु) नग्नता (या) पंचमहाव्रत के परिणाम कोई चारित्र नहीं।

पूर्ण शुद्धस्वभाव वर्तमान परिणमन में शुद्धरूप परिणमन करता है - तन्मय होता है (अर्थात्) उस, परिणाम में तन्मय - उस रूप - पर्याय होती है, हाँ ! द्रव्य उस रूप नहीं होता। वह आगे नौवीं गाथा में आयेगा न ! (कि) शुभरूप परिणमित होने से द्रव्य शुभ होता है। (किन्तु) वह तो पर्याय की बात है। द्रव्य तो त्रिकाली शुद्ध ही है। आहाहा ! द्रव्य है यह तो शुद्ध चैतन्यधन अनाकुल आनंद का रसकंद प्रभु (है)। वह जिस परिणाम में धर्म नाम चारित्ररूप परिणमता (है) (वह) प्रत्येक द्रव्य उस पर्याय में तन्मय है। पर्याय भिन्न रहती है और परिणमता है ऐसा नहीं। आहाहा ! यहाँ पर उतना बतलाना है। '**इसप्रकार आत्मा की चारित्रता सिद्ध हुई।**' श्री जयसेनाचार्य ने आत्मा का आचरण कहा है। आत्मा

अब आत्माकी चारित्रता (अर्थात् आत्मा ही चारित्र है ऐसा) निश्चय करते हैं :-

गाथा-८

जे भावमां प्रणमे दरव, ते काल तन्मय ते कह्युं।
जीवद्रव्य तेथी धर्ममां प्रणमेल धर्म ज जाणवुं।।८।।

अन्वयार्थ :- [द्रव्यं] द्रव्य जिस समय **[येन]** जिस भावरूपसे **[परिणमति]** परिणमन करता है **[तत्कालं]** उस समय **[तन्मयं]** उस मय है **[इति]** ऐसा **[प्रज्ञप्तं]** (जिनेन्द्र देवने) कहा है; **[तस्मात्]** इसलिये **[धर्मपरिणतः आत्मा]** धर्मपरिणत आत्माको **[धर्मः मन्तव्यः]** धर्म समझना चाहिये।

टीका :- वास्तवमें जो द्रव्य जिस समय जिस भावरूपसे परिणमन करता है, वह द्रव्य उस समय उष्णतारूपसे परिणमित लोहेके गोलेकी भाँति उस मय है, इसलिये यह आत्मा धर्मरूप परिणमित होनेसे धर्म ही है। इसप्रकार आत्माकी चारित्रता सिद्ध हुई।

भावार्थ :- सातवीं गाथामें कहा गया है कि चारित्र आत्माका ही भाव है। और इस गाथामें अभेदनयसे यह कहा है कि जैसे उष्णतारूप परिणमित लोहेका गोला स्वयं ही उष्णता है-लोहेका गोला और उष्णता पृथक् नहीं है, इसी प्रकार चारित्रभावसे परिणमित आत्मा स्वयं ही चारित्र है।।८।।

आनंदस्वरूप शुद्ध चैतन्य वस्तु (है)। उसका आचरण - शुद्धता का आचरण - वह चारित्र है। आहाहा !

भावार्थ :- `**चारित्र आत्मा का ही भाव है।**' पर्याय हाँ ! चारित्र है वह आत्मा का ही भाव है (अर्थात्) शुद्ध परिणमन - वीतरागी परिणमन - जैसा शुद्धस्वरूप है ऐसा ही परिणमन में शुद्धतारूप परिणमन करता है - वह आत्मा का भाव है। आहाहा! यह पर्याय हाँ ! त्रिकालभाव है वह अलग वस्तु है। जो त्रिकाली ज्ञायकभाव है वह तो त्रिकाल ज्ञायक है। (किन्तु) अब वह स्वयं शुद्धरूप परिणमता है तब आत्मा उस (भावरूप) परिणमित हुआ है। अत: वह `**सातवीं गाथा में कहा गया है कि चारित्र आत्मा का ही भाव है। और इस गाथा में अभेदनय से यह कहा है कि जैसे उष्णतारूप परिणमित लोहे का गोला स्वयं ही उष्णता है...**' (यह) अभेद कहा। `**लोहे का गोला और उष्णता पृथक् नहीं, इसी प्रकार चारित्रभाव से परिणमित आत्मा स्वयं ही चारित्र है।**' आहाहा!

स्वरूप में चरण करना वह चारित्र - (ऐसा सातवीं गाथा में) आया था न ! स्वरूप

जो आत्मा आनंद और ज्ञानस्वरूप प्रभु ! उसमें चरना-रमना वह चारित्र है। आहाहा ! और स्वसमय की प्रवृत्ति वह उसका अर्थ है। स्वसमय ऐसे त्रिकाली आत्मा में प्रवृत्ति अर्थात् परिणमन वह उसका अर्थ है। किसका ? (कि) चारित्र का, स्वरूप में चरना (चारित्र का यह अर्थ है)। स्वरूप जो है वह पहले दृष्टि में आया है (और) ज्ञान में जानने में आया है। (अब) उस स्वरूप में चरना-रमना उसका नाम चारित्र (है) और वह चारित्र अर्थात् स्वसमय में प्रवृत्ति। आहाहा ! भगवानआत्मा अपना स्वसमय - स्वरूप है। उसकी प्रवृत्ति में (वह) स्वसमय शुद्ध है। `**जीवो चरित्तदंसणणाणठियो**' दूसरी गाथा (समयसार) में `**तं हि ससमयं जाण। पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं।।**' शुभ-अशुभभाव पुद्गल कर्म के प्रदेश का भाग है। आहाहा ! निश्चय से ऐसा है (और) वह (शुभाशुभभाव) परसमय है। आहाहा !

अब ये सब प्रश्न करते हैं (कि) स्वसमय कब होता है ? स्वसमय की शुरूआत चतुर्थ (गुणस्थान से) होती है, भाई ! (किन्तु) यह स्वसमय की प्रवृत्ति छट्ठे - सातवें गुणस्थान की (है)। आहाहा ! `**जीवोचरित्तदंसणणाण...**' तो `**चरित्त**' भले ही नहीं हो। किन्तु `**दंसणणाण ट्ठिदो**' (है) उतना वह स्वसमय है। और `**चरित्त ट्ठि**' वह विशेष स्वसमय की प्रवृत्ति है - ऐसा है।

(यहाँ कहते हैं कि) `**इसी प्रकार चारित्रभाव से परिणमित...**' आहाहा ! (अर्थात्) वीतराग स्वभावरूप - (जैसा) वीतरागस्वरूप है ऐसे ही वीतरागभाव से - पर्याय में परिणमता है उस भाव को चारित्र कहते हैं और वह चारित्र सो आत्मा है। है न ? कि `**चारित्रभाव से परिणमित आत्मा स्वयं ही चारित्र है।**' (यह) पर्याय की अपेक्षा से (है) आहाहा! निश्चय से चारित्र के परिणाम और द्रव्य - दोनों वस्तुतः तो भिन्न हैं। किन्तु चारित्र परिणामरूप द्रव्य परिणमित हुआ है, ऐसा यहाँ कहना है, आहाहा !

वास्तव में तो शुद्ध चैतन्यधन भगवान(आत्मा की) दृष्टि और ज्ञान होने के बाद उसमें रमती है वह पर्याय (चारित्र) (है)। (और) वास्तव में वह आत्मा चारित्र है ऐसा यहाँ कहना है। (किन्तु) राग कि जो अनात्मा है वह (आत्मा) नहीं ऐसा कहना है। - इस अपेक्षा (है)। बाक़ी चारित्र की जो पर्याय है वह वास्तव में तो (अपने) षट्कारकरूप परिणमित होती दशा है। आहाहा ! उसको द्रव्य की अपेक्षा... अर्थात् ? (कि द्रव्य पर) लक्ष होता है। किन्तु द्रव्य है इसलिये ये चारित्र के परिणाम होते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा ! **उस चारित्र के निर्मल परिणाम का कर्ता उस चारित्र का परिणाम (है)। चारित्र का परिणाम उसकी पर्याय का कार्य (है)।** चारित्र परिणाम का साधन - करण पर्याय (है)। वे चारित्रपरिणाम (प्रगट) होकर चारित्र की पर्याय में रहे वह संप्रदान (है)। उस चारित्रपर्याय से चारित्र

हुआ है तो वह पर्याय से पर्याय हुई (वह अपादान है)। और चारित्रपर्याय के आधार से पर्याय हुई (वह आधार है) **पर्याय के आधार से पर्याय (है), (किन्तु) द्रव्य के आधार से नहीं।** आहाहा ! यहाँ पर उनको (पर्याय को) अभेद माना (हैं), है तो भेद। द्रव्य और चारित्र के परिणाम इन दोनों में भेद है, भिन्नता है किन्तु यहाँ अभेद (कहे हैं)। क्योंकि यह ज्ञानप्रधान कथन है न ! आहाहा ! ऐसी बात है। आहाहा !

कोई ऐसा प्रश्न करते हैं अव्रती को जातिस्मरण - पूर्व का ज्ञान हो सकता है ? अरे भगवान ! नारकी को होता है और मिथ्यादृष्टि को भी जातिस्मरण होता है। (और) सम्यग्ज्ञानी को होता है वह तो सम्यक् चैतन्य के भानसहित का है। स्वजाति के भानसहित परजाति का ज्ञान (है)। (जब कि) अज्ञानी को स्वजाति के ज्ञान बिना परजाति का ज्ञान (है)। आहाहा ! समझ में आया ? अरे ! मिथ्यादृष्टि को विभंग (भी) होता है। सात द्वीप-समुद्र देखता है। किन्तु उससे क्या ? वह क्या चीज है? आहाहा ! लोगों को तत्त्व की - वस्तु की ख़बर नहीं और जैसे-तैसे अपनी कल्पना में लगता है ऐसा मान लेते हैं। ऐसे कैसे चले बापू ? तीन लोक के नाथ का तो यह मार्ग है। आहाहा ! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा से कहा हुआ यह तत्त्व है। जैसा उन्होंने जाना वैसा उन्हों ने कहा है। आहाहा ! - यह आठ गाथा हुई।

अब तीन की (शुद्ध, शुभ और अशुभ की) बात करेंगे। (आठवीं गाथा में) तो धर्मरूप परिणमित आत्मा धर्म है, उसके राग और पंचमहाव्रत के परिणाम नहीं हैं (ऐसा कहा था)। आहाहा ! अब यहाँ कहते हैं कि जो बात कही थी (उसमें) अब (शुभ-अशुभ मिलाकर) तीनोंरूप परिणमता है वह आत्मा स्वयं परिणमता है (ऐसा कहेंगे)। आहाहा !

सुबह में ऐसा आया था कि शुभ-अशुभ परिणाम पुद्गल का कार्य है और पुद्गल कर्ता है। यह तो द्रव्यदृष्टि का विषय है वह बतलाने के लिये (कहा था)। दृष्टि का विषय है वह शुद्ध है। अत: उसकी पर्याय में जो अशुद्धता होती (है) वह पुद्गल का कार्य है और पुद्गल उसका कर्ता (है)। - इस अपेक्षा से (वहाँ पर कहा था)। अब यहाँ तो ज्ञानप्रधान कथन है, अत: शुभ और अशुभ (परिणाम)रूप भी आत्मा स्वयं परिणमता है। पुद्गल के कारण (परिणमता) नहीं, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! अब ऐसी अपेक्षायें (हैं)।

पुद्गल (शुभ-अशुभ का) कर्ता नहीं। (क्योंकि) यहाँ तो द्रव्य और पर्याय उनके अपने अस्तित्व में है वह सिद्ध करना है। अब (अन्जान को) ऐसा लगे कि सुबह में कुछ और दोपहर में कुछ ?

प्रश्न :- मौसम बदला है न ? सुबह में ठंडी है और दोपहर को गर्मी है न!

समाधान :- मौसम बदला नहीं। अपेक्षायें बदली हैं। आहाहा ! कठिन बातें हैं, ये

अथ जीवस्य शुभाशुभशुद्धत्वं निश्चिनोति -

जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो।।९।।

जीवः परिणमति यदा शुभेनाशुभेन वा शुभोऽशुभः।
शुद्धेन तदा शुद्धो भवति हि परिणामस्वभावः।।९।।

यदाऽयमात्मा शुभेनाशुभेन वा रागभावेन परिणमति तदा जपातापिच्छारागपरिणतस्फटिकवत् परिणामस्वभावः सन् शुभोऽशुभश्च भवति। यदा पुनः शुद्धेनारागभावेन परिणमति तदा शुद्धारागपरि-णतस्फटिकवत्परिणामस्वभावः सन् शुद्धो भवतीति सिद्धं जीवस्य शुभाशुभशुद्धत्वम्।।९।।

अथ शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयेण परिणतो जीवः शुभाशुभशुद्धोपयोगस्वरूपो भवतीत्युपदिशति - **जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा** जीवः कर्ता यदा परिणमति शुभेनाशुभेन वा परिणामेन **सुहो असुहो हवदि** तदा शुभेन शुभो भवति, अशुभेन वाऽशुभो भवति। **सुद्धेण तदा सुद्धो हि** शुद्धेन यदा परिणमति तदा शुद्धो भवति, **हि** स्फुटम्। कथंभूतः सन्। **परिणामसब्भावो** परिणामसद्भावः सन्निति। तद्यथा - यथा स्फटिकमणिविशेषो निर्मलोऽपि जपापुष्पादिरक्तकृष्णश्वेतोपाधिवशेन रक्तकृष्णश्वेतवर्णो भवति, तथाऽयं जीवः स्वभावेन शुद्धबुद्धैकस्वरूपोऽपि व्यवहारेण गृहस्थापेक्षया यथासंभवं सरागसम्यक्त्वपूर्वकदानपूजादिशुभानुष्ठानेन, तपोधनापेक्षया तु मूलोत्तरगुणादिशुभानुष्ठानेन परिणतः शुभो ज्ञातव्य इति। मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगपञ्चप्रत्ययरूपाशुभोपयोगेनाशुभो विज्ञेयः। निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगेन परिणतः शुद्धो ज्ञातव्य इति। किंच जीवस्यासंख्येयलोकमात्रपरिणामाः सिद्धान्ते मध्यमप्रतिपत्त्या मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानरूपेण कथिताः। अत्र प्राभृतशास्त्रे तान्येव गुणस्थानानि संक्षेपेणाशुभशुभशुद्धोपयोगरूपेण कथितानि। कथमिति चेत् -मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभोपयोगः, तदनन्तरमसंयतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्तसंयतगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः, तदनन्तरमप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तगुणस्थानषट्के तारतम्येन शुद्धोपयोगः, तदनन्तरं सयोग्ययोगिजिन-गुणस्थानद्वये शुद्धोपयोगफलमिति भावार्थः।।९।।

बापू ! धर्म की कोई अलौकिक बातें हैं। आहाहा ! अपेक्षा का ज्ञान नहीं हो और एक ही तरफ खींचते हैं (तो नहीं चले)।

`**अब यहाँ जीव का शुभ,...**' (अर्थात्) दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव है वह शुभ है। उस शुभरूप जीव स्वयं होता है ऐसा कहते हैं। आहाहा ! उस प्रकार `**अशुभ...**' (अर्थात्) हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ - उन अशुभभावरूप (भी) जीव स्वयं होता है। उसकी पर्याय में परिणमन स्वयं का है। आहाहा ! `**और शुद्धत्व...**' वह तो ऊपर (आठवीं गाथा में) आ गया है। किन्तु अब मिला। `(**अर्थात् यह जीव ही शुभ, अशुभ और शुद्ध है ऐसा**) **निश्चित करते हैं।**'

अब यहाँ जीवका शुभ, अशुभ और शुद्धत्व (अर्थात् यह जीव ही शुभ, अशुभ शुद्ध है ऐसा) निश्चित करते हैं।

गाथा-९

शुभ के अशुभमां प्रणमतां शुभ के अशुभ आत्मा बने।
शुद्धे प्रणमतां शुद्ध परिणाम स्वभावी होइने।।९।।

अन्वयार्थ :- [जीव] जीव **[परिणामस्वभावः]** परिणामस्वभावी होनेसे **[यदा]** जब **[शुभेन वा अशुभेन]** शुभ या अशुभ भावरूप **[परिणमति]** परिणमन करता है **[शुभः अशुभः]** तब शुभ या अशुभ (स्वयं ही) होता है, **[शुद्धेन]** और जब शुद्धभावरूप परिणमित होता है **[तदा शुद्धः हि भवति]** तब शुद्ध होता है।

टीका :- जब यह आत्मा शुभ या अशुभ राग भावसे परिणमित होता है तब जवा कुसुम या तमाल पुष्पके (लाल या काले) रंगरूप परिणमित स्फटिककी भाँति, परिणामस्वभाव होनेसे शुभ या अशुभ होता है (उस समय आत्मा स्वयं ही शुभ या अशुभ है); और जब वह शुद्ध अरागभावसे परिणमित होता है तब शुद्ध अरागपरिणत (रंग रहित) स्फटिककी भाँति, परिणामस्वभाव होनेसे शुद्ध होता है। (उस समय आत्मा स्वयं ही शुद्ध है)। इस प्रकार जीवका, शुभत्व, अशुभत्व और शुद्धत्व सिद्ध हुआ।

`परिणामसब्भावो' (अर्थात्) परिणमने का स्वभाववाला होने से... पर्याय से सिद्ध करना है न ?

टीका :- `जब यह आत्मा शुभ या अशुभ राग भाव से परिणमित होता है...' दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभरागरूप जीव होता है। (वह) है पुण्य बंध का कारण, धर्म नहीं। आहाहा ! तथापि (उसरूप) जीव परिणमता है। आहाहा !

सुबह में कहा था कि शुभराग पुद्‌गल का कार्य है और कर्ता पुद्‌गल है। आहाहा ! किस अपेक्षा से (कहा था) भाई ! समयसार दृष्टिप्रधान ग्रंथ है। अत: द्रव्य स्वभाव जब (दृष्टि में आया) है (तब पर्याय शुद्ध ही होती है)। आहाहा ! भगवानआत्मा सच्चिदानंदस्वरूप शुद्ध भगवान है। जो परमस्वभाव है उसकी जो पर्याय होती है वह तो शुद्ध ही होती है। ज्ञायकभाव का परिणमन तो - उसकी पर्याय शुद्ध ही होती है। (यह) द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से कथन है न ! (अत:) उसमें शुभाशुभ परिणाम होते हैं वे द्रव्यस्वभाव से नहीं हुवे हैं इसलिये विभावरूप हुवे (भावों) पर्याय में - द्रव्य, गुण के अवलंबन के बिना निरालंबन (हुवे हैं)। आहाहा !

भावार्थ :- आत्मा सर्वथा कूटस्थ नहीं है किन्तु स्थिर रहकर परिणमन करना उसका स्वभाव है, इसलिये वह जैसे जैसे भावोंसे परिणमित होता है वैसा वैसा ही वह स्वयं हो जाता है। जैसे स्फटिकमणि स्वभावसे निर्मल है तथापि जब वह लाल या काले फूलके संयोगनिमित्तसे परिणमित होता है तब लाला या काला स्वयं ही हो जाता है। इसीप्रकार आत्मा स्वभावसे शुद्ध-बुद्ध-एकस्वरूपी होने पर भी व्यवहारसे जब गृहस्थदशामें सम्यक्त्वपूर्वक दानपूजादि शुभ अनुष्ठानरूप शुभोपयोगमें और मुनिदशामें मूलगुण तथा उत्तरगुण इत्यादि शुभ अनुष्ठानरूप शुभोपयोगमें परिणमित होता है तब स्वयं ही शुभ होता है, और जब मिथ्यात्वादि पाँच प्रत्ययरूप अशुभोपयोगमें परिणमित होता है तब स्वयं ही अशुभ होता है और जैसे स्फटिकमणि अपने स्वाभाविक निर्मल रंगमें परिणमित होता है तब स्वयं ही शुद्ध होता है, उसीप्रकार आत्मा भी जब निश्चय रत्नत्रयात्मक शुद्धोपयोगमें परिणमित होता है तब स्वयं ही शुद्ध होता है।

सिद्धान्त ग्रन्थोंमें जीवके असंख्य परिणामोंको मध्यम वर्णनसे चौदह गुणस्थानरूप कहा गया है। उन गुणस्थानोंको संक्षेपसे `उपयोग' रूप वर्णन करते हुए, प्रथम तीन गुणस्थानोंमें तारतम्यपूर्वक (घटता हुआ) अशुभोपयोग, चौथेसे छट्ठे गुणस्थान तक तारतम्यपूर्वक (बढ़ता हुआ) शुभोपयोग, सातवेंसे बारहवें गुणस्थान तक तारतम्यपूर्वक शुद्धोपयोग और अन्तिम दो गुणस्थानोंमें शुद्धोपयोगका फल कहा गया है, - ऐसा वर्णन कथंचित् हो सकता है।।९।।

तथापि यहाँ आगे कहेंगे, है न (अंदर) ? `**यह आत्मा शुभ या अशुभ राग भाव से परिणमित होता है...**' आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा भगवान का स्मरण वे सब शुभराग हैं। उन रागरूप भी जीव स्वयं पर्याय में होता है। आहाहा ! और अशुभराग(रूप) - विषयवासना का राग, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ वे सब अशुभभाव(रूप) - पापभाव(रूप) - भी आत्मा की पर्याय में परिणमता है।

सुबह का कुछ और इस समय का कुछ ! यहाँ तो ज्ञानप्रधान कथन है न! आहाहा ! ये वस्तु तो (शुभ-अशुभभाव) पर्याय में हैं वह तो पहले निश्चित होना चाहिये। जिस काल में जिस समय में जो पर्याय होती है उसका जन्मक्षण है। आहाहा ! (ऐसा निश्चित करने के) बाद (उसके) द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से कहे तब उसके परिणाम जो विकारी हैं उनका वह स्वभाव है वह कर्ता कैसे हो ? भगवानआत्मा सच्चिदानंद(स्वरूप) शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु (है)। वह निर्विकारी घन (है)। (तो) वह निर्विकारी राग का कर्ता कैसे हो ? - उस अपेक्षा से (सुबह में) कहा था। ऐसी बात है ! आहाहा !

किन्तु यहाँ कहते हैं कि पर्याय में (जो अशुद्धता) है वह तो उसकी अपनी है। आहाहा !

(सुबह की बात तो) द्रव्यस्वभाव की दृष्टि(प्रधानता) से बात थी। (जब की) यहाँ तो ज्ञानप्रधानता से बात है कि (जो राग है वह) पर्याय में - उसमें होता है। आहाहा ! आत्मा शुभ-अशुभभावरूप - रागभावरूप होता है वह राग है। चाहे तो भगवान कि भक्ति हो या भगवान का स्मरण हो, किन्तु वह सब शुभराग है, वह कोई धर्म नहीं। आहाहा! अरे ! उसको कहाँ गरज है ? अनंतकाल से चौराशी के अवतार में भटक रहा है। आहाहा ! इस जगत की जंजाल कर-कर के मर जाये और बाद में तिर्यंच में जाता है - पशु होता है, कौआ-कुत्ता होता है। आहाहा ! अरेरे...! इसने क्या किया है ?

यहाँ कहते हैं कि आत्मा स्वयं शुभ-अशुभरूप परिणमता है। कर्म के कारण नहीं। आहाहा ! जीव उसका स्वतंत्ररूप कर्ता है। (अर्थात्) पर्याय, पर्याय का कर्ता है। आहाहा! **`जब यह आत्मा शुभ या अशुभ राग भाव से...'** रागभाव से (यानी कि) (शुभ और अशुभ) दोनों राग हैं। आहाहा ! (अब कहते हैं कि) **`तब जवा कुसुम या तमाल पुष्प के (लाल या काले) रंगरूप परिणमित...'** शुभ और अशुभ दोनों (लेना) हैं न ? (अत:) **`जवा कुसुम या तमाल पुष्प के...'** जवापुष्प लाल (है) और तमालपुष्प काला (है)। उस **`रंगरूप परिणमित स्फटिक की भाँति,...'** स्फटिकरत्न है वह स्वच्छ (होता है)। किन्तु उसे लाल और काले रंग के पुष्प का निमित्त होता है, अत: **`परिणमित स्फटिक की भाँति,...'** परिणमता है (तो) स्फटिक, (तब) लाल-काला रंग निमित्त है। आहाहा ! किन्तु काले और लाल रंगरूप स्फटिक की पर्याय (स्वयं की) योग्यता से परिणमता है। इस लकडी के नीचे लाल पुष्प रखो तो यह - इसका स्वभाव - परिणमित नहीं होगा। किन्तु स्फटिक पर्याय की योग्यता के कारण लाल और काले पुष्प के संयोग से (वह) परिणमित होता है। (यानी कि) लाल और कालारूप उसकी पर्याय परिणमित होती है। आहाहा ! अब द्रव्य किसे कहना और पर्याय किसे कहना (वह अज्ञानी को कहाँ ख़बर है ?)

श्रोता : द्रव्य अर्थात् पैसा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पैसा ? उस पैसे का - धूल का यहाँ क्या काम है ? सभी सेठिया तो मिट्टी - धूल के स्वामी हैं। ५-५० लाख, करोड़-दो करोड़ मिला, वह करोड़पति अर्थात् जड़ का पति, धूल का पति (है)। वह चैतन्य नहीं। आहाहा ! ऐसा है, बापू! भगवान तो ऐसा कहते हैं कि पैसे के मांगनेवाले हैं वे सब भिखमंगे हैं, मांगनेवाले हैं। हमको पैसा दो - हमको पैसा दो - हमको पैसा दो (ऐसे मांगते हैं)। भिखमंगे - भिखमंगे अंतर में अनंत आनंद की लक्ष्मी पड़ी है उसे तो देखता नहीं और इस धूल की लक्ष्मी-मिट्टी-जड़-पुद्गल को (अपनी मानते हैं)। आहाहा ! (उसे ऐसा लगता है कि) मैं पाँच लाख पैदा करता हूँ। किन्तु अब मुझे दस लाख पैदा करने के लिये व्यापार करना

है। बड़े भिखमंगे हैं। दुनिया सारी मूर्ख-पागल है। पागलों में पागल की प्रसंशा हो उसमें क्या ? आहाहा ! यहाँ तो ऐसी बात है।

दुनिया पागल है। पर को अपना माननेवाले और स्वको भूलनेवाले मूर्ख - पागल हैं। आहाहा ! (फिर भले ही) चाहे जितना ग्रेज्युएट हो - L.L.B. हुये वकील हों या M.B.B.S. हुये डोक्टर हों - सब पैसे के भिखमंगे हैं। आहाहा !

प्रश्न :- पैसे के बिना सब्जी नहीं आती।

समाधान :- पैसे के बिना ही सब्जी आती है। कहने में नहीं आता ? कि दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है। सुना है न ? (तो) वह क्या कहते हैं ? (कि) खानेवाले का दाने-दाने पर नाम है यानी कि जो दाना - जो रजकण आनेवाले हैं वे ही आयेंगे। आहाहा !

प्रश्न :- इसका विश्वास नहीं।

समाधान :- विश्वास का (कहाँ) ठिकाना है ? मूर्ख-पागल किसको कहते हैं ? मिथ्यात्व के भ्रमण में पागल - उन्मत्त को कुछ भान नहीं। पैसा हम लेते हैं (ऐसा मानते हैं) वे भिखारी (हैं)।

प्रश्न :- पैसे के बिना ऐसा मकान होता है ?

समाधान :- वह तो अपने आप - जड़ से मकान हुआ (है)। पैसे से हुआ नहीं और दूसरे से भी हुआ नहीं। आहाहा ! पैसा है वह तो मिट्टी, धूल, अजीव है। आहाहा ! (और) भगवानआत्मा चैतन्य जीव है। (तो) उस जीव का अजीव कहाँ से हो ? उस जीवस्वरूप का अजीवस्वरूप कहाँ से हो ? आहाहा ! शास्त्र में ऐसा कहा है कि वे (मिथ्यादृष्टि) वराका (हैं)। वराका अर्थात् भिखमंगा। आहाहा ! कहा था न एक बार ? भावनगर के दरबार आये थे उनसे कहा था, कि महीने लाख मांगता है (वह) छोटा भिखारी (है)। पांच लाख मांगता है वह बड़ा भिखारी (है) और करोड़ मांगता है वह तो उससे भी बड़ा मांगनेवाला बड़ा भिखारी है। यहाँ (हमको) कहाँ किसी की खुशामद करनी है ?

आहाहा ! यह (बाहर का) स्वराज्य है वह आत्मा का नहीं। आहाहा ! स्वराज्य तो, आत्मा में आनंद और ज्ञान का भंडार भरा है ऐसा है। वह स्वराज्य आत्मा का है। (तथापि) पागल इस परराज्य को स्वराज्य मानते हैं। आहाहा ! हमारे लिये तो अरबपति हो तो भी ठीक और भिखमंगा हो तो भी ठीक। ये (बाहर के) तो धूल के राज्य हैं। मिट्टी के राज्य हैं वे (आत्मा का) राज्य नहीं। बापू ! आहाहा ! राज्य तो अंदर '**राज्यते शोभते इति राजा**' अंदर आनंद और ज्ञानगुण से (आत्मा) शोभायमान है, उसका राजा होता है वह राजा (है)। आहाहा ! आता है न ? 'एवं हि जीवराया' -(समयसार की १७-१८

गाथा) है न ? शास्त्र में तो सब भरा है, भाई ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि जीव जब रागरूप - शुभाशुभ के रागरूप होता (है तब उसरूप होता है)। स्फटिकमणि जैसे स्वच्छ है उसे लाल और काले पुष्प का निमित्त है। (तब) वह लाल-कालेरूप परिणमता है। वह स्वयं स्वयं की पर्याय से स्वतंत्ररूप से परिणमता है। लाल और काला पुष्प है इसलिये परिणमता है ऐसा नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। भाई ! मार्ग न्यारा है, नाथ ! आहाहा ! तेरे हित का पंथ कोई न्यारा (है)। आहाहा ! (अज्ञानी) तो अहित के पंथ पर अनादिकाल से भटक रहा है और उसमें ही ठगाया गया है।

यहाँ कहते हैं कि लाल-काले (रंगरूप परिणमित) **`स्फटिक की भाँति, परिणामस्वभाव होने से...'** (अर्थात्) भगवानआत्मा पलटने के स्वभाववाला होने से (शुभ-अशुभभावरूप होता है)। आहाहा ! जैसे स्फिटिक भी बदलने के स्वभाव के कारण लाल और काली पर्यायरूप होता है। वैसे भगवानआत्मा परिणामस्वभावी होने से शुभ और अशुभ(रूप परिणमता है)। (शुभभाव को लाल रंग की और अशुभभाव को काले रंग की उपमा है)। (जैसे) दोनों रंगरूप (स्फटिक परिणमता है) वैसे शुभ-अशुभभावरूप आत्मा परिणमता है। आहाहा! क्योंकि परिणामस्वभाव होने से (वैसे परिणमता है)। नित्य है तथापि परिणामी है। वस्तु भगवान(आत्मा) तो नित्य त्रिकाल है, अविनाशी है, नित्यपरिणामी है। (अर्थात्) नित्य है वह अनित्यरूप परिणमता है। आहाहा ! ऐसी बात है। अन्यत्र तो ये सब पागलपना जैसा लगे। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) **`परिणामस्वभाव होने से, शुभ या अशुभ होता है।'** कौन? आत्मा, पहले (यह) है न ? (कि **`यह आत्मा...'**) भगवानआत्मा पवित्र और शुद्ध चैतन्यधन होने पर भी परिणामी - बदलने के स्वभाव के कारण (वह) शुभ और अशुभरागरूप परिणमित होता है। आहाहा !

प्रश्न :- कर्म के उदय से रागरूप होता नहीं ?

समाधान :- उदय की यहाँ कुछ बात नहीं।

प्रश्न :- गोम्मटसार में आता है न ?

समाधान :- वह (तो) निमित्त से कथन है। उस समय उस शुभपरिणाम का षट्कारकरूप (परिणमन स्वतंत्र है)। - पंचास्तिकाय की ६२वीं गाथा। शुभराग का जो परिणमन पर्याय में होता है वह (अपने) षट्कारक के कारण (होता है)। उसे परकारक की अपेक्षा नहीं। `ईसरी' में बड़ी चर्चा हुई थी। और अशुभरूप - हिंसा, झूठ के भावरूप - किन्तु जब परिणमता है (तब) वह पर्याय भी षट्कारकरूप अपने से परिणमती है। उसे कर्म की अपेक्षा नहीं (और अपने) द्रव्य-गुण की (भी) अपेक्षा नहीं। ऐसी बातें हैं !

प्रश्न :- कर्मशास्त्र सब उड़ जाता है !

समाधान :- कर्मशास्त्र (में) निमित्त से कथन है ऐसे उसका ज्ञान करना है। (बाक़ी) उपादान तो स्वयं का है। आहाहा ! स्वयं की दशा में राग और पुण्य-पाप के भाव का (होना वह) पर्याय की - उपादान की - योग्यता से (है)। स्वयं की उस क्षण में वही योग्यता (है)। अत: वह (उत्पन्न) होती है। ऐसा उपदेश है।

यह किस प्रकार का उपदेश ? कुछ ऐसा कहो कि दया पालन करना, व्रत करना, उपवास करना, भक्ति करना और यात्रा करना तो समझ में तो आये ? वह तो अनादिकाल का भटकने का (मार्ग) है। आहाहा ! किन्तु, उस भटकने के भावरूप (भी) परिणमता है (तो) स्वयं। आहाहा ! ऐसा है, प्रभु !

(यहाँ कहते हैं कि) **`शुभ या अशुभ होता है (उस समय आत्मा स्वयं ही शुभ या अशुभ है); और जब वह शुद्ध अरागभाव से परिणमित होता है...**' आहाहा ! सच्चिदानंद प्रभु भगवानआत्मा ! स्वयं शुद्ध है। (अब) उसकी पर्याय में परिणमनस्वभाव के कारण (जब) शुद्धरूप-राग के बिना अरागरूप - परिणमित होता है (तब) आत्मा ही स्वयं उसरूप तन्मय होकर परिणमित होता है। आहाहा ! कर्म का अभाव हुआ इसलिये शुद्धरूप परिणमित होता है ऐसा नहीं, आहाहा ! कठिन बात बापू ! धर्म की चीज अभी सुनना कठिन (है), बापू ! आहाहा ! दुनिया तो बाहर से मान बैठी है कि कोई दया का पालन किया, व्रत किये, उपवास किये, भक्ति की और शत्रुंजय - गिरनार की यात्रा की इसलिये हो गया धर्म ! अरे...! धूल में (बिलकुल) भी धर्म नहीं। सुन तो सही ! आहाहा ! वह तो राग की क्रिया का परिणमन है। यदि शुभराग करता हो तो (पुण्य है)। आहाहा ! और सारा दिन संसार के व्यापार, स्त्री, पुत्र का रक्षण करने का भाव (करे तो) केवल पाप है - अशुभभाव है। आहाहा!

प्रश्न :- स्त्री-पुत्र को छोड़ना कहाँ ?

समाधान :- तूने कहाँ रखे हैं ? तेरे थे किस दिन ? स्त्री-पुत्र तो उनके (अपने) आत्मा के हैं। तेरे में नहीं। आहाहा ! (यदि) तेरे हो तो भिन्न क्यों रहे ? और भिन्न होकर चले जाते हैं (अत: तेरे नहींः। आहाहा ! पंखी जैसे शाम को वृक्ष पर इकट्ठा होते हैं और सुबह होते अपनी-अपनी दिशा में उड़कर चले जाते हैं। किसी को किसी के साथ संबंध है नहीं। आहाहा ! वैसे मकान में - स्त्री और पुत्र और सब इकट्ठा होते (हैं)। (वे) कहीं से स्वयं के कारण से आये हैं और फिर समय पूरा होने पर स्वयं चले जायेंगे। स्वयं की गति होगी वहाँ चले जायेंगे। अररर...! ऐसा भारी कठिन (है)।

प्रश्न :- मनुष्य की पक्षी के साथ तुलना की ?

समाधान :- पक्षी क्या ? मनुष्य पशु जैसे हैं। पशु हैं ऐसा नहीं कहा ? १४ बोल में (समयसार के परिशिष्ट में) कहा है न भाई ? चौदह बोल में जीव को पशु कहा है। आहाहा ! जो अनित्य है उसे अनित्य नहीं माने और नित्य है उसे नित्य नहीं माने (तो मिथ्यात्व है)। यह (भी) नित्य-अनित्य की बात है। आहाहा ! क्षणिक है वह अनित्य है और त्रिकाल है वह नित्य है। एकान्त नित्य माने उसे मिथ्यात्व है और एकान्त अनित्य माने उसे भी मिथ्यात्व है। वह यहाँ सिद्ध करना है। जयसेनाचार्य की टीका में वह है न भाई ? अंदर १५वें पन्ने पर पहली पंक्ति है कि '**नित्यैकान्तक्षणिकैकान्तनिषेधार्थ**' - देखा ? १५वें पन्ने पर पहली पंक्ति है, भाई !

क्या कहा वह ? कि आत्मा त्रिकाली है वह नित्य है और उसका परिणमन है वह अनित्य है। अब दोनों को एकान्त मानता है कि नित्य ही है और अनित्य नहीं, और अनित्य ही है और नित्य नहीं (तो) एकान्त (है)। (अर्थात्) यहाँ एकान्त का निषेध करने के लिये दो बातें की हैं। आहाहा ! ऐसा मार्ग है !

श्रोता :- समझना कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कठिन पड़े बापू ! (अनादि से) समझा नहीं है तो क्या हो ? आत्मा एकान्त नित्य ही है ऐसा मानता है तो उसका परिणमन जो अनित्य है उसे नहीं माना और परिणमन अनित्य है उसे मानता है और नित्य त्रिकाल है उसे नहीं मानता (तो) दोनों एकान्त मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा ! है ? जयसेनाचार्य की टीका है दो टीका है - श्री अमृतचंद्राचार्य की और श्री जयसेनाचार्य की - दोनों संत दिगंबर संत हैं।

आत्मा शुभ-अशुभ-शुद्धरूप परिणमता है ऐसा (कोई) नहीं मानता यानी कि वह अनित्य है - क्षणिक है, ऐसा नहीं मानता तो मिथ्यादृष्टि है। वेदांत नित्य एकान्त मानते हैं। वे परिणमन को मानते नहीं और बौद्ध हैं वे परिणमन - क्षणिक को मानते हैं। वे नित्य को मानते नहीं। आहाहा ! (अत:) दोनों मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हैं, वह यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा ! ऐसी उत्कृष्ट बातें (हैं) बापू !

यह ऐसा उपदेश किस प्रकार का ? बापू ! यह सत्य वस्तु इस प्रकार है प्रभु ! आहाहा ! सत् का सत्य ही ऐसा है, द्रव्य भगवानआत्मा सत् है, वह नित्य है और पर्यायरूप अनित्य है, परिणमन स्वभाववाला है। नित्य (तथा) परिणामी है। उसे एकान्त नित्य मानता है तो मिथ्यात्व है और एकान्त परिणमन - पर्याय ही मानता है तो भी मिथ्यात्व है। आहाहा ! भारी कठिन काम है, भाई !

(अज्ञानी को ऐसा होता है कि) ऐसा उपदेश किस प्रकार का है ? पहले तो सरल था कि भक्ति करना, यात्रा करना और कुछ पांच-पचास लाख का दान देना। अब (पैसे)

धूल भी तेरा नहीं, सुन तो सही ! दान के पैसे कहाँ तेरे थे ? वे तो जड़ के हैं। वे मेरे हैं ऐसा मानकर देता है तो महामिथ्यात्व का पोषण करता है। आहाहा ! (पैसा) पर चीज है। (अत:) वह दे सकता ही नहीं न ! पैसा इसप्रकार जाता है वह पैसे की क्रिया से जाता है। उसकी पर्याय उससे होती है (किन्तु वह यदि ऐसा मानता है कि) मेरे से पैसा जाता (है तो) वह मूढ़ है, पागल है। यहाँ तो बात ऐसी है। बापू ! जगत से न्यारी जात है। आहाहा ! सारा जगत पागलपने से परिणमित हो रहा है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं (कि) एकान्त नित्य मानता है तो वह मिथ्यात्व है। एकान्त केवल परिणमन मानता है और नित्य नहीं मानता तो भी एकान्त (मिथ्यात्व) है। आहाहा ! है न ? इस तरफ १५वें पन्ने पर पहली पंक्ति है। यहाँ यह कहना है कि केवल आत्मा नित्य शुद्ध ही है (और) उसमें परिणमन नहीं (ऐसा मानना) वह भी अज्ञान है और परिणमन - केवल क्षणिक है, वही है, त्रिकाली द्रव्य-ध्रुव है वह नहीं (ऐसा मानता है वह भी) एकान्त (अज्ञान) है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। नये आदमी को तो ऐसा लगे कि यह किस प्रकार का उपदेश ? पागल जैसा लगे।

श्रोता :- आप हमें पागल कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा ! पागल को जैसे तत्त्व की कुछ ख़बर नहीं वैसे यह मिथ्यात्व के पागलपन में उसे (तत्त्व की) कुछ ख़बर नहीं। आहाहा !

वह चिद् विलास में आया न भाई ! कि नित्य है वह अनित्य से ज्ञात होता है। अनित्य पर्याय से ज्ञात होता है न ! ध्रुव-नित्य, नित्य से नहीं ज्ञात होता। (क्योंकि) नित्य तो ध्रुव है। नित्य-ध्रुव जो है वह अनित्य से ज्ञात होता है। अनित्य ऐसे जो परिणाम - परिणति (है) उससे ज्ञात होता है। आहाहा ! ध्रुव से ध्रुव जानने में नहीं आता। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) '**जब शुद्ध अरागभाव से परिणमित होता है तब...**' पहले राग की बात की। शुभ और अशुभ दोनों राग (दोष हैं)। (अब कहते हैं कि) जब अरागभावरूप होता है '**तब शुद्ध अरागपरिणत (रंग रहित) स्फटिक की भाँति,...**' (अर्थात्) स्फटिक बाद में जब लाल और कालेरंगरूप नहीं परिणमित होता और शुद्धरूप परिणमित होता है वैसे... आहाहा ! लालरंगरूप और कालेरंगरूप परिणमित होता है वह स्फटिक की पर्याय का धर्म है - उसकी योग्यता है। (वह पुष्प के) कारण नहीं। यदि पुष्प के कारण हो तो यह लकड़ी लीजिये, इसके नीचे रखो, कुछ नहीं होगा और स्फटिक के पास रखो तो (प्रतिबिंब) पडेगा। (क्योंकि) उसकी योग्यता है। स्फटिक को काले-लाल पुष्प का निमित्त है। किन्तु परिणमित होने की योग्यता (तो) उसकी - उपादान की है। उस पुष्प के कारण (स्फटिक) परिणमित हुआ नहीं। वैसे भगवानआत्मा शुभ-अशुभरूप परिणमित होता है, वह

निमित्त कर्म है इसलिये परिणमित होता है, ऐसा नहीं। आत्मा की अशुद्ध उपादान - पर्याय की योग्यता से परिणमित होता है। आहाहा! सब कठिन बातें (हैं) ! और (आत्मा) शुद्धरूप परिणमित होता है तब (भी) उसे कर्म के अभाव की या अन्य की अपेक्षा नहीं। आहाहा ! **वह शुद्धरूप परिणमित हुई पर्याय स्वतंत्र षट्कारक से परिणमित होती है।** तथापि वह परिणमन शुद्ध द्रव्य का है ऐसा अभेदनय से सिद्ध करना है।

आहाहा ! ऐसा उपदेश है। अन्जान आदमी को तो ऐसा लगे कि यह क्या है ? ऐसा अपना जैनधर्म होगा ? अरे प्रभु ! तुझे ऐसा होगा कि जैनधर्म में तो सब यात्रा और भक्ति और पूजा और ऐसी क्रिया होगी - वह जैनधर्म है। अरे भगवान! जैनधर्म का स्वरूप ही तुझे मालुम नहीं। जैनधर्म वस्तु का स्वभाव है। वह कोई पक्ष या पंथ नहीं। वस्तु जो शुद्ध चैतन्य (है) वह स्वयं पर्याय में शुद्धरूप परिणमित होती है वह जैनधर्म है। आहाहा ! और वस्तु जो शुद्ध है वह पर्याय में शुभाशुभरूप परिणमे वह अजैन धर्म है, वह जैनधर्म नहीं। आहाहा ! तथापि, पर्याय में अजैनपना भी होता (है) और पर्याय में जैनपना भी होता (है) (क्योंकि) परिणमन होता है इसलिये। आहाहा!

(यहाँ कहते हैं कि) **'जब वह शुद्ध अरागभाव से परिणमित होता है तब शुद्ध अरागपरिणत (रंग रहित) स्फटिक की भाँति, परिणामस्वभाव होने से...'** (अर्थात्) पलटने का स्वभाव होने से, भगवानआत्मा का और स्फटिक का भी पलटने का स्वभाव होने से **'शुद्ध होता है।'** - आत्मा (शुद्ध होता है)। आहाहा ! '(उस समय आत्मा स्वयं ही शुद्ध है)।' बाद में उसका अर्थ ऐसा नहीं कि शुद्धरूप परिणमित हुआ तब द्रव्य शुद्ध हुआ हो। (क्योंकि) द्रव्य तो त्रिकाली शुद्ध ही है, यह तो पर्याय की बात है न ! और यह अशुद्धरूप (पर्याय में) परिणमित हुआ है इसलिये द्रव्य (भी) अशुद्ध हुआ है, ऐसा नहीं। आहाहा ! अब ऐसी बातें (हैं) !

द्रव्य तो त्रिकाल शुद्ध (ही है)। (वह) निगोद में हो या सिद्ध में - द्रव्य तो एकरूप शुद्धरूप ही त्रिकाल है। अब उसकी पर्याय में भेद है। शुभ-अशुभरूप परिणमित होता है, तब रागरूप परिणमित होता है (और) शुद्धरूप परिणमित होता है तब अरागरूप परिणमित होता है। किन्तु द्रव्य तो जिस समय - रागरूप (पर्याय में) परिणमित होता है उस समय (भी) - शुद्ध ही है और अरागरूप परिणमित होता है उस समय भी द्रव्य तो जैसा और जितना शुद्ध है (वैसा और) उतना ही है। आहाहा ! अब ऐसी बात (है)। आहाहा ! लोगों को फिर संमत नहीं होता अत: यह एकान्त है, एकान्त (ऐसा कहते हैं)।

'इस प्रकार जीव का शुभत्व, अशुभत्व और शुद्धत्व सिद्ध हुआ।' आहाहा ! जीव का (अर्थात्) पर्याय का। (यहाँ) पर्याय उसकी (जीव की) है ऐसा सिद्ध करना है। और

सुबह में तो (समयसार में तो) द्रव्यस्वभाव और द्रव्यस्वभाव की (दृष्टि का कथन है)। (अत: जो) चैतन्यमूर्ति स्वभाव है उसका जिसे ज्ञान हुआ है उसे, उस पुण्य-पाप के परिणाम का कार्य (वह) पुद्‌गल का कार्य है। आहाहा ! (जब कि) यहाँ कहते हैं कि शुभाशुभ परिणमनरूप - पर्याय का कार्य उस-उस पर्याय का है, जीव की पर्याय का है। (किन्तु) पुद्‌गल का नहीं।

श्रोता :- सुबह में पुद्‌गल का कार्य और दोपहर में जीव का ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- किस अपेक्षा से कहा था ? (कि) दृष्टि का विषय (जो) द्रव्यस्वभाव (है) उसका जिसे ज्ञान हुआ (है) (उसके लिये पुद्‌गल का कार्य है)। आहाहा! जिसे द्रव्यस्वभाव का ज्ञान हुआ (है) उसे तो, परिणमन - ज्ञायक का परिणमन - शुद्ध ही होता है और जो अशुद्धता पर्याय में होती है वह द्रव्यदृष्टि के विषय में नहीं आती। अत: उस पर्याय की अशुद्धता का कार्य (पुद्‌गल का है) और कर्ता पुद्‌गल है, ऐसा कहा (है)। आहाहा ! ऐसा सुने बिना, समझे बिना मात्र शास्त्र पढ़ता है तो कुछ पकड़ सकता नहीं और कुछ का कुछ ही (समझ लेगा)। ऐसी बात है।

भावार्थ :- **`आत्मा सर्वथा कूटस्थ नहीं है।'** देखा ? इसमें जयसेनाचार्य का थोड़ा लिया है न ? `किन्तु स्थिर रहकर परिणमन करना उसका स्वभाव है।' सर्वथा कूटस्थ नाम परिणमता ही नहीं - जैसे ऊपर शिखर होती है और हिलती ही नहीं वैसे आत्मा केवल ध्रुव है और वह परिणमता ही नहीं - (ऐसा नहीं)। कूटस्थ = कूट+स्थ = (शिखर की तरह स्थिर)। शिखर की तरह (केवल) स्थिर होवे ऐसा आत्मा अकेला कूटस्थ, ध्रुव ही है, ऐसा नहीं। (किन्तु) स्थिर रहकर परिणमित होना उसका स्वभाव है। आहाहा ! स्थिर रहकर परिणमित होना, रहकर होना - नित्य रहकर भी पर्याय में होना - ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा !

किन्तु ज्ञान होता है वह पर्याय से ज्ञान होता है न ! द्रव्य से द्रव्य नहीं ज्ञात होता। आहाहा ! ज्ञान की पर्याय जब ऐसे (द्रव्य प्रति) ढलती है तब वह पर्याय स्वयं ही द्रव्य को जानती है। आहाहा ! और वह पर्याय (राग) के प्रति ढलती है तब पर्याय स्वयं राग को जानती है। - यह पर्यायदृष्टि हुई (जबकि) पहली द्रव्यदृष्टि (है)। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) **`आत्मा सर्वथा कूटस्थ नहीं है किन्तु स्थिर रहकर परिणमन करना उसका स्वभाव है, इसलिये वह जैसे जैसे भावों से...'** जैसे जैसे भावों (यानी कि) शुभ या अशुभ या शुद्धभाव से। **`जैसे जैसे भावों से परिणमित होता है वैसा वैसा ही वह स्वयं हो जाता है...'** (किन्तु) पर्याय में हाँ ! इसमें से अज्ञानी ऐसा (अर्थ) निकालता है कि द्रव्य भी ऐसा हो जाता है। अरे बापू ! वस्तु है वह तो एकरूप त्रिकाल शुद्ध

ही है। (यहाँ तो ऐसा कहना है कि) पर्याय में जिस प्रकार परिणमता है उसरूप - वह पर्याय होती है। है (अंदर) ? कि **`वैसा वैसा ही वह स्वयं हो जाता है।'** `स्वयं हो जाता है' अर्थात् ? पर्याय में (वैसा हो जाता है)। (तथापि) द्रव्य तो जो - शुद्ध त्रिकाल है - वही है। आहाहा !

`जैसे स्फटिकमणि स्वभाव से निर्मल है तथापि...'** स्फटिकमणि का स्वभाव निर्मल होने पर भी, **`जब वह लाल या काले फूल के संयोगनिमित्त से परिणमित होता है...' संयोगनिमित्त से परिणमित होता है (तो) **स्वयं**। (फूल) तो निमित्त है। उपादान स्वयं का (स्फटिक का) है। **`तब लाल या काला स्वयं ही होता है।'** (अर्थात्) स्फटिक स्वयं पर्याय में काला या लाल स्वयं की योग्यता के कारण होता है। वह फूल के कारण नहीं। आहाहा !

लो, फूल को निकाल दो। देखिये ? (बाद में) होता है ? किन्तु निकाले कौन ? और रखे कौन ? सुन तो सही ! आहाहा ! जब उसकी काली या लालरूप पर्याय होनेवाली है तब फूल होता है। किन्तु उसकी वजह से - उसके कारण - यहाँ (स्फटिक में) परिणमन होता (है), ऐसा नहीं। समझ में आया ? **`इसीप्रकार आत्मा स्वभाव से शुद्ध-बुद्ध-एकस्वरूपी होने पर भी...'** शुद्धबुद्ध एक स्वरुपी होने पर भी... **`व्यवहार से'** (अर्थात्) पर्याय में। **`जब गृहस्थदशा में सम्यक्त्वपूर्वक दानपूजादि शुभ अनुष्ठानरूप...'** वह जयसेनाचार्य की टीका का है। (कहते हैं कि) जब गृहस्थ अवस्था में समकितपूर्वक - आत्मज्ञान और अनुभवपूर्वक - दानपूजादि शुभ अनुष्ठानरूप। **`दानपूजादि'** कहा न ! वंदना, वैयावृत्त आदि शुभ अनुष्ठानरूप शुभोपयोग में। गृहस्थाश्रम में समकिती भी दान-पूजा के काल में उस पर्यायरूप - शुभभावरूप - (शुभ अनुष्ठानरूप शुभोपयोग में) परिणमित होती है। (और) **`मुनिदशा में मूलगुण...'** मूलगुण अर्थात् २८ (गुण)। पंच महाव्रत, पंच समिति, (तीन) गुप्ति आदि शुभभाव हैं। आहाहा ! **`मूलगुण तथा उत्तरगुण इत्यादि शुभ अनुष्ठानरूप...'** २८ मूलगुण हैं वे भी शुभराग हैं। मूल गुण अर्थात् यहाँ पवित्र गुण ऐसा नहीं। राग की मंदता के जितने २८ - प्रकार - मुनि के हैं वे सब शुभ अनुष्ठानरूप हैं और मुनि उन **`शुभ अनुष्ठानरूप शुभोपयोग में परिणमित होता है तब स्वयं ही शुभ होता है।'** आहाहा !

`जब मिथ्यात्वादि पाँच प्रत्ययरूप अशुभोपयोग में परिणमित होता है...'** जयसेनाचार्य की टीका की यह व्याख्या है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग - उन पाँच आस्रवरूप अशुभोपयोग में परिणमित होता है। आहाहा ! **`तब स्वयं ही अशुभ होता है और जैसे स्फटिकमणि अपने स्वाभाविक निर्मल रंग में परिणमित होता है तब स्वयं ही शुद्ध होता है, उसीप्रकार आत्मा भी जब निश्चय रत्नत्रयात्मक शुद्धोपयोग में परिणमित

होता है' आहाहा ! निश्चय (अर्थात्) सत्य। रत्नत्रय (अर्थात्) दर्शन, ज्ञान, चारित्र। (आत्मक अर्थात्) उस स्वरूप। वह (शुद्धोपयोग में) परिणमित होता है वह शुद्धोपयोग है। '**तब स्वयं ही शुद्ध होता है।**' शुद्ध पर्याय की परिणति(रूप) स्वयं होता है। विशेष कहेंगे।

a a a

सम्यग्दृष्टि, निर्विकल्प-अनुभवमें नहीं रह सकते इसलिए उन्हें भी शास्त्राभ्यासके भाव उठते हैं। ऐसे शुभरागको, निर्विकल्पअनुभवकी अपेक्षा हेय कहा है। निर्विकल्प-अनुभवमें रहना तो सर्वोत्तम है। परन्तु, छद्मस्थका उपयोग नीचली-दशामें आत्मस्वरूपमें अधिक समय तक स्थिर नहीं रह पाता, अतः ज्ञानकी विशेष निर्मलता हेतु शास्त्राभ्यासमें बुद्धि लगान योग्य है। निश्चयाभ्यासी तो उसका सर्वथा निषेध करता है; परंतु अरे भाई ! तुझे अन्य राग तो आते हैं तो फिर शास्त्राभ्यास में ही उपयोग लगाना याग्य है । उसमें जो राग है, सो तो दोष है; परन्तु तीव्र (अप्रशस्त) रागकी अपेक्षा शास्त्राभ्यासमें संलग्न रहना योग्य है। सम्यग्दर्शन होने पर कोई पूर्ण वीतरागता नहीं हो जाती। सम्यग्दर्शन होनेके बाद भी राग तो आता है। हाँ, जो निर्विकल्प-आनन्दमें ज्ञान-पर्याय एकाग्र हो जाए तो श्रेयस्कर है; परन्तु जब निर्विकल्प-आनन्दमें न रह सके, तब स्वाध्याय, पूजा, देव-गुरुकी भक्ति आदि प्रशस्त राग-कार्योंको छोड़कर, विकथा आदि निंदनीय-प्रवृत्तियोंमें लगनेसे तो महान् अनर्थ होता है। (परमागमसार - ९८३)

दि. ११-१-१९७९ - प्रवचन नं. - ५

(प्रवचनसार) नौवीं गाथा के (भावार्थ का) आखिर का भाग है। नौवीं गाथा में ऐसा कहा है न ! कि जीव जब शुभ परिणामरूप परिणमित होता है तब (उस) पर्याय में वह तन्मय है। (और) अशुभरूप परिणमित होता है तब उस पर्याय में (भी) तन्मय है और शुद्धरूप परिणमित होता है तो उसमें (भी वह) तन्मय है - तीनों उनके परिणाम हैं, ऐसा कहा न ?

अब यहाँ जयसेनाचार्य की टीकामें से (कहते हैं कि) **`सिद्धांत ग्रंथों में जीव के असंख्य परिणामों को...'** जीव के असंख्य परिणाम हैं। किन्तु **`मध्यम वर्णन से'** उत्कृष्ट वर्णन से तो असंख्य परिणाम हैं - उसके असंख्य भेद पड़ते हैं। किन्तु मध्यम भेद से **`चौदह गुणस्थानरूप कहा गया है।'** (अर्थात्) चौदह गुणस्थान मध्यम परिणाम से (भेद से) कहने में आते हैं। आहाहा ! **`उन गुणस्थानों को संक्षेप से `उपयोग' रूप वर्णन करते हुए, प्रथम तीन गुणस्थानों में तारतम्यपूर्वक (घटता हुआ) अशुभोपयोग,...'** अशुभ उपयोग होता है। मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र - उन तीन गुणस्थान में अशुभ उपयोग (है)। (यद्यपि शुभ उपयोग भी होता है)। (किन्तु) मुख्यतया अशुभ उपयोग होता है। घटता हुआ यानी कि पहले से (दूसरे गुणस्थान में) और दूसरे से तीसरे में अशुभ उयपोग घटता है। तथापि है अशुभ (उपयोग)। मिथ्यादृष्टि को शुभभाव आता है किन्तु उसे यहाँ गौण करके मुख्यतया उसे अशुभ उपयोग ही है ऐसा कहने में आया है।

`चौथे से छट्ठे गुणस्थान तक'** (यानी कि) समकिती तथा पंचम गुणस्थानवाले को और छट्ठे (गुणस्थान पर मुनि को) **`तारतम्यपूर्वक (बढ़ता हुआ) शुभोपयोग...' पहले (१ से ३ गुणस्थान तक) (अशुभ) घटता हुआ था (और अब) चौथे से छट्ठे (गुणस्थान तक) बढ़ता हुआ शुभोपयोग (है)। उसे शुभोपयोग कहने में आया है। चौथे और पाँचवें (गुणस्थान में) शुद्ध परिणति है, किन्तु उपयोग (मुख्यतया तो शुभ है)। किन्तु शुद्ध उपयोग की गौणता है, चौथे गुणस्थान में भी किसी समय शुद्ध उपयोग का परिणमन होता है। (और) पांचवें (गुणस्थान में) भी (शुद्ध उपयोग) होता है और छट्ठे (गुणस्थान से) तुरंत ही सातवें में

जाता है अत: (शुद्ध उपयोग) होता है। छट्ठे (गुणस्थान में शुद्ध उपयोग) होता नहीं। परिणति तो तीनों (४,५,६) गुणस्थान में शुद्ध होती है। किन्तु उपयोगरूप चौथे, पांचवें और छट्ठे (गुणस्थान में) शुभ उपयोग की प्रधानता से, शुभोपयोगी कहने में आया है। समझ में आया ? अर्थात् उन गुणस्थानों में शुभ उपयोग ही है ऐसा नहीं। शुद्ध परिणति भी है और किसी समय शुद्ध उपयोग भी होता है। लेकिन उन्हें शुभ उपयोग की मुख्यता के कारण शुभ गिनने में आया है।

`सातवें से बारहवें गुणस्थान तक तारतम्यपूर्वक शुद्धोयोग...'** (अर्थात्) सातवें (गुणस्थान से) मुख्यतया शुद्ध उपयोग गिनने में आया है। वह **`बारहवें गुणस्थान तक तारतम्यपूर्वक शुद्धोपयोग और अन्तिम दो गुणस्थानों में...' (अर्थात्) तेरह और चौदहवें (गुणस्थानों में) **`शुद्धोपयोग का फल कहा गया है, - ऐसा वर्णन कथंचित् हो सकता है।'** अपेक्षा से (ऐसा वर्णन हो सकता है)। आहाहा ! बाक़ी तो ४५९वें पन्ने पर है। ४५९ (पन्ना) है न ! संस्कृत में - जयसेनाचार्य की टीका में - (ऐसा) है कि **`शुभोपयोगिनामपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावना दृश्यते'** - संस्कृत है, किन्तु भाषा सरल है। है ? ४५९ पन्ना और जयसेनाचार्य की टीका। यह तो (चलते विषय के) साथ सुमेल (है)। कहते हैं कि `क्वापि काले' (अर्थात्) शुभ उपयोग भाववाले को भी किसी काल में **`शुभोपयोगभावना दृश्यते'** - शुद्ध उपयोग होता है। है ? और **`शुद्धोपयोगिनामपि क्वापि काले शुभोपयोगभावना दृश्यते'** - शुद्ध उपयोगी को भी किसी काल में शुभभाव भी होता है। **`श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले'** - पाँचवें गुणस्थानवाला श्रावक जब सामायिक में बैठा हो (तब) उसे (सही) सामायिक होती (है)। आहाहा ! **`सामायिकादिकाले शुद्धभावना दृश्यते'** इसका अर्थ अभी-कई विपरीत करते हैं कि शुद्धभावना यानी कि उसे विकल्प में शुद्धभावना है, किन्तु (ऐसा नहीं)। यहाँ पर शुद्धभावना का (अर्थ) उपयोग ही है। किसी काल में उसे (भी) शुद्धोपयोग होता है। जगत (के लोगों) को अपनी कल्पना से अर्थ करना और समझना ऐसी वस्तुस्थिति नहीं।

किसी समय सामायिक में पंचम गुणस्थानवाला ध्यान में जम जाता है तब उसे शुद्ध उपयोग भी होता है। किन्तु मुख्यतया उसे शुभ उपयोग गिनकर (शुभोपयोगी कहने में आता है)। शुद्ध परिणति भले ही (टिकी) है, किन्तु शुद्धोपयोग गौणकर के मुख्यतया शुभयोग का व्यापार कहा है।

(आगे कहते हैं कि) **`तेषां कथं विशेषो भेदो ज्ञायत इति। परिहारमाह - युक्तमुक्तं भवता, परं किंतु ये प्रचुरेण शुभोपयोगेन वर्तन्ते'** चौथे, पाँचवें, छट्ठे (गुणस्थान में) **`प्रचुरेण'** - अधिक शुभोपयोग वर्तता (है)। **`ते यद्यपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति तथापि शुभोपयोगिन एव भण्यन्ते'** सूक्ष्म है भाई ! चौथे, पाँचवें और छट्ठे (गुणस्थान में) जो शुभ

उपयोग कहा है वह मुख्यतया (है) बाक़ी तो उसे भी **`शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति तथापि शुभोपयोगिन एव भण्यन्ते।'** अंदर शुद्ध उपयोग चौथे-पाँचवें (गुणस्थान में) भी होता है। किन्तु उसे शुभ (उपयोग की) मुख्यता से शुभ उपयोगी कहने में आया है। **`येऽपि शुद्धोपयोगिनस्ते यद्यपि क्वापि काले'** अब सातवें (गुणस्थान से) शुद्ध उपयोगी कहा (है)। (तो उसे) **`शुभोपयोगेन वर्तन्ते'** वह वहाँ से हटकर शुभ (उपयोग में) आता है। **`तथापि शुद्धोपयोगिन एव। कस्मात्। बहुपदस्य प्रधानत्वादाम्रवननिम्बनवदिति।'** अर्थात् क्या कहते हैं ? कि `यह आम का वन है' ऐसा (कहने में आता है)। उसमें दूसरे वृक्ष (तो) होते (हैं)। तथापि, आम अधिक होने से आम का वन कहने में आता है। (वैसे) नीम अधिक होने से नीम का वन कहने में आता है। दूसरे वृक्ष (उसमें) होते (हैं)। किन्तु (जो वृक्ष) बहुत - अधिक हो उसे गिनकर उसका (वन कहने में आता है)। उस प्रकार शुभोपयोगी को आम्रवन की भाँति, किसी समय शुद्ध उपयोग होता है तथापि शुभ उपयोग की मुख्यता गिनकर ऐसा कहने में आया है (कि वह शुभोपयोगी है), और शुद्धोपयोगी भी, वह नीचे उतरता है (सातवें गुणस्थानमें से छट्ठे गुणस्थान में आता है) अत: उसे शुभ (उपयोग) तो आता है। सातवें (गुणस्थान में ही) - शुद्ध उपयोग में ही - रहता है ऐसा नहीं। अत:, उसे शुभ उपयोग (तो) आता है। तथापि शुद्धोपयोगी को किसी समय शुभ (उपयोग) आता है उस अपेक्षा से, उसे शुद्ध उपयोगी कहने में आता है। ऐसा सब (है)। समझ में आया ? इसमें यह विस्तार है। और बाक़ी तो समयसार की ३२०वीं गाथा (जयसेनाचार्य की २४८ गाथा की टीका) है न ! वह बात यहाँ पर फिर ३४१वें पन्ने पर कही है। ३४१वें पन्ने पर (१८१ गाथा जयसेनाचार्य की टीका) है।

क्या कहते हैं ? कि जो शुभ-अशुभ रहित शुद्ध उपयोग है (अर्थात्) शुद्ध चैतन्य द्रव्य का जो शुद्ध उपयोग है उसमें द्रव्यार्थिकनय से भेद कहे हैं, किन्तु पर्याय से देखने पर तो उस शुद्ध उपयोग का कर्ता द्रव्य नहीं। अत: वह भिन्न है। वह क्या कहा ? कि मोक्षमार्ग के परिणाम जो शुद्ध उपयोग है (उसे) वह पारिणामिकभाव जो त्रिकाल है वह करता नहीं। (क्योंकि) वह तो त्रिकाल है, ध्रुव है, (अत:) वह मोक्ष के या मोक्ष के कारणरूप परिणाम को वह पारिणामिकभाव करता नहीं। (किन्तु) पर्याय करती है। अत:, शुद्ध उपयोग को त्रिकाली पारिणामिकभाव से भिन्न भी कहने में आता है। ऐसी बात है ! सूक्ष्म बहुत है, बापू ! ऐसा मार्ग है ! वैसे वहाँ समयसार की ३२०वीं गाथा में (जयसेनाचार्य की टीका) है और यहाँ ३४१वें पन्ने पर है। संस्कृत में (जयसेनाचार्य की टीका) है।

क्या कहा ? कि यहाँ पर जो पहले गुणस्थान से तीसरे (गुणस्थान) तक अशुभोपयोग कहा है वह मुख्यता की अपेक्षा से कहा (है)। (बाक़ी) गौणरूप से उसे शुभ उपयोग भी

कहने में आता है। अब चौथे (गुणस्थान से) छट्ठा (गुणस्थान) तक शुभ उपयोग कहा (है) वह मुख्यता से (कहा है)। बाक़ी उसे शुद्ध परिणति (भी) होती है, (निरंतर) उपयोग नहीं। शुद्ध उपयोग तो किसी समय होता है। अत: शुभ उपयोग की प्रधानता से चौथे, पाँचवें और छट्ठे (गुणस्थान में) शुभ उपयोग है, ऐसा कहा (है) और सातवें (गुणस्थान से) वह शुद्ध उपयोग है ऐसा कहा (है)। वह सातवें गुणस्थानवाला नीचे (छट्ठे गुणस्थान में) आता है, (तथापि) उसे शुद्धउपयोग की मुख्यता गिनने में आती है। आहाहा ! ऐसा सब कहाँ समझने जायें ?

यहाँ तो ऐसा कहा है कि पंचम गुणस्थान में - जिसको आत्मा का अनुभव है उसे - भी किसी समय शुद्ध उपयोग (आता है)। ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय - तीनों का भेद भूलकर उपयोग (अंदर) जम जाता है - किन्तु किसी समय। अत: उसे शुभ उपयोग की मुख्यता से, जिस वन में आम अधिक हो और दूसरे वृक्ष भी हो, तथापि उसे आम गिनकर आम्रवन कहने में आता है वैसे, (शुभोपयोगी कहने में आता है)। वैसे शुभोपयोगी को किसी समय शुद्ध उपयोग भी होता (है)। तथापि प्रधानता से शुभोपयोग कहने में आता है। आहाहा ! अब ऐसी बातें हैं ! और शुद्धोपयोगी को भी नीचे उतरता है (छट्ठे गुणस्थान में आता है) तब (शुभ उपयोग) किसी समय आता है। (तथापि प्रधानता से शुद्धोपयोग कहने में आता है)। और अंत में चरणानुयोग में तो शुभभाव होने पर भी शुद्ध उपयोग की भावना है - लक्ष वहाँ है - तो, उसे शुद्ध उपयोगी कहा है। ऐसे प्रकार हैं ! आहाहा ! वहाँ (गाथा २७१-२७५ में) कहा है न ? कि शुभभाव होने पर भी उसे शुद्ध उपयोग की अंदर भावना है, (शुद्ध उपयोग) करने का भाव है, अत: उसे शुद्ध उपयोग कह दिया है। आहाहा ! धीरज से समझने जैसी बात है, बापू ! वीतराग मार्ग बहुत सूक्ष्म है ! आहाहा ! उसे अच्छी तरह से जानना - समझना पड़ेगा, आहाहा !

(कहते हैं कि) वह शुद्ध उपयोग यानी कि मोक्ष का मार्ग... आहाहा ! उसका फल मोक्ष है न ! शुद्ध उपयोग का (फल) आगे (गाथा-११ में) कहेंगे न ? पहले (गाथा-६ में) कह गये कि शुद्ध उपयोग का फल मोक्ष है, शुभ का फल स्वर्गादि है और अशुभ का फल नरक, तिर्यंचादि नीचगति है। किन्तु (अब) कहते हैं कि वह शुद्ध उपयोग और उसका फल जो केवलज्ञान है... ऐसा कहा न इसमें ? कि **`शुद्धोपयोग और अन्तिम दो गुणस्थानों में शुद्धोपयोग का फल...'** किन्तु वह मोक्ष की पर्याय और मोक्ष का मार्ग (अर्थात्) वह शुद्ध उपयोग और शुद्धोपयोग का फल, पारिणामिकभाव से भिन्न है। त्रिकाल जो पारिणामिकभाव है वह मोक्ष के परिणाम को करता नहीं (तथा) मोक्ष के मार्ग को भी करता नहीं क्योंकि वह परिणति है न ! पर्याय है, परिणमन है। (जब कि) ध्रुव है

अथ परिणामं वस्तुस्वभावत्वेन निश्चिनोति -

णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो।
दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो अत्थित्तणिव्वत्तो।।१०।।

नास्ति विना परिणाममर्थोऽर्थं विनेह परिणामः।
द्रव्यगुणपर्ययस्थोऽर्थोऽस्तित्वनिर्वृत्तः।।१०।।

न खलु परिणाममन्तरेण वस्तु सत्तामालम्बते। वस्तुनो द्रव्यादिभिः परिणामात् पृथगुपलम्भाभावान्निःपरिणामस्य खरश्रृङ्गकल्पत्वाद् दृश्यमानगोरसादिपरिणामविरोधाच्च। अन्तरेण वस्तु परिणामोऽपि न सत्तामालम्बते। स्वाश्रयभूतस्य वस्तुनोऽभावे निराश्रयस्य परिणामस्य शून्यत्वप्रसङ्गात्। वस्तु पुनरूर्द्धवतासामान्यलक्षणे द्रव्ये सहभाविविशेषलक्षणेषु गुणेषु क्रमभाविविशेषलक्षणेशु पर्यायेषु व्यवस्थितमुत्पादव्ययध्रौव्यमयास्तित्वेन निर्वर्तितनिर्वृत्तिमच्च। अतः परिणामस्वभावमेव।।१०।।

अथ नित्यैकान्तक्षणिकैकान्तनिषेधार्थं परिणामपरिणामिनोः परस्परं कथंचिदभेदं दर्शयति - **णत्थि विणा परिणामं अत्थो** मुक्तजीवे तावत्कथ्यते, सिद्धपर्यायरूपशुद्धपरिणामं विना शुद्धजीवपदार्थो नास्ति। कस्मात्। संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि प्रदेशभेदाभावात्। **अत्थं विणेह परिणामो** मुक्तात्मपदार्थं विना इह जगति शुद्धात्मोपलम्भलक्षणः सिद्धपर्यायरूपः शुद्धपरिणामो नास्ति। कस्मात्। संज्ञादिभेदेऽपि प्रदेशभेदाभावात् **दव्वगुणपज्जयत्थो** आत्मस्वरूपं द्रव्यं तत्रैव केवलज्ञानादयो गुणाः सिद्धरूपः पर्यायश्च, इत्युक्तलक्षणेषु द्रव्यगुणपर्यायेषु तिष्ठतीति द्रव्यगुणपर्यायस्थो भवति। स कः कर्ता। **अत्थो** परमात्मपदार्थः, सुवर्णद्रव्यपीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायस्थसुवर्णपदार्थवत्। पुनश्च किंरूपः। **अत्थित्तणिव्वत्तो** शुद्धद्रव्यगुणपर्यायाधारभूतं यच्छुद्धास्तित्वं तेन निर्वृत्तोऽस्तित्वनिर्वृत्तः, सुवर्णद्रव्यगुणपर्यायास्तित्वनिर्वृत्तसुवर्णपदार्थवदिति। अयमत्र तात्पर्यार्थः। यथा - मुक्तजीवे द्रव्यगुणपर्यायत्रयं परस्पराविनाभूतं दर्शितं तथा संसारिजीवेऽपि मतिज्ञानादिविभावगुणेषु नरनारकादिविभावपर्यायेषु नयविभागेन यथासंभवं विज्ञेयम्, तथैव पुद्गलादिष्वपि। एवं शुभाशुभशुद्धपरिणामव्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथाद्वयं गतम्।।१०।

वह परिणमन को करता नहीं। ऐसी सूक्ष्म बातें हैं ! एक ही (बात) पकड़कर बैठे और किस अपेक्षा से कहा है (वह नहीं समझे तो नहीं चलेगा)। अतः, वहाँ ३४१वें पन्ने पर कहा कि मोक्ष का मार्ग द्रव्य से कथंचित् भिन्न है। (क्योंकि) वह पर्याय है इसलिये। आहाहा ! इसमें सब थोड़ा-थोड़ा कहा है।

'अब परिणाम वस्तु का स्वभाव है यह निश्चय करते हैं' क्या कहते हैं ? (कि) परिणाम है वह वस्तु का स्वभाव है (अर्थात्) परिणति है - वस्तु की परिणति है वह - उसका स्वभाव है। उस परिणति से रहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्य से रहित परिणति नहीं होती। कोई ऐसा कहे कि परिणति - परिणाम है ही नहीं और मात्र द्रव्य (ही) है तो वह बात एकान्त है। आहाहा ! पर्याय में परिणति - अवस्था होती है। (तो) वह अवस्था

अब परिणाम वस्तुका स्वभाव है यह निश्चय करते हैं :-

गाथा-१०

परिणाम विण न पदार्थ, ने न पदार्थ विण परिणाम छे।
गुण-द्रव्य-पर्याय स्थित ने अस्तित्व सिद्ध पदार्थ छे।।१०।।

अन्वयार्थ :- [इह] इस लोकमें **[परिणामं विना]** परिणामके बिना **[अर्थः नास्ति]** पदार्थ नहीं है, **[अर्थ विना]** पदार्थके बिना **[परिणामः]** परिणाम नहीं है; **[अर्थः]** पदार्थ **[द्रव्यगुणपर्ययस्थः]** द्रव्य-गुण-पर्यायमें रहनेवाला और **[अस्तित्वनिवृत्तः]** (उत्पादव्ययध्रौव्यमय) अस्तित्वसे बना हुआ है।

टीका :- परिणामके बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती, क्योंकि वस्तु द्रव्यादिके द्वारा (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे) परिणामसे भिन्न अनुभवमें (देखनेमें) नहीं आती, क्योंकि (१) परिणाम रहित वस्तु गधेके सींगके समान है, (२) तथा उसका, दिखाई गोरस इत्यादि (दूध, दही वगैरह)के परिणामोंके साथ विरोध आता है। (जैसे-परिणामके बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती उसीप्रकार) वस्तुके बिना परिणाम भी अस्तित्वको धारण नहीं करता, क्योंकि स्वाश्रयभूत वस्तुके अभावमें (अपने आश्रयरूप जो वस्तु है वह न हो तो) निराश्रय परिणामको शून्यताका प्रसंग आता है।

है, वह पर्याय है (और) वह प्रगट होती है। (अब) उस पर्याय से रहित (ही परिणामी है) (अर्थात्) परिणामी का परिणमन ही नहीं होता (तो ऐसा मानना) वह तो झूठ है **और परिणामी परिणाम में आता है वह भी झूठ है।** आहाहा! तत्त्वज्ञान का विषय भाई ! बहुत सूक्ष्म, बापू ! समझ में आया ?

कोई ऐसा कहे कि वर्तमान पर्याय अंदर में (द्रव्य में) है तो वह एकान्त मिथ्यात्व है। क्योंकि वह तो परिणति रहित द्रव्य हुआ। (किन्तु) परिणति रहित द्रव्य होता नहीं। परिणाम - प्रगट परिणाम -परिणति रहित द्रव्य होता नहीं। आहाहा ! सूक्ष्म बहुत, भाई ! वह यहाँ कहते हैं। देखिये !

टीका :- **`परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती,...'** कोई ऐसा कहे कि प्रगट पर्याय है ही नहीं और सभी पर्यायें अंदर में समा गई हैं तो वह एकान्त मिथ्यात्व है - वह यहाँ सिद्ध करते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? **`परिणाम के बिना वस्तु**

और वस्तु तो ऊर्ध्वतासामान्यस्वरूप द्रव्यमें, सहभावी विशेषस्वरूप (साथ ही साथ रहनेवाले विशेष-भेद जिनका स्वरूप है ऐसे) गुणोंमें तथा क्रमभावी विशेषस्वरूप पर्यायोंमें रही हुई और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय अस्तित्वसे बनी हुई है; इसलिये वस्तु परिणाम-स्वभाववाली ही है।

भावार्थ :- जहाँ जहाँ वस्तु दिखाई देती है वहाँ वहाँ परिणाम दिखाई देता है। जैसे-गोरस अपने दूध, दही, घी, छाछ इत्यादि परिणामोंसे युक्त ही दिखाई देता है। जहाँ परिणाम नहीं होता वहाँ वस्तु भी नहीं होती। जैसे कालापन, स्निग्धता इत्यादि परिणाम नहीं हैं तो गधेके सींगरूप वस्तु भी नहीं है। इससे सिद्ध हुआ कि वस्तु परिणाम रहित कदापि नहीं होती। जैसे वस्तु परिणामके बिना नहीं होती उसीप्रकार परिणाम भी वस्तुके बिना नहीं होते, क्योंकि वस्तुरूप आश्रयके बिना परिणाम किसके आश्रयसे रहेंगे ? गोरसरूप आश्रयके बिना दूध, दही इत्यादि परिणाम किसके आधारसे होंगे ?

और फिर वस्तु तो द्रव्य-गुण-पर्यायमय है। उसमें त्रैकालिक ऊर्ध्व प्रवाह-सामान्य द्रव्य है, और साथ ही साथ रहनेवाले भेद वे गुण हैं, तथा क्रमशः होनेवाले भेद वे पर्यायें हैं। ऐसे द्रव्य, गुण और पर्यायकी एकतासे रहित कोई वस्तु नहीं होती। दूसरी रीतिसे कहा जाय तो, वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है अर्थात् वह उत्पन्न होती है, नष्ट होती है और स्थिर रहती है। इसप्रकार वह द्रव्य-गुण-पर्यायमय और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय होनेसे उसमें क्रिया (परिणमन) होती ही रहती है। इसलिये परिणाम वस्तुका स्वभाव ही है।।१०।

अस्तित्व धारण नहीं करती,...' (अर्थात्) पलटती दशा से रहित वस्तु अस्तित्व धारण करती नहीं। (यानी कि) परिणमन ही नहीं है और मात्र ध्रुव ही है ऐसा नहीं। आहाहा ! वर्तमान प्रगट जो परिणति है वह द्रव्य में समा गई नहीं। आहाहा ! (क्योंकि) यदि वह समा जाये तो परिणाम - परिणति रहित द्रव्य हो जाये। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात बहुत, बापू !

`**परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती,...**' (यानी कि) किसी भी काल में उसमें परिणाम प्रगट नहीं होता और सभी परिणाम द्रव्य में समा गये हो ऐसा वस्तु का स्वभाव-स्वरूप नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? परिणति - पर्याय नहीं होती और मात्र द्रव्य ही होता है ऐसा तीन काल में बनता नहीं क्योंकि परिणति है वह पारिणामिकतत्त्व को जाननेवाली है। (जो) परिणामी पदार्थ है वह परिणामी पदार्थ को जानता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? जो परिणति-पर्याय-अवस्था-दशा है (वह दशा जानती है)। (इसलिए) वह दशा ही नहीं हो और मात्र द्रव्य ही होता है वह एकान्त मिथ्यात्व है। वह यहाँ सिद्ध

करते हैं। आहाहा !

`परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती,' (अर्थात्) परिणति की दशा रहित वस्तु का अस्तित्व रहता नहीं। आहाहा ! वास्तविक तत्त्व का ज्ञान न मिले और (बाद में) दुनिया अत्यंत दुःखी होती है। परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्व धारण करती नहीं। (यानी कि) किसी भी काल में द्रव्य के परिणाम प्रगट नहीं हो और मात्र द्रव्य ही हो ऐसा तीनकाल में होता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? क्या कहा ? **`परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती,...'** एक तरफ ऐसा कहा कि (जो) शुद्ध उपयोग परिणाम है वह भी पारिणामिक द्रव्य से भिन्न है। (और यहाँ कहते हैं कि परिणाम के बिना वस्तु का अस्तित्व नहीं)। (किन्तु) वह किस अपेक्षा से है ? आहाहा ! यहाँ तो परिणाम और पारिणामिकभाव सिद्ध करना है और यहाँ पर से भिन्न (है ऐसा सिद्ध करना है)।

किसी भी समय में उसका (-परिणामी का) परिणाम प्रगट नहीं होता और मात्र परिणामी ही है ऐसा तीनकाल में बनता नहीं। बात समझ में आयी ? आहाहा ! एक समय की पर्याय है और वह किसी भी काल में एक समय की प्रगट पर्याय होती ही है। यदि पर्याय नहीं होती तो, परिणाम के बिना मात्र द्रव्य (भी) नहीं होता। द्रव्य अपरिणामी है और पर्याय परिणामी है। यदि परिणाम नहीं होता तो, अकेला द्रव्य (भी) नहीं होता और परिणाम - परिणति नहीं हो तो द्रव्य को जाननेवाली पर्याय (भी) नहीं रहती। समझ में आया ?

प्रश्न :- लोजीक भी कठिन है।

समाधान :- लोजीक तो कठिन नहीं बापू ! है तो (सरल)। किन्तु अब लोगों को परिचय नहीं (और) अंतर का अभ्यास नहीं। (अत: कठिन लगता है)। क्या हो सकता है, भाई ? यह तो वस्तुस्थिति (है)। भगवान ने - तीनलोक के नाथ सर्वज्ञदेव ने - जो देखा, जाना वैसा कहा कि इसप्रकार वस्तु का स्वरूप है। आहाहा ! यह प्रवचनसार है न ? (तो) प्रवचन अर्थात् ? कि प्र+वचन=दिव्यध्वनि, भगवान तीनलोक के नाथ की दिव्यध्वनि, उसका सार इसमें है। आहाहा ! समझ में आया ? (आगे) दृष्टांत देंगे।

परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती। (अर्थात्) किसी भी समय में व्यक्त परिणाम न हो और अव्यक्त द्रव्य ही हो ऐसा तीनकाल में कभी भी बनता नहीं। समझ में आया ? **`क्योंकि वस्तु द्रव्यादि के द्वारा (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से) परिणाम से भिन्न...'** है ? आहाहा ! वस्तु द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से परिणाम से भिन्न **`अनुभव में (देखने में) नहीं आती,...'** है ? परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती। यानी कि - क्योंकि

वस्तु द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से परिणाम से भिन्न अनुभव में आती नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! स्थूल बुद्धिवानों को तो यह बहुत कठिन पड़े ऐसा है। वस्तु ऐसी आ गई है न ! सार...सार है। आहाहा !

प्रभु ! तू ऐसा कहे कि किसी भी चीज को वर्तमान परिणाम है ही नहीं और मात्र द्रव्य ही है तो वह बात झूठ है। समझ में आया ? आहाहा ! क्यों ? (क्योंकि) किसी भी वस्तु को - द्रव्य को द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से परिणाम से भिन्न जानने में, अनुभव में, देखने में आती नहीं, भगवानआत्मा ! वह त्रिकाली वस्तु है और उसके व्यक्त परिणाम नित्य-त्रिकाल (होते) हैं। आहाहा ! तीनोंकाल में जब जानो तब उसका परिणमन व्यक्त होता ही है। उस परिणाम के बिना वस्तु जानने में - अनुभव में नहीं आती। **क्योंकि परिणाम के बिना वस्तु है नहीं।**

प्रश्न :- किसी समय परिणाम नहीं हो ऐसा बने या नहीं ?

समाधान :- परिणाम नहीं हो तो अकेला पारिणामिक नहीं रहता। (जो) वस्तु है तो उसे जाननेवाली पर्याय भी है। (और वह यदि) अवकाश पर जाये तो फिर उसे जाननेवाला (रहेगा) कौन ? आहाहा ! अरे प्रभु ! मार्ग बहुत न्यारा (है) बापू ! आहाहा ! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग अंदर से समझना वह बहुत अलौकिक बात है ! आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहा कि कोई भी वस्तु हो ! एक (मात्र) आत्मा ही - (ऐसा) नहीं (किन्तु) छः द्रव्य (वस्तु) द्रव्यरूप से परिणाम से भिन्न अनुभव में नहीं आते। आहाहा ! '**क्योंकि (१) परिणाम रहित वस्तु गधे के सींग के समान है,**' आहाहा ! पर्याय व्यक्त नहीं होती और मात्र परिणामी वस्तु हो (तो) परिणाम के बिना वस्तु गधे के सींग के समान है। गधे के सींग नहीं होते, वैसे परिणाम के बिना वस्तु नहीं होती। आहाहा ! यह तो समझने योग्य बात है बापू ! आहाहा ! मध्यस्थ होकर जैसी वस्तुस्थिति है वैसी उसे जाननी (चाहिये)। यह प्रवचनसार है - भगवान की दिव्यध्वनिमें से आयी हुई बात है। आहाहा ! संतों ने उसे प्रवचनसार बनाकर रचना की है। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) परिणाम के बिना वस्तु, परिणाम नहीं हो तो वह वस्तु - गधे के सींग के समान (है)। जैसे गधे के सींग नहीं होते वैसे परिणाम के बिना वस्तु नहीं होती। आहाहा ! **परिणमन है वह पर्याय है और वस्तु (है) वह त्रिकाल ध्रुव है।** किसी भी काल में परिणाम रहित वस्तु, गधे के सींग के सामन है। आहाहा! टीका तो टीका... गज़ब किया है न ?! भगवानआत्मा त्रिकाली अविनाशी ध्रुव वस्तु होने पर भी, उसकी वर्तमानदशा की प्रगट परिणमनदशा किसी भी समय नहीं हो ऐसा होता नहीं। आहाहा ! भाषा तो सरल है। किन्तु भाव तो बापू ! (गंभीर है)। आहाहा!

**`परिणाम रहित वस्तु गधे के सींग के समान है,...'** गधे के सींग होते नहीं, वैसे परिणाम रहित वस्तु होती नहीं, आहाहा ! कोई कहता हैं कि परिणाम रहित वस्तु हमने देखी है। किन्तु `देखा है' वही परिणाम है। समझ में आया ? अनित्य परिणाम से नित्य जानने में (है)। (अब) अनित्य परिणाम ही यदि नहीं तो नित्य को जाने कौन ? आहाहा! कहिये ! समझ में आया ?

प्रश्न :- पर्याय तो एक समय में उत्पन्न होती है, स्थिर रहती है और नष्ट होती है ?

समाधान :- भले ही वह एक समय स्थिर रहे, किन्तु है न ? वह तो दूसरे समय रहती नहीं इसलिये नास्ति है। किन्तु वर्तमान परिणाम है या नहीं ? परिणाम के बिना वस्तु है ? वर्तमान व्यक्त कोई दशा ही नहीं और (क्या) मात्र अव्यक्त वस्तु है ? (नहीं)। वह यहाँ सिद्ध करते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? प्रगट दशा यदि नहीं हो तो अप्रगट जो चीज है उसे कौन जाने ? आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा है बापू ! वस्तुस्वरूप ऐसा है, वस्तु की मर्यादा ऐसी है। यह ज्ञान अधिकार है न ! यह तो ज्ञान अधिकार है, ऊपर देखिये ! (तो) ज्ञान में इसप्रकार जानने में आता (है), (वैसा कहते हैं, आहाहा !

जिसको यथार्थ ज्ञान है उसे वर्तमान में परिणाम भिन्न (जानने में आये) और उससे परिणामी भिन्न (जानने में आये) (वैसा नहीं होता)। परिणाम नहीं हो और केवल परिणामी हो तो उसका वह ज्ञान यथार्थ नहीं। समझ में आया ? आहाहा! यह प्रवचनसार! (इसमें) ज्ञानप्रधान कथन है किन्तु वस्तु तो जो है सो है न ! आहाहा !

(अब कहते हैं कि) `**(२) तथा उसका, दिखाई देनेवाले**' क्या कहते हैं ? अब दृष्टांत देते हैं कि (परिणाम में) `**दिखाई देनेवाले गोरस इत्यादि (दूध, दही वगैरह) के परिणामों के साथ विरोध आता है।**' (यानी कि) यदि (जो) गोरस वस्तु सामान्य है उसके विशेष परिणाम दूध, दही इत्यादि नहीं हो तो, विरोध आता है। क्या कहा? (कि) गोरस सामान्य (है)। अब उसकी दूध, दही इत्यादि पर्याय (हैं)। यदि दूध-दही इत्यादि परिणाम नहीं हो तो, केवल गोरस रह सकता नहीं। समझ में आया ? आहाहा! दुनिया की - संसार की धमाल (यानी कि) स्त्री-पुत्र का रक्षण करना और सारे दिन पाप के कार्य में ऐसे कब विचार किये थे ? हमारे कुंवरजीभाई को उस दिन कहा था न ? सारा दिन तुम यह क्या करते हो ? (कोई) सत्समागम नहीं, कोई साधु आये तो जाना (नहीं), सुनना नहीं, कुछ नहीं। सारा दिन यह कमाना... कमाना... ये व्यापार...व्यापार...व्यापार... पाप के कार्य में मरकर तिर्यंच होगे ऐसा कहा। यह क्या ? तुझे कोई अवकाश ही नहीं

मिलता। शास्त्र तो पढ़े नहीं। वह ऐसा कहकर निकाल दे कि, `वह तो भगत पढ़े... भगत पढ़े।' मैं तो वाडीलाल के जैनसमाचार पत्र मंगवाता था, और कोई पढ़े नहीं। मैं अकेला बैठता और पढ़ता। आहाहा! अरे...भाई! तुम सारा दिन ये व्यापार क्या करते हो? उसमें यह आत्मा क्या है? वितराग कौन है ? यह क्या चीज है ? (वह कुछ समझना नहीं ?) आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि यदि परिणाम के बिना द्रव्य हो तो, गोरस के दूध-दही इत्यादि परिणामों के साथ विरोध आता है। गोरस है वह सामान्य है और दूध-दही के परिणाम उसका विशेष है। वह परिणाम है (अर्थात्) गोरस है वह त्रिकाली वस्तु (है)। - इस समय दृष्टांत में तो (ऐसे) लेना है न ? और दूध, दही इत्यादि उसके परिणाम है। है न? (अब) यदि परिणाम रहित वस्तु हो तो, गोरस के दूध, दही इत्यादि के परिणाम (भी नहीं होते)। किन्तु वे तो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं।

क्या कहा वह ? कि परिणाम रहित वस्तु यदि हो तो, गोरस (जो) गाय का रस है (उसके परिणाम नहीं होते)। यानी कि दूध, दही, छाछ (जो) पर्याय - परिणाम हैं (उससे रहित होता) किन्तु उन पर्यायों रहित गोरस दिखाई नहीं देता। बात ठीक है? दूध, दही इत्यादि परिणाम रहित गोरस दिखाई देता नहीं - वह विरोध आता है। प्रत्यक्ष देखने में विरोध आता है, ऐसा कहते हैं। यदि परिणाम रहित द्रव्य तू कहता है तो, गोरस की दूध-दहीरूप पर्याय प्रत्यक्ष होती है। यह विरोध आता है। आहाहा ! ऐसा वस्तुस्वरूप है। अब ऐसा उपदेश है !

अब इसमें क्या करना ? बापू ! करना क्या ? है ऐसा समझना पहले, दूसरा करना क्या ? (यह समझना) वह पहले करना नहीं ? आहाहा ! यदि परिणाम रहित चीज हो तो, गोरस के परिणाम है उसमें विरोध दिखाई देता है, (अर्थात्) दूध-दही परिणाम होते नहीं। (किन्तु वह तो) प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं - इस प्रकार विरोध आता है। समझ में आया ? आहाहा !

नीचे (लिखा है)। यदि वस्तु को परिणाम रहित मानने में आये तो गोरस इत्यादि वस्तुओं के - वगैरह सभी वस्तु के - दूध, दही इत्यादि परिणाम प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं उनके साथ विरोध आता है। आहाहा ! परिणाम रहित गोरस होता नहीं। क्योंकि गोरस के परिणाम दूध-दही इत्यादि दिखाई देते हैं - वे परिणाम प्रत्यक्ष हैं - वैसे गोरस का दृष्टांत देकर परिणाम रहित कोई चीज होती नहीं (ऐसा कहा)। आहाहा! दृष्टांत तो देखिये ! कि परिणाम - बदलती दशा - रहित यदि तत्त्व हो तो, प्रत्यक्ष गोरस दूध-दही परिणाम देखने में आते हैं तो (उनमें) विरोध आता (है)। समझ में आया ? (यह) लोजीक है, किन्तु

कितने न्याय से कहते हैं ! आहाहा !

`(**जैसे - परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्व धारण नहीं करती उसीप्रकार**)' - (जैसे) परिणाम के बिना गोरस दिखाई देता नहीं उसीप्रकार - **`वस्तु के बिना परिणाम भी अस्तित्व को धारण नहीं करता,...'** अब दूसरी बात। पहले (वह कहा कि) परिणाम के बिना वस्तु होती नहीं। (और अब कहा) कि वस्तु के बिना परिणाम होते नहीं। आहाहा ! नित्य वस्तु नहीं हो और परिणाम हो (वैसा बनता नहीं)। आहाहा !

`वस्तु के बिना परिणाम भी अस्तित्व को धारण नहीं करता,...' इसके बाद दूसरी बात। पहले (यह कहा कि) परिणाम के बिना वस्तु नहीं। (अब कहा) कि वस्तु के बिना परिणाम होता नहीं। आहाहा ! कायम वस्तु न हो और परिणाम हो (वैसा बनता नहीं)। आहाहा !

`वस्तु के बिना परिणाम भी अस्तित्व को धारण नहीं करता,...'** `भी' क्यों कहा? (क्योंकि) पहले एक बोल कहा था न ? अत: `भी' कहा। **`क्योंकि स्वाश्रयभूत वस्तु के अभाव में...' भाषा देखिये ! उन शुभ-अशुभ परिणामों का भी आश्रय द्रव्य है ऐसा यहाँ सिद्ध किया (है)। आहाहा ! तीनों परिणाम लेने हैं न ? शुभ, अशुभ और शुद्ध (वे) तीनों परिणाम लेने हैं न ! आहाहा ! तो कहते हैं कि **`क्योंकि स्वाश्रयभूत वस्तु के अभाव में (अपने आश्रयरूप जो वस्तु है वह न हो तो) निराश्रय परिणाम को शून्यता का प्रसंग आता है।'** आहाहा ! परिणाम का आश्रय द्रव्य है ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। शुभ-अशुभ परिणाम का आश्रय द्रव्य है यानी कि उसकी वह पर्याय है। शुभ-अशुभ का आश्रय द्रव्य - आत्मा है। शुभ-अशुभ (भाव का) आश्रय परद्रव्य या कर्म नहीं। क्योंकि शुभ-अशुभ परिणाम परिणामी के बिना दिखाई देते नहीं। और परिणामी वस्तु परिणाम के बिना दिखाई नहीं देती। आहाहा! अपने आश्रयरूप जो वस्तु है अर्थात् शुभ-अशुभ और शुद्ध - उन तीनों परिणाम को आश्रयरूप वस्तु है। शुभ परिणाम और अशुभ (परिणाम का) आश्रय वस्तु है (वैसा कहते हैं)।

अब सुबह में ऐसा आया था कि शुभ-अशुभ परिणामों का व्याप्य-व्यापकपना कर्म का है। कर्म व्यापक होकर वह कार्य करता है। यह तो अंदर वस्तुस्वभाव - ज्ञानस्वभाव - (जिसने) जाना है उस, जाननहार की अपेक्षा से - जो विकार है वह उसकी वस्तु में - किसी गुण में या द्रव्य में नहीं अत: विकृत अवस्था का कार्य जड़ का है ऐसा कहकर उसे हेय करके छोड़ दिया है। आहाहा ! समझ में आया ?

सुबह में कुछ और दोपहर में कुछ ! कौन सी अपेक्षा है वह जानना चाहिये न बापू ! आहाहा ! एक तरफ कहे कि आत्मा मोक्ष के परिणाम को करता है और एक तरफ कहे कि आत्मा मोक्ष के परिणाम को करता नहीं, परिणाम, परिणाम को करता

है। आहाहा ! ऐसी बात है ! (लोगों को) कठिन पड़ती (है)।

आहाहा ! स्वआश्रय बिना (परिणाम होते नहीं)। (यहाँ तो) प्रत्येक द्रव्य की बात है न ! जड़ के परिणाम भी स्वआश्रय बिना (होते नहीं)। वैसे आत्मा को शुभाशुभ परिणाम भी स्वद्रव्य के आश्रय बिना (होते नहीं)। आश्रय अर्थात् उसमें होते हैं। समझ में आया? द्रव्य के (वह) परिणाम द्रव्य में पर्यायरूप होते हैं। आहाहा! द्रव्य बिना अंतरिक्षमें से-अपने आप होते हैं ऐसा नहीं।

आहाहा ! एक तरफ सुबह में समयसार गाथा ७६-७७-७८ में ऐसा कहा कि शुभ-अशुभभाव में जो कर्म व्यापक है उसका व्याप्य कर्ता का कर्म है, उसका (वही) कार्य है। (जब कि) आत्मा का कार्य (वह है कि) जो राग होता है उसका उस काल में (ज्ञान करना)। ज्ञायकस्वरूप (आत्मा का) जिसने ज्ञान किया है उसे उस काल में जो राग का ज्ञान होता है वह - आत्मा का व्याप्य है, आत्मा का कार्य है। आहाहा ! कौन सी अपेक्षा है ? बापू ! (वह समझनी चाहिये)। यह तो वीतराग मार्ग है। उसका स्याद्वाद - अनेकान्त मार्ग जिस प्रकार है उस प्रकार समझना चाहिये। अनेकान्त का अर्थ ऐसा नहीं कि निश्चय से भी होता है और व्यवहार से भी होता है - ऐसा नहीं। किन्तु व्यवहार है और निश्चय है - ऐसे दोनों का ज्ञान करना चाहिये। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) परिणाम के स्वआश्रयभूत वस्तु के अभाव में (यानी कि) शुभ-अशु भपरिणाम के स्वआश्रयभूत द्रव्य के - वस्तु के अभाव में (अर्थात्) अपने आश्रयरूप वस्तु (जो है) वह (यदि) नहीं हो तो, निश्चय परिणाम को - निराश्रय परिणाम को - शून्यता का प्रसंग आता है। आहाहा ! यह तो लोजीक - न्याय है।

`और'** (यानी कि) एक बात को सिद्ध किया। (अब दूसरी) **`वस्तु तो ऊर्ध्वतासामान्यस्वरूप द्रव्य में,...' है ? ऊर्ध्वतासामान्य अर्थात् नीचे (मूल शास्त्र में) अर्थ किया है कि `काल की अपेक्षा से स्थिर होने को अर्थात् कालापेक्षित प्रवाह को ऊर्ध्वता अथवा ऊँचाई कहा जाता है।' (काल की अपेक्षा से प्रवाह की ऊँचाई) ऐसे है...है...है...है...है। वस्तु ऐसे (ऊँची) है...है...है...है। आहाहा ! पानी का प्रवाह ऐसे (तिरछा) है...है...है। और ध्रुव है वह ऐसे सीधा है...है...है। तो, `काल की अपेक्षा से स्थिर होने को अर्थात् काल अपेक्षित प्रवाह को ऊँचाई अथवा उर्ध्वता कहा जाता है। ऊर्ध्वता-सामान्य अर्थात् अनादि अनंत ऊँचा (कालापेक्षित) प्रवाहसामान्य वह द्रव्य है।' ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव... प्रवाहसामान्य ध्रुव काल अपेक्षा से ऊँचा यानी कि काल अपेक्षा से त्रिकाल है। उसको यहाँ द्रव्य कहने में आता है। आहाहा! यहाँ दोनों को - परिणाम को और द्रव्य को - सिद्ध करते हैं।

(अब कहते हैं कि) **`सहभावी विशेषस्वरूप (साथ ही साथ रहनेवाले विशेष-भेद जिनका**

स्वरूप है ऐसे) गुणों में' (यानी कि जो) त्रिकाल ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव है (उसमें और) उसके गुणों में **`तथा क्रमभावी विशेषस्वरूप पर्यायों में...**' देखा ? **`क्रमभावी**' (कहा)। गुण हैं वे तो त्रिकाल द्रव्य के साथ त्रिकाल है और अक्रम से हैं। (जब कि) पर्याय क्रमभावी विशेष हैं। (वे) क्रमसर - क्रमसर.... एक के बाद एक, एक के बाद एक, एक के बाद एक होती (है)। आहाहा !

**`क्रमभावी विशेषस्वरूप पर्यायों में रही हुई और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय अस्तिस्व से बनी हुई;...**' आहाहा ! वह तो उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य से - (उसरूप) अस्तित्व से बनी हुई वस्तु है। `बनी हुई है' यानी (कि) है। आहाहा ! नवीन अवस्था से उत्पन्न होती है, पुरानी अवस्था से नष्ट होती है और नित्य रहनेवाला ध्रुव (है) - ऐसा उसके अस्तित्व का स्वरूप है। आहाहा !

जीव और जड़ का अस्तित्व - वस्तु का अस्तित्व - इसप्रकार है कि उत्पाद-व्यय के परिणाम और ध्रौव्य वे दोनों से उसके अस्तित्व की सिद्धि है। (अत:) उसके यदि परिणाम निकाल दो तो, अकेला ध्रुव सिद्ध नहीं होगा। (अर्थात्) परिणाम रहित ध्रुव रखो (तो वह सिद्ध नहीं होगा) और केवल परिणाम रखो और ध्रुव नहीं रखो तो, वह परिणाम (भी) सिद्ध नहीं होगा। परिणाम किसके आश्रय से होगा ? (यदि) ध्रुव नहीं तो किसके आश्रय से परिणाम होगा ? आहाहा ! ध्रुव नहीं तो उत्पाद-व्यय किसके आश्रय से होगा ? आहाहा ! समझ में आया ? उत्पाद-व्यय के परिणाम रहित ध्रुव होता नहीं, ऐसी बातें हैं ! यहाँ तो दया का पालन किया, सामायिक कर डाली (किन्तु) उसमें कुछ भी नहीं। भाई ! अभी तत्त्व और वस्तु क्या है उसका यथार्थ ज्ञान नहीं (तो सामायिक कहाँ से होगी ?) आहाहा !

(वस्तु) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय अस्तित्व से बनी हुई है। बनी हुई है यानी कि है। प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व परिणमन से (अर्थात्) उत्पाद और व्यय से तथा ध्रुव से अर्थात् नित्यता से है। उसका अस्तित्व उत्पाद-व्यय और ध्रुव से है। केवल उत्पाद-व्यय से नहीं (या) केवल ध्रुव से नहीं। आहाहा ! बनिये को व्यापार के कार्य में सुनने का समय नहीं मिलता। **`इसलिये वस्तु परिणामस्वभाववाली ही है।**' वस्तु परिणामस्वभाववाली ही है। (अर्थात्) वस्तु है वह परिणामस्वभाववाली ही है। वस्तु जो द्रव्य है - आत्मा और परमाणु आदि छ: द्रव्य हैं (वे प्रत्येक) वस्तु परिणामस्वभाववाली है। (यानी कि) परिणामस्वभाव रहित वस्तु हो सकती नहीं। आहाहा ! ऐसी वस्तु सूक्ष्म है।

(गाथा-९ में) उपयोग में कितने प्रकार पड़े ? और फिर ये परिणाम के (भेद पड़े)। शुभ उपयोग होने पर भी किसी को शुद्ध (उपयोग किसी समय) हो तो भी मुख्यता से

शुभ (उपयोग) कहने में आता (है)। अधिक शुद्ध उपयोग हो तथापि (बीच में) शुभ (उपयोग) आ जाता है, तथापि उसे मुख्यतया शुद्ध उपयोग कहने में आता (है)। ऐसी वस्तु है !

यहाँ कहते हैं कि परिणाम बिना वस्तु नहीं और वस्तु बिना परिणाम नहीं (यानी कि) बदलती दशा के बिना, नहीं बदलता ध्रुव नहीं और नहीं बदलते ध्रुव के बिना, बदलती अवस्था नहीं।

प्रश्न :- किसी समय ऐसा कहते हैं कि ध्रुव, ध्रुव से है और उत्पाद, उत्पाद से है।

समाधान :- किन्तु वह तो कहा न (यहाँ) दोनों (ध्रुव और पर्याय) से पूरा अस्तित्व सिद्ध करना है। दोनों से पूरा अस्तित्व सिद्ध करना है न ? बाद में तो, उत्पाद-व्यय की पर्याय, उत्पाद-व्यय के कारण है (ऐसा कहेंगे)। वह तो १०१ गाथा में आगे आयेगा कि परिणाम का जिस समय उत्पाद है वह उत्पाद के कारण है, ध्रुव के कारण नहीं। (किन्तु) यहाँ तो दोनों से वस्तु है ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया ? आहाहा ! वेदांत केवल वस्तु-ध्रुव को मानते हैं। और बौद्ध केवल क्षणिक को मानते हैं। उन एकान्त का निषेध करने के लिये यह बात है और १५ वें पन्ने पर बताया था न ? (गाथा-९ में देखिये)। आहाहा ! धीरज से समझ में आये ऐसा है। (किन्तु) ऐसा नहीं समझना कि यह हमको नहीं समझ में आयेगा। अरे भगवान ! तू तीनलोक का नाथ और केवलज्ञान लेने की योग्यतावाला जीव (है)। आहाहा ! उसे जीव कहते हैं। आहाहा ! जिसका ज्ञान, तीनोंकालों को एक समय में जानता है ऐसे केवलज्ञान को लेने की योग्यतावाला आत्मा है। उसे यह बात नहीं समझ में आये ऐसा किस प्रकार कहे ? समझ में आया ? आहाहा ! यहाँ तो ऐसे आत्मा को ही लिया है। जिसको कहा उसने अनुभव से प्रमाण किया है। आहाहा !

प्रश्न :- तिर्यंच इतनी अपेक्षा का विस्तार नहीं जानता तथापि सम्यग्दर्शन पा जाता?

समाधान :- किन्तु उसका यह परिणाम है और यह परिणामी है इतना तो उसे जानना चाहिये न ? (फिर भले ही) दूसरा उसका विस्तार नहीं जाने। किन्तु परिणाम-पर्याय अर्थात् क्या ? (वह तो जानना चाहिये न ?) और यह पर्याय नहीं कही ? कि परिणाम रहित गोरस दिखाई देता नहीं। यदि परिणाम रहित वस्तु हो तो, गोरस के जो परिणाम दिखाई देते हैं (उसके साथ) विरोध आता है। वैसे कोई भी चीज परिणाम रहित दिखाई देती नहीं। आहाहा ! और परिणाम के द्वारा ही उसका ज्ञान होता है न ! ध्रुव का ज्ञान परिणाम के द्वारा होता है। आहाहा ! ध्रुव का ज्ञान ध्रुव से होता नहीं। अनित्य के द्वारा नित्य का ज्ञान होता (है)। आहाहा ! वह तो कहा न, कि यदि अनित्य नहीं, तो नित्य

का ज्ञान करनेवाला कौन रहा ? और नित्य नहीं तो अनित्य का ज्ञान किसके आश्रय से हुआ ? (क्या) अपने आप हुआ ? (और कहीं) `अपने आप हुआ है' (वैसा कहा) किन्तु वह तो द्रव्य से (पर्याय को) भिन्न बतलाने के लिये (कहा)। (किन्तु यहाँ तो) आश्रय(रूप) वस्तु है उसके आश्रय बिना परिणाम होते नहीं ऐसा सिद्ध करना है। (इसलिये कहते हैं कि क्या अपने आप परिणाम होते हैं ?) क्या बिना पानी के तरंग उठे हैं ? बिना सोने के ये गहने - कड़े और कुंडल बने हैं ? किन्तु वह किस प्रकार हो ? आहाहा ! ऐसा है बापू ! आहाहा! यहाँ तो यह वस्तु है। वह समझना भारी मुश्किल पड़े ऐसी है। अंदर बहुत ध्यान रखे और स्वयं रुचि करे (तो समझ में आये)।

प्रश्न :- समझ का आप समय निश्चित कर दो न कि इतने समय में समझ में आ जायेगा।

समाधान :- अरे ! अंत:मुहूर्त में होता है ऐसा तो यहाँ कहते हैं। अधिक से अधिक छ: महिने लगे, ऐसा नहीं कहा ? (समयसार कलश-३४) किन्तु उसकी लगन लगनी चाहिये न ! शर्त तो यह है। आहाहा !

भावार्थ :- `**जहाँ जहाँ वस्तु दिखाई देती है वहाँ वहाँ परिणाम दिखाई देता है।** बहुत सरल भाषा में कहते हैं। `**जैसे - गोरस अपने दूध, दही, घी, छाछ...** ' देखा? `**गोरस अपने दूध, दही, घी, छाछ इत्यादि परिणामों से युक्त ही दिखाई देता है।** गोरस दूध, दही, घी, छाछ युक्त दिखाई देता है। आहाहा ! `**जहाँ परिणाम नहीं होता वहाँ वस्तु भी नहीं होती।**' पर्याय में परिणमन नहीं वहाँ वस्तु (भी) नहीं। `**जैसे कालापन, स्निग्धता इत्यादि परिणाम नहीं हैं...**' (अर्थात्) काला और स्निग्ध परिणाम नहीं `**तो गधे के सींगरूप वस्तु भी नहीं है।**' तो गधे के सींग भी नहीं। क्योंकि कालापन और स्निग्धता हो तो गधे के सींग हो। किन्तु वह तो नहीं। तो, सींग भी नहीं। आहाहा ! काली और स्निग्ध पर्याय हैं। तो जहाँ पर्याय नहीं वहाँ द्रव्य भी नहीं। `**इससे सिद्ध हुआ कि वस्तु परिणाम रहित कदापि नहीं होती। जैसे वस्तु परिणाम के बिना नहीं होती उसीप्रकार परिणाम भी वस्तु के बिना नहीं होते,...**' (यानी कि परिणाम) चीज (परिणामी, उपादान) के बिना नहीं होती, किन्तु दूसरी चीज (निमित्त के) बिना परिणाम नहीं होते ऐसा नहीं। इस समय तो उसकी पर्याय उसमें (है) ऐसा सिद्ध करना है न ! आहाहा !

`**क्योंकि वस्तुरूप आश्रय के बिना...**' देखिये ! शुभाशुभ परिणाम और शुद्ध परिणाम उसके द्रव्य के आश्रय के बिना, आहाहा ! (अर्थात्) मिथ्यात्व के परिणाम, राग-द्वेष के परिणाम उसके आत्मद्रव्य का आश्रय के बिना... (होते नहीं)।

सुबह में कुछ और दोपहर को कुछ ! बापू ! कौन सी अपेक्षा है ? सुबह में तो

विकारी परिणाम द्रव्य-गुण के नहीं (वैसा कहा था)। क्योंकि द्रव्य-गुण ऐसे नहीं (कि विकार हो)। (अत:) जिसको द्रव्यदृष्टि हुई है (ऐसे) उस ज्ञानी को विकार के परिणाम का जाननेवाला कहा। (किन्तु) विकार के परिणाम का कर्ता नहीं। यहाँ तो विकार के परिणाम का आश्रय द्रव्य है (ऐसा कहा)। (यानी कि) उससे (द्रव्य से) वे हुए हैं। न कि अन्य से हुए हैं। कर्म से भी नहीं, आहाहा ! **`ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहाँ समझवुं तेह;'** - श्रीमद् राजचंद्रजी (आत्मसिद्धि में) कहते हैं न? **`त्यां त्यां ते ते आचरे आत्मार्थी जन एह।'**

(तो कहते हैं) **`क्योंकि वस्तुरूप आश्रय के बिना परिणाम किसके आश्रय से रहेंगे?'** पुण्य-पाप के परिणाम का आधार द्रव्य नहीं हो तो, वह किसके आश्रय से रहेंगे? आहाहा ! किस अपेक्षा से बापू ! द्रव्य और पर्याय दोनों अभिन्न है ऐसा यहाँ सिद्ध करना है और वहाँ (द्रव्य और पर्याय) भिन्न है वैसा सिद्ध करना है। आहाहा ! समझ में आया ? शुभ परिणाम हुआ उसका वह परिणाम कर्ता, वह परिणाम कार्य, परिणाम उसका साधन, परिणाम ने परिणाम को रखा, परिणाम से परिणाम हुआ और परिणाम के आश्रय से परिणाम हुआ। (और) यहाँ कहते हैं कि द्रव्य के आश्रय के बिना (परिणाम किसके आश्रय से रहेंगे?) है (अंदर) ? यहाँ पर (पर्याय और) उसकी - वस्तु को सिद्ध करना है न ! (अत: कहते हैं कि) **`गोरसरूप आश्रय के बिना दूध, दही इत्यादि परिणाम किसके आधार से होंगे ?'** गोरस नहीं हो (और) उसके आश्रय के बिना दूध, दही पर्याय हो (तो वे) किसके आश्रय से होंगे ? विशेष कहेंगे।

a a a

दि. १२-१-१९७९ - प्रवचन नं. - ६

प्रवचनसार, १०वीं गाथा के भावार्थ का दूसरा पेराग्राफ है। है ? **`और फिर वस्तु तो...'** वस्तु अर्थात् जिसमें अनंतगुण बसे हैं और जिसमें क्रमसर पर्याय-परिणाम-क्रिया होती है। उसे वस्तु कहते हैं। वह वस्तु (फिर) आत्मा हो या परमाणु हो। (और) ऐसे छ: द्रव्य हैं। संख्या से (यद्यपि) अनंत हैं। (किन्तु) जाति से छ: हैं। अनंत आत्मा, अनंत परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश - (इस प्रकार) छ: वस्तु हैं। वह **`वस्तु तो द्रव्य-गुण-पर्यायमय है।'** है ?

क्या कहा वह ? कि जो वस्तु है वह द्रव्य-गुण और पर्यायमय है।

प्रश्न :- भविष्य की जो पर्याय है उस पर्यायमय वस्तु किस प्रकार है ?

समाधान :- अभी तो वह - वर्तमान पर्यायमय है ऐसा कहना है न ! यहाँ तो प्रत्येक चीज वर्तमान में द्रव्य-गुण और पर्याय सहित है (ऐसा कहना है)। भविष्य की पर्याय के समय पर भविष्य की पर्याय(मय) होगी। केवलज्ञानी को केवलज्ञान में सब दिखाई देता (है) वह अलग बात है। इस समय वह बात नहीं। (किन्तु) यहाँ तो वस्तु है वह द्रव्य है यानी कि नित्य है, (ऐसा आगे) कहेंगे।

(कहते हैं कि) **`वस्तु तो द्रव्य-गुण-पर्यायमय है।'** उसमें द्रव्य अर्थात् क्या ? कि **`त्रैकालिक ऊर्ध्व प्रवाहसामान्य द्रव्य है,...'** आहाहा ! त्रिकाली नित्य रहनेवाला ऊर्ध्व प्रवाह वह द्रव्य (है), ध्रुव (है)। नित्य रहनेवाला परमाणु (हो) या आत्मा, (उसमें) नित्य रहनेवाला जो ऊर्ध्व प्रवाह है वह द्रव्य (है)। आहाहा ! यह द्रव्य अर्थात् ये तुम्हारे पैसों की बात नहीं। आहाहा ! पैसे का एक-एक परमाणु द्रव्य है। क्योंकि ऊर्ध्व प्रवाह - नित्य रहनेवाली चीज वह ध्रुव है। उसे द्रव्य कहा। (वैसे) आत्मा में भी - नित्य रहनेवाला आत्मा है उसका - उर्ध्व प्रवाह (है)। ऊर्ध्व प्रवाह (यानी कि) आगामी-आगामी काल की (भाँति) जैसे का तैसा रहनेवाला (प्रवाह) को द्रव्य कहते हैं। ऐसी व्याख्या (है) ! (है) ? संस्कृतमें से (अमृतचंद्राचार्य की टीकामें से) ही है। **`वस्तु पुनरूर्ध्वतासामान्यलक्षणे द्रव्ये'** - (इस प्रकार) संस्कृत में है। उसका यह अर्थ किया है। आहाहा !

क्या कहा वह ? (कि) प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु (तथा) चार-धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल - वह प्रत्येक वस्तु उसको कहे कि जिसका ऊर्ध्वप्रवाह (है)। इस प्रकार त्रिकाल-नित्य रहनेवाला है उसे द्रव्य कहते हैं। है ? **`साथ ही साथ रहनेवाले भेद वे गुण हैं,...**' अर्थात् ? आत्मा जो वस्तु है उसमें द्रव्य उसे कहे (कि, जो) नित्य ऐसा का ऐसा ऊर्ध्वप्रवाहरूप रहे और उसमें (जो) भेद हैं यानी कि विशेष (साथ ही साथ रहनेवाले) को गुण कहते हैं।

वह...वह...वह...वह... ऐसा सामान्य जो ध्रुव द्रव्य है, उसमें जो गुण हैं (अर्थात्) आत्मा में (जो) ज्ञान, दर्शन, आनंद (आदि जो गुण हैं) वे सहभावी - साथ रहनेवाले (हैं)। पाठ में (टीका में) ऐसा है। देखिये ! `सहभाविविशेषलक्षणेषु गुणेषु' - संस्कृत में वह है। सहभावी का अर्थ साथ-साथ किया है। आहाहा ! (जो) वस्तु है उसके साथ-साथ रहनेवाले भेद को - विशेष को गुण कहते हैं। आहाहा ! अब ऐसी तो बात है ! आहाहा ! द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है उसकी बात तो भाई ! कभी भी (कहीं भी सुनी नहीं हो) और `जय भगवान' (करता है)। द्रव्य अर्थात् पैसा ऐसा एकबार एक भाई कहते थे न ? `द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि' - ऐसा हमने लिखा है न ! तो, एक भाई कहे कि महाराज ! द्रव्य अर्थात् पैसा न ? अरे ! कुछ ख़बर नहीं। लोक के चतुर (वे) धर्म में पागल (हैं)।

आहाहा ! द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि। वस्तु - द्रव्य उसे कहे कि... अर्थात् द्रव्य यानी आत्मा, जो नित्य रहनेवाला एकरूप (प्रवाह) है वह द्रव्य (है)। उसकी दृष्टि करने का नाम सम्यग्दर्शन (है)। किन्तु यहाँ तो वस्तु कैसी है वह अभी सिद्ध करना है। वस्तु जो है वह नित्य रहनेवाला प्रवाह (है)। पानी का प्रवाह ऐसा (तिरछा) चलता है। यह प्रवाह अर्थात् ? कि ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव इस प्रकार। है...है...है...है...(इस प्रकार)। आत्मा (भी) है...है...है... वह द्रव्य (है)। (उसी प्रकार) परमाणु भी है...है...है... (वह द्रव्य है)। यह अँगुली तो बहुत परमाणु की है। यह कोई एक परमाणु (द्रव्य) नहीं। यह तो बहुत परमाणु का बना हुआ स्कंध दिखता है। उसमें एक-एक परमाणु तद्दन भिन्न है। उस परमाणु में भी जो नित्य रहनेवाला प्रवाह है उसे द्रव्य कहते हैं और उस परमाणु में वर्ण-गंध-रस-स्पर्श (आदि) भेदरूप जो विशेष हैं उन्हें गुण कहते हैं। है (अंदर) ?

`और क्रमशः होनेवाले भेद...' (अर्थात्) विशेष...देखा ? आत्मा में भी जिस समय जो पर्याय होनेवाली है वह, उस समय पर होती है, दूसरे समय पर दूसरी, और तीसरे समय पर तीसरी - (इस प्रकार) क्रमशः जो विशेष भेद (हैं, वे) पर्याय (हैं)। गुण विशेष सहभावी रहनेवाले (हैं)। पर्याय विशेष क्रमभावी रहनेवाले (हैं)। ऐसा है बापू ! धर्म चीज ऐसी कोई (अलौकिक है)। (इसके बिना) बहुत दया और सेवा कर-कर के मर गया (है), सुन तो

सही !

कहते हैं कि वस्तु क्या है ? (कि) क्रमश: होनेवाले विशेष... भेद अर्थात् विशेष। संस्कृत में `विशेष' है न ? `**सहभाविविशेष**' और `**क्रमभाविविशेष**' यानी ? कि यह आत्मा जो वस्तु है वह नित्य (जैसा का तैसा) ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव रहनेवाले को द्रव्य कहते हैं। और उसके विशेष यानी कि उसमें (जो) गुण के भेद (हैं) उन्हें गुण कहते हैं। (जैसे कि) परमाणु है वह रजकण है। वह नित्य रहनेवाला द्रव्य है उसे द्रव्य कहते हैं और उसके - द्रव्य के, सामान्य के - विशेष - भेद, जो वर्ण-गंध-रस-स्पर्श (हैं) उन्हें गुण कहते हैं।

अब पर्याय की विशेष बात है। पर्याय क्रमश: होनेवाले विशेष (हैं)। अर्थात् आत्मा में ज्ञान की पर्याय, दर्शन की पर्याय आदि जो पर्याय - जो क्रिया - वर्तमान पर्याय की जो क्रिया (होती है) वह क्रमश: होती है। गुण हैं वे अक्रम (अर्थात्) सहभावी - साथ में रहते (हैं) और पर्याय हैं वे क्रम क्रम से (होती हैं)। उस क्रम क्रम से (होनेवाली) पर्याय रहित वस्तु होती नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! (जैसे) यह परमाणु (लीजिये)। (यद्यपि) यह (अँगुली) तो स्कंध है। (किन्तु) टुकड़े करने पर उसका आखिर का point - (एक रजकण रहता है वह परमाणु है)। (उसमें) नित्य रहनेवाला जो घ्रुव प्रवाह (है) उसे द्रव्य कहते हैं। (उसके) साथ रहनेवाले (उसके ही) वर्ण-रस-गंध और स्पर्श (हैं) उन्हें गुण कहते हैं और उस परमाणु में वर्तमान पर्याय के बाद होनेवाली पीछे पीछे की पर्याय - इस प्रकार क्रमश: होनेवाली पर्याय - उन द्रव्य के विशेष - भेद को पर्याय कहते हैं।

द्रव्य के (जो) विशेष क्रमश: होते (हैं) उन्हें पर्याय कहते हैं। द्रव्य के (जो) साथ रहनेवाले विशेषों को गुण कहते हैं। इसकी कहाँ कभी भी गरज की है ? मिथ्यात्व और राग-द्वेष की मज़दूरी कर के... वह मज़दूरी (है) हाँ ! पर की क्रिया नहीं। (क्योंकि) पर की क्रिया उसने कभी भी की नहीं। मात्र राग-द्वेष और `यह मैंने किया' - ऐसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष की मज़दूरी उसने की है। आहाहा !

प्रश्न :- मज़दूरी के पैसे कितने आये ?

समाधान :- भटकने का आया वह मज़दूरी का पैसा (है)। आहाहा ! चारगति में भटक भटककर मरना वह उसकी मज़दूरी का फल आता है। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु क्या है। वह (टीका की) अंतिम तीन पंक्ति में कहा गया है। (किन्तु) उसे यहाँ विशेष स्पष्ट करते हैं। टीका में है यह बात हो गयी है परंतु अभी तो अपनी चलती भाषा में विशेष स्पष्ट करते हैं।

(कहते हैं कि) `**क्रमश: होनेवाले भेद वे पर्याय हैं।**' आत्मा में भी क्रम-क्रम से पर्याय होती (हैं)। पर्याय क्रमश: होती (हैं)। (और) उस पर्याय रहित द्रव्य होता नहीं। किसी

भी काल में पर्याय रहित द्रव्य होता नहीं और वह पर्याय भी द्रव्य के बिना होती नहीं। आहाहा ! यह वस्तुस्थिति (है)। प्रवचनसार है। (अर्थात्) यह भगवान की दिव्यध्वनिमें से निकला हुआ सार है। आहाहा ! (उस) तत्त्व को लोजीक - (न्याय से) - युक्ति से सिद्ध करते हैं।

क्रमश: होनेवाले विशेष को भेद को पर्याय (कहते हैं)। **'ऐसे द्रव्य, गुण और पर्याय की एकता से रहित कोई वस्तु नहीं होती।'** कहिये ! अब ऐसी तो एकदम सरल भाषा है ! आहाहा ! आत्मा और परमाणु भिन्न-भिन्न है, किसी को किसी से संबंध नहीं। शरीर के रजकण और भगवानआत्मा में (भी) कोई संबंध नहीं। वास्तव में आत्मा ने इस शरीर के रजकण को छूआ भी नहीं और छू भी नहीं सकता, और जो इस शरीर के रजकण हैं वे (भी) आत्मा को छूते नहीं, स्पर्श किये नहीं, चुंबे नहीं और छू सकते (भी) नहीं। आहाहा ! (जिस प्रकार) शरीर के परमाणु को छूते नहीं उसी प्रकार पैसे के, गहने के आदि के जो परमाणु हैं (उनको भी छूते नहीं)।

वे परमाणु नित्य रहनेवाली वस्तु हैं और उनके - परमाणु के विशेष, भेद वर्ण-गंध-स्पर्श हैं कि (जो) द्रव्य के साथ नित्य रहनेवाले विशेष हैं उन्हें, गुण कहते हैं और उन परमाणु में नवीन-नवीन, क्रमश: होनेवाली दशा (पर्याय हैं)। जिस प्रकार परमाणु की इस समय दशा है, पहले परमाणु की दशा मिट्टी की थी। मिट्टीमें से गेहूँ की हुई। गेहूँमें से आटे की हुई, आटेमें से रोटी की हुई और रोटी में से इस समय इस लहूँ की अवस्था है। वह क्रमश: हुई है। (क्योंकि) मिट्टी की अवस्था थी तब इस गेहूँ की अवस्था नहीं थी। आहाहा ! वह मिट्टी की अवस्था थी तब मिट्टी की अवस्था, बाद में पलटकर जब गेहूँ की अवस्था हुई तब वह गेहूँ की अवस्था हुई। (इस प्रकार) क्रम-क्रम से है। एक साथ (सब) पर्याय नहीं होती।

वह पर्याय उसके क्रम अनुसार होती (है) और उस क्रम पर्याय रहित द्रव्य होता नहीं, अर्थात् दूसरा द्रव्य उसकी पर्याय को करता (है) वह बात तद्दन मिथ्या भ्रम है। आहाहा ! क्योंकि वस्तु द्रव्य-गुण और पर्यायसहित है। पर्यायसहित यानी कि कार्यसहित है। द्रव्य-गुण कारण है और पर्याय (है वह) कार्य है। उस कारण-कार्यसहित वस्तु है। (अत:) उसकी पर्याय को दूसरा करता है - (शरीर को) आत्मा चलाता है - ऐसा तीनोंकालों में होता नहीं। आहाहा ! इस दाढ़ को इस प्रकार आत्मा हिलाता है (वह) तीनोंकालों में होता नहीं। (क्योंकि) उन परमाणु की क्रम-क्रम से होनेवाली अवस्थासहित वह परमाणु है। आहाहा !

(किन्तु अज्ञानी तो) सारा दिन यह किया, यह किया और यह किया - देश की

सेवा की और कुटुंब का पोषण किया (तथा) बहुत पैसेवाले हैं अत: लोगों को आजीविका मिले इसलिये बहुत नौकर रखते हैं - (ऐसा मानता है)। आहाहा ! भ्रमणा है अज्ञानी की।

प्रश्न :- स्वयं ज्ञान का स्वामी होने पर भी भूला कैसे ?

समाधान :- स्वयं ही अपने विषय में भूला है। 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' - स्वयं भूल की है। उसको किसी ने करायी नहीं।

प्रश्न :- किन्तु करी क्यों ?

समाधान :- कैसे क्या ? विपरीत दृष्टि के कारण (भूला) है। आहाहा ! यह सिद्धांत यदि समझता है तो (भूल टल जाये)। कोई भी द्रव्य उसकी क्रमश: पर्यायरहित होती नहीं। तो, उस पर्याय को यह दूसरा द्रव्य करता है यह प्रश्न ही नहीं - एक परमाणु की पर्याय को दूसरा परमाणु करता है - ऐसा नहीं होता। क्योंकि वह परमाणु क्रमश: पर्यायरहित होता नहीं। वह परमाणु गुण के विशेषरहित होता नहीं। (वैसे ही) वह परमाणु क्रमसर पर्यायरहित होता नहीं। अत: उसकी पर्याय को दूसरा परमाणु करता है या दूसरा आत्मा करता है ऐसा तीनकाल में होता नहीं। अब ऐसी बातें हैं !

आहाहा ! परमाणु की पर्याय जिस काल में जिस प्रकार होनेवाली हो उस प्रकार होती है। (किन्तु) यह समाधान कौन करता है ? (जिसने) वस्तुस्थिति जानी हो वह समाधान करता है। आहाहा ! भाई ! जो परमाणु है उसकी उस समय पर्याय बिगड़नेवाली थी - उस क्रम में पर्याय होने का उसका काल था - तो वह हुई है। वह दूसरे से हुई नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। (क्योंकि) दूसरी चीज तो उस परमाणु को छूई (भी) नहीं।

यह किस प्रकार मानना ?

क्योंकि एक द्रव्य और दूसरे द्रव्य के बीच में अभाव है। इस अँगुली में यह (दूसरी) अँगुली का अभाव है। तब तो वह - स्वयं का भाव है और इसका (दूसरे का) उसमें अभाव है तब (तो) वह - टिक रही है। वैसे प्रत्येक तत्त्व स्वभाव से अस्ति है और परवस्तु की उसमें नास्ति - अभाव है। अभाव होने से परवस्तु उसे छूती नहीं। अब ऐसी बातें (हैं) !

यह जो पैर है वह नीचे भूमि को छूता नहीं और चलता है, पैर को भूमि का आधार नहीं। क्योंकि पैर के परमाणु है वह नित्य रहनेवाला प्रवाहरूप है और उसके वर्ण-गंध-रस आदि गुण - विशेष भी नित्य रहनेवाले, सहवासी, सहभावी(रूप) हैं और उस काल में उसकी यह क्रमभावी पर्याय (है)। पैर इस प्रकार चलता है वह परमाणु की क्रमभावी पर्याय के कारण होता है। वह नीचे (भूमि को) छूता नहीं। (और) आत्मा उसे

करता (भी) नहीं। (किन्तु) परमाणु की क्रमभावी पर्याय में उस परमाणु की (वैसी) पर्याय होती है। ऐसा मार्ग है बापू ! - तत्त्व की वस्तु ऐसी कोई स्वतंत्र है। आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि क्रमश: होनेवाले विशेष... विशेष क्यों कहा ? क्योंकि जो वस्तु है वह सामान्य है, एकरूप वस्तु (है)। परमाणु या आत्मा, सामान्य एकरूप (है) और उसके जो गुण हैं वे विशेषरूप - भेदरूप हैं, विशेष भेदरूप हैं। गुण विशेष भेदरूप (हैं) किन्तु सहभावी हैं, साथ रहनेवाले (हैं)। **द्रव्य के साथ रहनेवाले विशेष - भेद को गुण कहते हैं।** (जब कि) **जो विशेष क्रमश: होते हैं उन्हें पर्याय कहते हैं।** (यद्यपि) वह (भी) विशेष और भेद है। आहाहा ! भारी कठिन काम !

इस होंठ की पर्याय ऐसे हिलती है न ! (तो) वह इस जीभ के कारण नहीं और आत्मा के कारण (भी) नहीं, (क्योंकि) वह उसकी पर्याय का क्रम है। यह परमाणु है (वह) नित्य रहनेवाले (हैं) और उसके गुण - विशेष हैं वे भी सहभावी - साथ ही हैं और उसकी यह क्रमश: - एक के बाद एक पर्याय होती है वह उसका पर्याय विशेष है, वह पर्याय उसका विशेष है। (किन्तु) दूसरे परमाणु का या दूसरे आत्मा का वह विशेष नहीं। आहाहा ! भाषा तो सरल है। वस्तु तो जो है सो है बापू ! आहाहा! अरे ! उसने कभी भी तत्त्व क्या है उसका विचार भी नहीं किया। अरे...! उसे कहाँ जाना है ? आहाहा !

नित्य रहनेवाला प्रवाह वह द्रव्य (है)। उसके साथ रहनेवाले विशेष - भेद वे गुण (हैं) और उसमें क्रम से होनेवाले विशेष को पर्याय कहते हैं। ऐसा द्रव्य-गुण और पर्याय का स्वरूप है। आहाहा ! **'ऐसे द्रव्य, गुण और पर्याय की एकता से रहित कोई वस्तु नहीं होती।'** बापू ! यह कोई कहानी नहीं। आहाहा ! यह तो सिद्धांत (है)। सर्वज्ञ, परमात्मा, परमेश्वर ने जाना - देखा वैसा कहा (है)। (जो) कहा वह यह प्रवचनसार (है)। जाना - देखा वह स्वयं के भाव में (है)। आहाहा ! किन्तु कहा वाणी ने, उसके भी वे कर्ता नहीं। वाणी की पर्याय उस काल में होती (है)। वह वाणी के परमाणु नित्य रहनेवाले - ऊर्ध्वप्रवाह (है)। उसके विशेष जो वर्ण-गंध आदि हैं वे (विशेष) गुण हैं और पर्याय क्रमश: होती (है) वह उसकी पर्याय (है)। अर्थात् परमाणु की जो भाषा की पर्याय, क्रमश: आनेवाली है वह स्वयं से हुई है। आत्मा से नहीं (और) होंठ से (भी) नहीं, ऐसी बातें हैं ! उसके स्वयं के अस्तित्व में रहकर, द्रव्य-गुण-पर्यायरूप वस्तु है। पर के अस्तित्व को तो वह छूता भी नहीं। आहाहा !

प्रश्न :- वीतरागदेव तो हितोपदेशकर कहने में आते हैं।

समाधान :- भाषा तो - निमित्त से कहने में आते हैं। बाक़ी वे तो सर्वज्ञ, जाननहार, देखनहार हैं। (तथापि) निमित्त से कथन ऐसा आता है। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) **`ऐसे द्रव्य-गुण और पर्याय की...'** ऐसे द्रव्य, गुण और पर्याय अर्थात् ? (कि) **नित्य प्रवाह में रहनेवाला** (वह) **द्रव्य। उसके विशेष - भेद वे गुण** (**और**) **उसके विशेष** (**कि जो**) **क्रमशः होते** (**हैं**) **वे पर्याय** (**हैं**)**। - `ऐसे द्रव्य, गुण और पर्याय की एकता से रहित कोई वस्तु नहीं होती।'** (यानी कि) अनंत परमाणु या अनंत आत्मा जो हैं वे, प्रत्येक भिन्न (हैं)। (वह वस्तु) स्वयं के द्रव्य, गुण और पर्यायरहित नहीं होती। (अर्थात्) द्रव्य, गुण हो किन्तु पर्याय नहीं हो या पर्याय हो परंतु द्रव्य-गुण नहीं हो ऐसा नहीं। आहाहा ! भाई ! यह तो महा सिद्धांत हैं। कठिन लगे ऐसा (है)। किन्तु बापू ! मार्ग तो यह है। वस्तु की मर्यादा (यह है)।

वस्तु की मर्यादा वह उसकी मर्यादा (है) और वह द्रव्य, गुण, पर्याय में है। (अतः) उसे दूसरा गुण या दूसरा द्रव्य कुछ करे ऐसी वस्तु की मर्यादा नहीं। आहाहा ! क्या सिद्धांत ! (किन्तु अज्ञानी को तो) सारा दिन सुबह से शाम तक यह किया और यह किया और इसका किया - पुत्र की देखभाल की और स्त्री की देखभाल की और उसे खुश रखा (वैसा मानता है)। लड़के का उचित स्थान पर विवाह किया, लड़कियों को उचित स्थान पर विवाह करने का भाव-राग किया (है)। दुकान के कार्य में यह माल इस प्रकार रखूं, यह माल इस प्रकार व्यवस्थित करना (ऐसे भाव करता है)। आहाहा! अज्ञानी ऐसा मानता है कि हमारा ये सब हैं... (किन्तु) उसके पास ये (संयोग) हैं। उसके हैं ऐसा नहीं। आहाहा ! `वह मकान में रहता है' उसमें ऐसा कहना है कि इसके पास (संयोगरूप) यह मकान है, किन्तु मकान उसका है ऐसा नहीं। भारी कठिन बातें (हैं), बापू ! आहाहा !

`ऐसे द्रव्य, गुण और पर्याय की एकता से रहित कोई वस्तु नहीं होती।'** (अर्थात्) परमाणु, आत्मा, आकाश या धर्मास्ति या छः द्रव्य, (ऐसे द्रव्य, गुण और पर्याय की एकता के बिना नहीं होते)। आहाहा ! `दूसरी रीति से कहा जाये तो, वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है।' कहिये समझ में आया ? आहाहा ! है ? टीका में है न ? कि **`उत्पादव्ययध्रौव्यमयास्तित्वेन'** और (**`उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्') - वह तत्त्वार्थ सूत्र का है। (अध्याय-५ सूत्र-३०)

क्या कहा वह ? (कि) पहले प्रत्येक के द्रव्य-गुण और पर्याय को सिद्ध किया। अब `दूसरी रीति से कहा जाये तो,' (अर्थात्) इस प्रकार बदलकर (कहे तो) **`उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'** - जिस पर्याय को पहले क्रमशः अंत में कहा था उसे यहाँ उत्पाद में पहले लिया है। नवीन अवस्था हुई उसे उत्पाद (कहते हैं)। पूर्व की अवस्था बदली उसे व्यय (कहते हैं)। तथा नित्य रहा उसे ध्रुव (कहते हैं)। आहाहा!

अरे ! ऐसा मनुष्यभव मिला (और यदि यह नहीं किया तो कहाँ जायेगा ?)। उसके

एक-एक समय की कीमत क्या कहना बापू ! त्रसपना (मिले) - निगोदमें से निकले और त्रस हो - इल्ली हो - तब भी शास्त्र कहते हैं कि चिंतामणी रत्न उसे मिला। निगोदमें से निकलकर त्रस हो - दो इन्द्रिय इल्ली हो - (तब भी जाने चिंतामणी रत्न मिला) ! आहाहा ! लहसून और प्याज के एक छोटे टुकड़े में असंख्य तो औदारिक शरीर हैं और एक औदारिक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए हैं उनसे अनंतगुणें जीव (हैं)। आहाहा ! ऐसे भान रहित जीव अनंतबार इसी तरह भटका है।

वास्तविक तत्त्व की मर्यादा (इस प्रकार है) और उस मर्यादा को जानकर फिर दृष्टि द्रव्य की करनी। आहाहा ! आत्मा के द्रव्य, गुण और पर्याय की मर्यादा उसकी स्वयं में है - ऐसा जानकर दृष्टि तो द्रव्य की करनी है। (क्योंकि) नित्य रहनेवाले तत्त्व की दृष्टि करे तब उसे सम्यग्दर्शन होता है, आहाहा ! समझ में आया? किन्तु इस प्रकार की मर्यादा को जाने तो सम्यग्दर्शन होता है)।

सम्यग्दर्शन की पर्याय (होती है) किन्तु उस काल में... उसका लक्ष (द्रव्य पर है) इतना। किन्तु उस काल में वह पर्याय क्रमश: होनेवाली थी (तो) हुई (है)। (अब) उसका गुण है - श्रद्धागुण है - उसका द्रव्य के साथ सहभावी साथ है और समकित (पर्याय) है वह क्रमभावी पर्याय है - क्रमभावी विशेष है। (जब कि गुण) सहभावी विशेष है। आहाहा ! (अज्ञानी को ऐसा लगता है कि यह) किस प्रकार की भाषा ? ऐसा है बापू ! आहाहा ! यहाँ तो भाई ! सत्य हो तो (संमत होता है)। (बाक़ी) असत्य बात किसी प्रकार से संमत नहीं होती।

अरे प्रभु ! इस तत्त्व को तो देखो ! आहाहा ! ऐसा तत्त्व (है)। द्रव्य, गुण, पर्याय की एकता से रहित तत्त्व - वस्तु नहीं होती। **`दूसरी रीति से कहा जाये तो, वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है।**' (अर्थात्) प्रत्येक तत्त्व, प्रत्येक वस्तु - आत्मा, परमाणु, आकाश इत्यादि - पर्याय से **`उत्पन्न होती है**' (यानी कि) नवीन पर्याय से - अवस्था से उत्पन्न होती है, पुरानी अवस्था से **`नष्ट होती है**' और ध्रौव्य से वह **`स्थिर रहती** है' आहाहा ! कैसी सरल भाषा और सरल तत्त्व !

`इसप्रकार वह द्रव्य-गुण-पर्यायमय**' (यहाँ पर) `द्रव्य-गुण-पर्यायवाली' ऐसा नहीं कहा। (किन्तु) **`द्रव्य-गुण-पर्यायमय और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय होने से...**' दो प्रकार से बात कही न ? **`उसमें क्रिया (परिणमन) होती ही रहती है।' उस वस्तु में समय-समय पर परिणमन और क्रिया होती ही रहती है। (क्योंकि) परिणमन और क्रिया रहित वह वस्तु हो सकती नहीं। आहाहा ! कहिये ! पकड़ में आता है या नहीं ? भाई! भाषा तो सरल है। बापू ! व्यापार से यह सब अलग जाति की बात है।

अरे प्रभु ! तुम कौन हो ? कहाँ हो ? आहाहा ! भाई ! तेरे में दशा-अवस्था होती है वह पर के कारण होती है ? राग होता है वह कर्म के कारण है ? आहाहा ! सम्यग्दर्शन होता है वह कर्म के अभाव के कारण होता है (यह) बिलकुल झूठ है। आहाहा ! (क्योंकि) वह पर्याय उस गुण की - द्रव्य के साथ रहनेवाला सहभावी जो श्रद्धागुण है उसका परिणमन यानी कि क्रिया (है) और सम्यग्दर्शन का परिणमन - क्रिया हो, उस क्रिया - परिणमन से रहित वह वस्तु नहीं होती। (अर्थात्) उस सम्यग्दर्शन की पर्याय से रहित वह वस्तु नहीं होती। अर्थात् (इसप्रकार) उस परिणमन को परद्रव्य ने किया या परद्रव्य था इसलिये यह क्रिया - परिणमन हुआ और परद्रव्य नहीं होता तो परिणमन (नहीं होता ऐसा नहीं)। परिणमन तो नित्य (उसका होता ही है)। किसी भी समय परिणमन से रहित द्रव्य होता ही नहीं। आहाहा !

ऐसा सिद्धांत है ! पहले तो भाई ! दया पालो और सामायिक करो वह सरल था ! अरे बापू ! तुझे कोई ख़बर नहीं। (सामायिक की) वह भाषा है वह जड़ की है और उसमें विकल्प होता है वह राग है, और तू अंदर में जाननेवाला है वह भिन्न है। ऐसा है भाई ! आहाहा ! होता है, राग भी होता है। किन्तु ज्ञानस्वरूपी आत्मा को जिसने जाना है वह राग का - ज्ञायक रहता है और जिसने राग और आत्मा भिन्न है ऐसा जाना नहीं वह राग का अज्ञान से कर्ता होता है। आहाहा ! है तो वह पर्याय किन्तु उस समय में रागरूप होगी और उस समय में 'राग मेरा' इस प्रकार मिथ्यात्व भी होगा। वह पर्याय मेरी है - ऐसा वह मानता है। आहाहा ! है तो पर्याय उसकी। किन्तु द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से वह राग की पर्याय उसकी नहीं। (किन्तु) पर्याय की अपेक्षा से (राग) उसमें है। द्रव्य, गुण, पर्यायसहित (वस्तु) है अत: (राग उसका) है। किन्तु जब दृष्टि द्रव्य पर गई - वास्तविक ज्ञायक का स्वरूप है उसमें दृष्टि गई - तब राग की पर्याय उसमें है उसका वह ज्ञायक रहता है। (अर्थात्) जाननेवाली की पर्याय उसके क्रम में आयी। आहाहा ! जाननेवाली पर्याय क्रम (में आयी है)। ४७ शक्ति में लिया है न भाई? क्रमभावी और अक्रम; - तो वहाँ क्रमभाव में राग नहीं। क्योंकि समयसार में जो शक्ति का वर्णन है वह द्रव्यदृष्टि का वर्णन है।

आहाहा ! नित्य रहनेवाला जो द्रव्य है उसमें गुणों की अनंत शक्ति है। ऐसे शक्तिवंत आत्मा की जिसको दृष्टि हुई उसको क्रम में निर्मलपर्यायें ही होती हैं। उसके क्रम में राग आता (है) वह उसका नहीं। आहाहा ! एक तरफ यहाँ ऐसा कहा कि जो राग की पर्याय क्रम में आती (है) उस पर्यायसहित द्रव्य होता (है) और दूसरी तरफ सुबह में ऐसा आया था कि जब सम्यग्दर्शन हुआ - वस्तु जो त्रिकाली भगवान सच्चिदानंद

प्रभु है उसको जब ग्रहण किया और जाना - तब उसका परिणाम वह जो राग होता है उसे जाननेवाला ही रहता है (और तथापि वह जानने की पर्याय) राग के कारण नहीं। अरे ! उसे कितना पलटना (पड़ेगा) ! कितना बदलना (पड़ेगा)!

वस्तु में क्रिया अर्थात् परिणमन (होता है)। (अर्थात्) वस्तु जो द्रव्य और गुण है वह नित्य है और पर्याय अर्थात् जो क्रिया होती (है) वह। उस क्रिया रहित यानी कि परिणमन रहित कोई वस्तु हो सकती नहीं और उस परिणमन में पर का कारण नहीं। क्योंकि वह तो परिणमन क्रमश: होनेवाला था वह हुआ है और वह परिणमन, गुण और द्रव्य मिलकर वस्तु कहलाती है। अत: उस परिणमती पर्याय को दूसरा तत्त्व बदल सके (ऐसा नहीं)। वह बदलती हुई पर्याय तो स्वयं से हुई है, (तो) उसे दूसरा बदले - वह तीनकाल में होता नहीं। आहाहा ! यह तो भारी कठिन काम है ! सारा दिन व्यापार करे, धंधा करे, कपास के बड़े धंधे में गाड़ी उतारे, कपास लावे, आहाहा ! हमारे पालेज में तो हज़ार-हज़ार गाड़ी हररोज आती थी। एक-एक गाड़ी का हज़ार-हज़ार रुपया कमाये। उन दिनों में नोट नहीं थे। कलदार थे। उसमें एक दिन ऐसा हुआ, हमारी दुकान के पास दूसरी दुकान थी। वहाँ कोई माल लेता था और उसकी एक हज़ार रुपये की थैली ऐसी पड़ी थी। इतने में एक आदमी थैली में पत्थर के टुकड़े भरके लाया, उसका ध्यान दूसरी तरफ गया इतने में रुपये की थैली उठाकर, पत्थर के टुकड़े की थैली रख दी, थैली खोलकर देखने जाता है तो - उसे ऐसा हुआ कि, यह क्या ? अंदर देखता है तो पत्थर के टुकड़े। किन्तु वह पर्याय उसके क्षेत्रांतर होने के काल में हुई।

श्रोता :- असावधानी हो तब होता है ?

समाधान :- बिलकुल झूठ बात। ध्यान नहीं रखा इसलिये पैसे गये वह बात झूठ है। उन पैसे गुण और उनकी पर्याय - क्रमश: होनेवाली पर्याय - उसकी है। (अत:) उस क्रम में होनेवाली - पैसा जाने की पर्याय भी उनकी क्रियावर्ती शक्ति से हुई है। (अत:) दूसरा ले गया (है वह) ले सकता ही नहीं। यह अब ऐसी बातें हैं ! दुनिया तो पागल ही कहे न ! पागल लोगों तो पागल ही कहे ऐसा है।

आत्मा को पंगु बना दिया। पंगु पर के लिये। (बाक़ी) अपने लिये तो शक्तिवान है। आहाहा ! (कहते हैं कि) `उसमें क्रिया (परिणमन) होती ही रहती है।' किसमें? (कि) वस्तु में - आत्मा में (और) परमाणु में। (अत:) उसे दूसरा कोई परिणमित करे है (या उसकी) क्रिया करे ऐसा संभव नहीं। यह लिखने की क्रिया आत्मा कर सकता या नहीं ? नहीं। उस कलम को आत्मा हिला सकता है ? नहीं। वह कलम हिलती है और अँगुली ने उसे पकड़ा है। तो अँगुली उसे हिलाती है ? नहीं।

प्रश्न :- अँगुली ने कलम को पकड़ रखा है वह बात तो सच है न ?

समाधान :- (अँगुली ने कलम को) पकड़ रखा है वह बात झूठ है। (क्योंकि) वह तो स्वयं के कारण जुदी ही पड़ी है। आहाहा ! गज़ब बातें हैं। बापू ! यह कहा न? कि पैर चलता है (वह भूमि को छूता नहीं)। यह शरीर जो रहा है वह तख्त के आश्रय से रहा नहीं।

प्रश्न :- गद्दी के आश्रय से रहा है ?

समाधान :- गद्दी के आश्रय से (भी) रहा नहीं। वह परमाणु की पर्याय स्वयं के आश्रय से वहाँ रही है। ऐसी बात (है)। सत्य तत्त्व तो ऐसा है बापू ! आहाहा! यह पुस्तक (ठवणी के) आश्रय से रही नहीं। (क्योंकि) उस पुस्तक के जो एक-एक-एक परमाणु है उसमें आधार नामक गुण है। (अत:) उसकी पर्याय के आश्रय से वह परमाणु रहा है। आहाहा ! यह पन्ना दूसरे पन्ने के आश्रय से रहा नहीं। क्योंकि इस पन्ने के जो परमाणु हैं उनमें, आधार नामक गुण है। अत: आधार नामक गुण की पर्याय के आश्रय से वह परमाणु वहाँ रहा है। आहाहा ! ऐसी बात (है)। कभी भी सुनी नहीं हो।

अज्ञानी मानता है कि (हम कार्य करते हैं)। अरे ! वह तो विकल्प करता है कि हम बहुत चतुर हैं अत: पैसा आता है। दुकान में नौकर होते हैं और मैं सावधानी रखता हूँ इसलिये वह कार्य व्यवस्थित चलता है, - वे सब बातें मिथ्या भ्रम हैं। आहाहा ! वह जड़ की पर्याय तो जड़ के काल में होनेवाली है (वह होगी)। अरे प्रभु ! अब यह बात सुनने को भी नहीं मिलती तो ग्रहण किस प्रकार हो ?

(अज्ञानी) तो कहता है कि कर्म के कारण विकार होता है। (अर्थात्) शुभभाव होता है वह कर्म के कारण होता है और शुभभाव के कारण धर्म होता (है) - शुद्धता होती (है)। आहाहा ! गज़ब करते हो ! प्रभु ! तुम यह क्या कह रहे हो ? कर्म है इसलिये हमको शुभाशुभभावरूप अपराध होता है। और शुभभाव होता है (उससे हमको धर्म होता है)। (यानी कि) दया, दान, व्रत के परिणाम हुये वह कर्म के कारण हुये हैं और फिर जो शुभभाव हुए हैं उनके कारण से धर्म होगा - (ऐसा अज्ञानी कहता हैं)। आहाहा ! विपरीतता गज़ब की करता है न ? महाविपरीत मान्यता का पोषण करता है। अरे प्रभु ! अभी तुझे नुकशान हो रहा है। आहाहा भाई ! और उसका फल भी भविष्य में नुकशान का मिलेगा। आहाहा ! स्वयं अपना नुकशान करता है, `अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' आहाहा ! उसे भूलाता कौन है ? स्वयं स्वयं को भूलता है। आहाहा ! और भूलकर भटकता है। श्रीमद् राजचंद्र में एक वचन आता है कि `(तेरे दोष से तुझे बंधन है यह संत का पहला उपदेश है। तेरा दोष इतना ही कि अन्य को अपना मानना, और

अपने आपको भूल जाना)'

आहाहा ! तेरे परिणाम तूने किये हैं। और उन परिणाम में भूल भी तूने की है। भूल तेरी है और तू अपनी भूल के कारण भटकता है। तेरी भूल के कारण तू भटकता है और यह भूल तुम्हारी की हुई है - ऐसा आचार्य कहते हैं। आहाहा! आचार्य कहते हैं कि तेरी भूल के कारण तू भटकता (है)। समझ में आया ? और वह भूल तूने की है। किसी कर्म ने करायी है ऐसा नहीं। आहाहा ! ऐसा है, एक-एक गाथा और एक-एक शब्द... बापू ! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की वाणी है - दिव्यध्वनि (है)। उसमें से यह प्रवचनसार आया है। आहाहा !

'इसलिये परिणाम वस्तु का स्वभाव ही है।' क्या सिद्ध किया ? कि प्रत्येक द्रव्य-परमाणु या आत्मा - अपने परिणाम रहित (अर्थात्) क्रिया रहित होता नहीं। अत: वह क्रिया - परिणाम वस्तु का स्वभाव है। आहाहा ! पर्याय वह प्रगट है (और) यह वस्तु का स्वभाव है। उस प्रगट पर्याय से रहित वस्तु हो सकती नहीं। आहाहा !

प्रश्न :- यह सब समझने की क्या ज़रूरत है ?

समाधान :- जिसको तत्त्व समझना हो तो, उसे सत्य जिसप्रकार है उसप्रकार समझना पड़ेगा। जिसप्रकार सत्य है उसप्रकार समझे तो सत्यज्ञान होगा। (और) जिस प्रकार है उससे विपरीत मानेगा तो भटक भटक दु:खी होगा। आहाहा! नरक और निगोद के भव बापू ! आहाहा ! वह नरक में अनंतबार गया प्रभु ! उसमें ३३-३३ सागर की (आयुष्य में) अनंतबार तूने अवतार लिया है। आहाहा ! एकबार नहीं (किन्तु) अनंतबार। भाई ! तू भूल गया है। (किन्तु) भूल गया है इसलिये नहीं ऐसा कैसे कहा जाये ? भाई ! जन्म के बाद छ: महीने - बारह महीने तक कैसा था उसकी ख़बर है ? नहीं। (तो) भूल गया है इसलिये वह दशा नहीं थी ? आहाहा! छ: महीने - बारह महीने तक माता ने क्या किया ? कि नहलाया-खिलाया वह ख़बर नहीं है। ख़बर नहीं है इसलिये नहीं था ऐसा किसप्रकार कहा जाये प्रभु ? आहाहा! (उसीप्रकार) उस नरक के दु:खों का वर्णन करने पर प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि उसके एक क्षण के दु:खों को करोड़ों जीभों से और करोड़ों भव तक कहे तो भी कहा नहीं जा सकता। इतना दु:ख प्रभु ! तुझे था। एक क्षण में हाँ ! ऐसे ऐसे तो पल्योपम और सागरोपम (काल तक) दु:ख भोगे हैं प्रभु ! किन्तु क्या करे! बेचारा भूल गया। आहाहा ! यहाँ आया और ये पाँच-पचीस लाख (रुपये की) धूल मिली और कहीं स्त्री अच्छी मिली, अच्छे लड़के हुए (इनमें भूल गया)। आहाहा !

किसी आदमी ने कहा है न कि अकेला था तब दो पैर थे, वहाँ तक मनुष्य था।

(अब) स्त्री से विवाह किया तब चार पैर हुये अत: वह पशु हुआ और (अब) लड़का हुआ तब छ: पैर हुये तो भौंरा हुआ। भौंरे को छ: पैर होते हैं। (और) अब उस लड़के का विवाह किया तब आठ पैर हुये। तो वह मकड़ी हुआ, मकड़ी को आठ पैर होते (हैं)। (अब) मकड़ी हुआ अत: लार निकालकर जाल बनाता है - सारा दिन यह किया और यह किया ऐसा करता है। मर गया ! (आत्मा को)! मार डाला!

मैं मकड़ी हुआ ऐसा कोई मानता नहीं, किन्तु उसी के लिये तो यह कहने में आता है और कैसे मनायें ? अरे भाई ! तुम आत्मा हो न प्रभु ! तुझे यह मनुष्य के दो पैर मिले (हैं) तो तुझे मनुष्य कहते हैं। (और) पशु को चार पैर होते हैं। तो स्त्री से विवाह किया तब उसे चार पैर हुये। तू (स्त्री को) अर्धांगना कहता है। तो भगवान ऐसा कहते हैं कि अब चार पैर हुये तो पशु हुआ, अब दुर्घटना चालू हो गई। स्त्री से विवाह किया अत: अब दुर्घटना चालू हो गई कि इसे प्रसन्न रखूं और इसे ऐसा करूं। आहाहा ! वह तो उसने पूरी दुर्घटना स्वीकार कर ली। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु ! तुम एक हो न ! (तो) एक में `शरीर मेरा' ऐसा दोपना हुआ तो बिगाड़ हुआ। `एकडे एक ने बगडे बे।' आहाहा ! अरे प्रभु ! तुम तो एक ज्ञायकस्वरूप हो न ! (तो) उसमें राग-विकार है वह मेरा है (ऐसा मानना) वह तो बिगाड़ हुआ मिथ्यात्व हुआ। आहाहा ! ऐसी बात है। `बगडे बे' ऐसा आता है न? (तो) दोपना हुआ अत: बिगाड़ हुआ। आहाहा !

उसमें (तास में)`इक्का' जीतता है न ? क्या कहते हैं तुम्हारा ? (तास)। तास में इक्का जीतता है। बादशाह से भी इक्का ऊँचा (होता है)। आता है न उसमें ? बादशाह, रानी, गुलाम और इक्का - उन चार में इक्का ऊँचा है। वैसे दृष्टि में इक्का नाम एकरूप - स्वरूप भगवान आत्मा को लेने पर, वह इक्का जीतेगा। किन्तु उसे यदि दोपनेवाला मानेगा तो विकल्प उठेगा। (और) तू हार जायेगा बापू ! आहाहा! ऐसा अब मनुष्य को (समझना) !! यह स्त्री-पुत्र का लालन-पोषण करना या यह करना?

यहाँ कहते हैं कि एक पर्याय को दूसरी पर्याय करती है ऐसा जो कहता है वह झूठ बोलनेवाला है। आहाहा ! यह १०वीं गाथा हुई। अब ११वीं गाथा कहेंगे।

a a a

अथ चारित्रपरिणामसंपर्कसम्भववतोः शुद्धशुभपरिणामयोरूपादानहानाय फलमालोचयति -

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं।।११।।

धर्मेण परिणतात्मा आत्मा यदि शुद्धसंप्रयोगयुतः।
प्राप्नोति निर्वाणसुखं शुभोपयुक्तो च स्वर्गसुखम्।।११।।

यदायमात्मा धर्मपरिणतस्वभावः शुद्धोपयोगपरिणतिमुद्वहति तदा निःप्रत्यनीकशक्तितया स्वकार्यकरणसमर्थचारित्रः साक्षान्मोक्षमवाप्नोति। यदा तु धर्मपरिणतस्वभावोऽपि शुभोपयोगपरिणत्या संगच्छते तदा सप्रत्यनीकशक्तितया स्वकार्यकरणासमर्थः कथंचिद्विरुद्धकार्यकारिचारित्रः शिखितप्तघृतोपसिक्तपुरुषो दाहदुःखमिव स्वर्गसुखबन्धमवाप्नोति। अतः शुद्धोपयोग उपादेयः शुभोपयोगो हेयः।।११।।

अथ वीतरागसरागचारित्रसंज्ञयोः शुद्धशुभोपयोगपरिणामयोः संक्षेपेण फलं दर्शयति - **धम्मेण परिणदप्पा अप्पा** धर्म्मेण परिणतात्मा परिणतस्वरूपः सन्नयमात्मा **जदि सुद्धसंपयोगजुदो** यदि चेच्छुद्धोपयोगाभिधानशुद्धसंप्रयोगपरिणामयुतः परिणतो भवति **पावदि णिव्वाणसुहं** तदा निर्वाणसुखं प्राप्नोति। **सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं** शुभोपयोगयुतः परिणतः सन् स्वर्गसुखं प्राप्नोति। इतो विस्तरम् - इह धर्मशब्देनाहिंसालक्षणः सागारानगाररूपस्तथोत्तमक्षमादिलक्षणो रत्नत्रयात्मको वा, तथा मोहक्षोभरहित आत्मपरिणामः शुद्धवस्तुस्वभावश्चेति गृह्यते। स एव धर्मः पर्यायान्तरेण चारित्रं भण्यते। 'चारित्तं खलु धम्मो' इति वचनात्। तच्च चारित्रमपहृतसंयमोपेक्षासंयमभेदेन सरागवीतरागभेदेन वा शुभोपयोगशुद्धोपयोगभेदेन च द्विधा भवति। तत्र यच्छुद्धसंप्रयोगशब्दवाच्यं शुद्धोपयोगस्वरूपं वीतरागचारित्रं तेन निर्वाणं लभते। निर्विकल्पसमाधिरूपशुद्धोपयोगशक्त्यभावे सति यदा शुभोपयोगरूपसरागचारित्रेण परिणमति तदा पूर्वमनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखविपरीतमाकुलत्वोत्पादकं स्वर्गसुखं लभते। पश्चात् परमसमाधिसामग्रीसद्भावे मोक्षं च लभते इति सूत्रार्थः ।।११।।

अब जिनका चारित्र परिणामके साथ सम्पर्क (सम्बन्ध) है ऐसे जो शुद्ध और शुभ (दो प्रकारके) परिणाम हैं उनके ग्रहण तथा त्यागके लिये (शुद्ध परिणामके ग्रहण और शुभ परिणामके त्यागके लिये) उनका फल विचारते हैंः-

गाथा-११

जो धर्म परिणत स्वरूप जिव शुद्धोपयोगी होय तो।
ते पामतो निर्वाण सुख, ने स्वर्ग सुख शुभ युक्त जो।।११।।

अन्वयार्थ :- [धर्मेण परिणतात्मा] धर्मसे परिणमित स्वरूपवाला **[आत्मा]** आत्मा **[यदि]**

यदि **[शुद्धसंप्रयोगयुतः]** शुद्ध उपयोग में युक्त हो तो **[निर्वाणसुखं]** मोक्ष सुखको **[प्राप्नोति]** प्राप्त करता है **[शुभोपयुक्तः च]** और यदि शुभोपयोगवाला हो तो (स्वर्गसुखं) स्वर्गके सुखको (बन्धको) प्राप्त करता है।

टीका :- जब यह आत्मा धर्मपरिणत स्वभाववाला होता हुआ शुद्धोपयोग परिणतिको धारण करता है-बनाये रखता है तब, जो विरोधी शक्तिसे रहित होनेके कारण अपना कार्य करनेके लिये समर्थ है ऐसा चारित्रवान होनेसे, (वह) साक्षात् मोक्षको प्राप्त करता है; और जब वह धर्मपरिणत स्वभाववाला होनेपर भी शुभोपयोग परिणतिके साथ युक्त होता है तब जो विरोधी शक्ति सहित होनेसे स्वकार्य करनेमें असमर्थ है और कथंचित् विरुद्ध कार्य करनेवाला है ऐसे चारित्रसे युक्त होनेसे, जैसे अग्निसे गर्म किया हुआ घी किसी मनुष्य पर डाल जिया जावे तो वह उसकी जलनसे दुखी होता है, उसीप्रकार वह स्वर्ग सुखके बन्धको प्राप्त होता है, इसलिये शुद्धोपयोग उपादेय है और शुभोपयोग हेय है।

भावार्थ :- जैसे घी स्वभावतः शीतलता उत्पन्न करनेवाला है तथापि गर्म घी से जल जाते हैं, इसीप्रकार चारित्र स्वभावसे मोक्ष दाता है, तथापि सराग चारित्रसे बन्ध होता है। जैसे ठंडा घी शीतलता उत्पन्न करता है इसीप्रकार वीतराग चारित्र साक्षात् मोक्षका कारण है।।११।।

दि. १३-१-१९७९ - प्रवचन नं. - ७

प्रवचनसार - ११वीं गाथा। **`अब जिनका चारित्र परिणाम के साथ संपर्क (संबंध) है...'** अर्थात् क्या ? कि जिसको सम्यग्दर्शन और चारित्र के परिणाम हैं उसे अब शुद्ध उपयोग और शुभ उपयोग का संबंध है वह बात लेते हैं। सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्र के परिणाम तो हैं। (अर्थात्) स्वभाव से आश्रय से, दर्शन, ज्ञान और चारित्र के उसे परिणाम हैं, किन्तु उन परिणाम के साथ संपर्क नाम संबंध है ऐसे शुद्ध और शुभ परिणाम (यानी कि) उपयोग की (बात अब करते हैं)। चारित्र के परिणाम - वीतराग परिणाम तो हैं। किन्तु अब उसे शुद्ध उपयोग का संबंध होता (है) और शुभ का भी संबंध होता (है), (उस प्रकार) दोनों की बात करते हैं। समझ में आया **`धम्मेण परिणदप्पा'** - बात तो यहाँ से शुरु की है (कि), धर्म से परिणत आत्मा। (यानी कि) चारित्रवंत तो है...

टीका :- **`जब यह आत्मा...'** जब यह भगवानआत्मा - आनंद और ज्ञानस्वरूपी प्रभु ! **`धर्मपरिणत स्वभाववाला होता हुआ'** (यानी कि) वह चारित्र के परिणामसहित होता हुआ... आहाहा ! अर्थात् जो धर्मपरिणत नहीं उसे शुद्ध उपयोग है, ऐसा नहीं।

`धर्मपरिणत स्वभाववाला होता हुआ...'** आहाहा ! (यानी कि) जिसको आत्मा का सम्यग्दर्शन (हुआ है) - आनंदस्वरूप भगवानआत्मा का जिसको अंतर ज्ञान होकर अनुभव में प्रतीति हुई है - तदुपरांत स्वरूप के चारित्र की परिणाम की दशा प्रगट हुई है। आहाहा! ज्ञान अधिकार है न ? (अत: ऐसा कहते हैं कि) ऐसे चारित्रवान **`धर्मपरिणत स्वभाववाला होता हुआ...' आहाहा ! शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवानआत्मा की प्रतीति, ज्ञान और मग्नता (जिसे है वह) चारित्र के परिणामवाला है। वह **`शुद्धोपयोग परिणति को धारण करता है...'** (अर्थात्) यदि वह शुद्धोपयोग की परिणति में आता है (तो) परिणति तो धर्म-चारित्र की है ही। किन्तु (अब) उसे जब शुद्ध उपयोग (आता है तब) पाठ में है न ? लिखा है कि, **`सुद्धसंपययोगजुदो'।** (तो) **`सुद्धसंपयोगजुदो'** नाम शुद्ध उपयोगवान आहाहा ! वीतरागी शुद्ध उपयोगवान।

चारित्र के परिणाम - वीतरागी परिणति - तो है। किन्तु उसे (अब) विशेष शुद्ध उपयोग (है उसकी बात करते हैं)। (कहते हैं कि) वीतरागी शुद्ध उपयोगरूप परिणतिवान होता है **`तब, जो विरोधी शक्ति से रहित होने के कारण...'** (अर्थात्) जो शुद्ध उपयोगवान (है) उसका विरोधी जो राग है उसकी शक्ति वहाँ नहीं। आहाहा ! कठिन बातें (हैं) !

मैं शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा हूँ (ऐसा) आत्मा का भान - सम्यग्दर्शन-ज्ञान (तो) है। तदुपरांत स्वरूप का आश्रय लेकर विशेष चारित्र परिणाम जिसको प्रगट हुए हैं उस जीव को यदि शुद्ध उपयोग का संबंध हो (तो), कहते हैं (कि) **`विरोधी शक्ति से रहित होने के कारण'** वह शुद्ध उपयोग **`अपना कार्य करने के लिये समर्थ है...'** (अर्थात्) मोक्ष का कार्य करने के लिये शुद्ध उपयोग समर्थ है। क्योंकि शुद्ध उपयोग में विरोधी जो राग (है) उसका अभाव होने के कारण वह शुद्ध उपयोग मोक्ष का कार्य करने में समर्थ है। आहाहा !

`ऐसा चारित्रवान होने से,...'** (यानीकि) शुद्ध सम्यग्दर्शन और शुद्ध परिणति(मय) चारित्रवान होने पर भी, वह यदि शुद्ध उपयोग की परिणतिवान हो तो, (वह) उससे विरुद्ध शक्ति रहित होने से (**`साक्षात् मोक्ष को प्राप्त करता है')। जिससे राग आता है वह तो बंध का कारण है। (जब कि) शुद्ध उपयोग विरोधी शक्ति रहित है (और) केवल निर्मलानंद प्रभु का उपयोग है। आहाहा ! ऐसा होने से **`साक्षात् मोक्ष को प्राप्त करता है:...'** समझ में आया ? आहाहा !

शुद्ध चैतन्यघन प्रभु आत्मा का जिसको सम्यग्दर्शन (हुआ है)। (अर्थात्) जो त्रिकाली

ज्ञायकभाव है उसकी जिसको प्रतीति होकर ज्ञान में ज्ञेय हुआ है (उसे), तदुपरांत चारित्र की वीतराग परिणति भी उत्पन्न हुई है। ऐसे चारित्र की परिणतिवान यदि शुद्ध उपयोग के संबंध में आता है तो वह शुद्ध उपयोग विरोधी शक्ति बंध के कारणरूप राग से विरुद्ध है। आहाहा ! अत: वह शुद्ध उपयोगी जीव मोक्ष को प्राप्त करता है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं ! यदि वह चारित्रवंत शुद्ध उपयोग में प्रवर्तता हो तो, वह शुद्ध उपयोग मोक्ष का कारण है। आहाहा !

(अब कहते हैं कि) **`जब वह धर्मपरिणत स्वभाववाला होनेपर भी...'** देखा ? आहाहा! (जैसे) सम्यग्दर्शन स्व के आश्रय से हुआ है वैसे स्व के आश्रय से तीन कषाय के अभाव की वीतराग परिणति भी हुई है, ऐसा **`धर्मपरिणत स्वभाववाला होनेपर भी...'** वीतरागी चारित्र की परिणति के स्वभाववाला होने पर भी, आहाहा ! **`शुभोपयोग परिणति के साथ युक्त होता है...'** (यानी कि) यदि वह शुभराग में आ जाये - तो.. (अर्थात्) व्रत, तप, भक्ति आदि के परिणाम में - शुभोपयोग से युक्त हो तो, **`तब जो विरोधी शक्ति सहित होने से...'** जो शुभोपयोग-शुभराग है वह निर्वाण के कारण से विरुद्ध शक्तिवाला है, (वैसा कहते हैं)। आहाहा !

सम्यग्दर्शन - अनुभव है, सम्यग्ज्ञान है और तदुपरांत तीन कषाय के अभाव(रूप) धर्म जो चारित्र है उसकी परिणतिवान (भी) है। किन्तु अब जो शुद्धोपयोग का अभाव है तो वह राग बंध शक्ति का कारण है। (राग है) वह बंध के कारणरूप शक्ति है। आहाहा ! (अत:) उसे यदि प्रमाद के, पंचमहाव्रत के, २८ मूलगुण के विकल्प आ जाते हैं तो वह शुभोपयोगवान है (और) वह राग मोक्ष के कारण से विपरीत शक्तिवाला है। आहाहा ! ऐसा है !

(कहते हैं कि) **`शुभोपयोग परिणति के साथ युक्त होता है तब जो विरोधी शक्ति...'** नीचे (मूल शास्त्र में) अर्थ है `दान, पूजा, पंचमहाव्रत, देव-गुरु-धर्म के प्रति राग...' देखिये! यहाँ तो आज ही (जैन अखबार में) आया है कि, `पूजा और व्रत है उसमें कषाय का अभाव है।' ऐसा लिखा है। अरे भगवान ! क्या करता (है) भाई ? आहाहा ! `दान, पूजा, पंच महाव्रत, देव-गुरु-धर्म के प्रति राग इत्यादिकरूप जो शुभोपयोग है...' वह शुभ उपयोग है, राग है। धर्म नहीं। वह पुण्यबंध का कारण है। (तथा) `वह चारित्र का विरोधी है।' चारित्र तो वीतरागभाव है (और) यह शुभोपयोग है वह उसका विरोधी है। आहाहा! पंच महाव्रत के - अहिंसा, सत्य, दान आदि के - परिणाम आते हैं वे भी राग हैं। आहाहा ! भगवान की पूजा का भाव आता है वह भी राग है। (क्योंकि) परद्रव्य के प्रति झुकाव हुआ न ?

स्वद्रव्य के आश्रय से जितना वीतरागभाव है उतनी तो निर्मलता है और तदुपरांत शुद्धोपयोग की परिणति होती है जब तो मोक्ष का कारण है। आहाहा ! ऐसे धर्मपरिणत (स्वभाव)वाला जीव होने पर भी (यानी कि) उसे केवल शुद्धोपयोग नहीं, (किन्तु) धर्मपरिणति (अर्थात्) चारित्रदशा - अंतर आनंदस्वरूप भगवान(आत्मा में) मग्नता - तो प्रगट हुई है। किन्तु जिस काल में उसको शुद्धोपयोग नहीं उस काल में उसे दया, दान, पूजा आदि का भाव, देव-गुरु के विनय का राग, (इत्यादि) शुभोपयोग चारित्र का विरोधी है।

'अत: सराग (अर्थात् शुभोपयोगवाला) चारित्र विरोधी शक्तिसहित है और वीतराग चारित्र विरोधी शक्तिरहित है।' आहाहा ! भारी काम ! इस समय (तो लोग) पूजा, भक्ति, व्रत और तप के (जो) विकल्प (हैं) उसे धर्म मानते हैं अथवा वह धर्म का साधन मानते हैं। (जब कि) यहाँ कहते हैं कि जो राग है वह बंध का साधन है। आहाहा ! धर्मपरिणत जीव होने पर भी (यदि) शुद्धोपयोग रहित (है तो उसे शुभराग होने से बंधन होता है)। जो शुद्धोपयोग (है वह) मोक्ष का कारण है (और) उससे विरोध शक्तिवाला शुभराग है। अत: उस शुभराग से बंधन होता है।

आहाहा ! (कहते हैं कि) शुभराग **'विरोधी शक्ति सहित होने से स्वकार्य करने में असमर्थ है...**' स्वकार्य अर्थात् मोक्ष का कार्य करने में (वह) असमर्थ है। आहाहा! मुनि को - सच्चे संत को - भी यदि शुभयोग आया (तो भी स्वकार्य करने में असमर्थ है)। केवल व्रत और तप करके उसे जो धर्म मानता (है वह तो) मिथ्यादृष्टि (है)। किन्तु यहाँ तो सम्यग्दर्शन में शुद्ध चैतन्यघन (आत्मा के) आनंद का स्वाद (जिसको) आया है - सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आया है - तदुपरांत चारित्र में (भी जिसको) अतीन्द्रिय आनंद का विशेष स्वाद आया है, किन्तु उसे यदि शुद्धोपयोग की विशेष परिणति हो जब तो मोक्ष होता है, किन्तु ऐसा (चारित्र) परिणत जीव भी यदि शुभोपयोग में आ जाता है तो उसे पुण्यबंध होता है और स्वर्ग में जाता है। (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! कहिये समझ में आया ? ऐसा मार्ग सूक्ष्म (है) प्रभु ! क्या करें ? सत्य तो ऐसा है। (उस पर भी लोग ऐसा कहते हैं कि) 'जिनेन्द्र के मार्ग से अज्ञानी लोग, अज्ञानी इस समय इस प्रकार नवीनता बतलाकर धर्म बताते हैं।' प्रभु तुझे क्या हुआ, भाई ? आहाहा !

भगवानआत्मा परमात्मास्वरूप ही बिराजमान है। आत्मा और जिनवर में, - शुद्धात्मा और जिनवर में कोई फर्क नहीं। जिनवर को पर्याय प्रगट हुई है, जब कि यह (आत्मा) केवल शुद्धस्वभाव है, त्रिकाली शुद्धस्वभाव है। जिनस्वरूप ही प्रभु आत्मा है। प्रत्येक का हाँ। आहाहा ! ऐसे जिनस्वरूपी प्रभु (आत्मा का) पर्याय में ज्ञान होकर वर्तमान ज्ञान की परिणति उसे ग्रहण करे और उसमें आत्मा का - ज्ञान का (जो) जानना हुआ, उसकी

प्रतीति करे उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा ! यह तो अभी धर्म की पहली सीढ़ी-चतुर्थ गुणस्थान (है)। तदुपरांत जब स्वरूप का उग्र आश्रय ले...परंतु पूरा आश्रय नहीं (क्योंकि) पूरा आश्रय ले तो केवलज्ञान हो जाये। परंतु उग्र आश्रय ले (तो) अंदर चारित्र-वीतरागदशा (प्रगट होती है)। आहाहा ! (ऐसी) तीन कषाय के अभाव की वीतरागदशा (होने पर भी) धर्म परिणत होने पर भी यदि वह शुभयोग में युक्त होता है (अर्थात्) पूजा, दान, व्रत, भक्ति आदि भाव से (युक्त होता है तो) वह तो '**विरोधी शक्ति सहित होने से स्वकार्य करने में असमर्थ है...**' (उसका) स्वयं का कार्य तो मोक्ष है, (किन्तु) वह कार्य करने में शुभोपयोग समर्थ नहीं। आहाहा! कहिये, समझ में आया ? ऐसा है। आहाहा !

दुनिया को (तो) ऐसा लगता है कि यह एकान्त है ! (किन्तु) भाई ! तेरा स्वरूप तो एकान्त वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा ! उस वीतरागस्वरूप का आश्रय लेने पर जो कुछ वीतरागी सम्यग्दर्शन होता है वह तो चतुर्थ गुणस्थान (है) और उसी वीतरागीस्वरूप का उग्र आश्रय लेकर वीतरागी - तीन कषाय के अभाव का चारित्र - परिणमन होता है वह वीतरागीदशा (मुनिदशा) है। तथापि वह यदि शुद्धोपयोग में विशेषभाव से युक्त होता है तब वह मोक्ष का कारण होता है। क्योंकि विरोधी शक्तिरहित उपयोग होता है। किन्तु यदि चारित्रवंत होने पर भी आहाहा ! वह शुभयोग से युक्त होता है तो, (वह) मोक्ष के कारण से विरुद्ध शक्तिवाला होने से पुण्य को बाँधता है (और) स्वर्ग में जाता (है)। उसका मोक्ष नहीं होता। समझ में आया ?

पाँच पांडवमें से तीन का मोक्ष हुआ और दो रह गये। इस पालिताणा से तीन मोक्ष गये हैं न ! था तो कितना शुभराग ! पाँच पांडव सहोदर और साधर्मी (थे)। दुर्योधन के भाँजे ने लोहे के गहने पहनाये और सभी को उपसर्ग किया। आहाहा! सहदेव और नकुल को विचार - विकल्प आया कि अरेरे ! बड़े भाई को - धर्मराजा, भीम और अर्जुन का - क्या होता होगा ? आहाहा ! इतना विकल्प - शुभराग आया (तो) मोक्ष अटक गया (और) स्वर्ग का बंधन हो गया, सर्वार्थसिद्ध में गये, दो भव बढ़ गये। आहाहा ! वह (भी) ऐसा शुभ विकल्प कि संत बड़े भाई हैं और बड़े साधु हैं। उनको ये लोहे के गहने पहनाये (तो उनका क्या हाल होगा) ? अरेरे! (तब) कोई जैन नहीं होंगे ? भाई ! जो घटना होना हो उसमें जैन क्या करे ? उनको ख़बर भी नहीं होती। आहाहा ! धधकते हुये लोहे के गहने पहनाये। (उसमें) तीन को तो आनंद के धाम में - शुद्धोपयोग में रमणता करते (करते केवलज्ञान (प्रगट हुआ) और मोक्ष को प्राप्त हुये। (किन्तु) दो पाँडवों को थोड़ा विकल्प (आया), वह भी कोई अपने संबंध में नहीं, (किन्तु) ये बुजुर्ग मुनि हैं और साधर्मी हैं, उन्हें इतने अधिक परिषह हैं (तो) क्यो होता होगा ? वह शुभराग

था (तो) केवलज्ञान अटक गया (और) सर्वार्थसिद्ध के स्वर्ग का ३३ सागर की स्थिति का बंध पड़ गया। आहाहा! और वहाँ से निकलकर फिर मनुष्य होकर कई बरसों के बाद केवलज्ञान होगा न? आहाहा ! इतना राग का अंश भी स्वर्ग का कारण हुआ (अत:) मुक्ति के कारण से विरुद्ध भाव हुआ। आहाहा !

(शुभभाव) **`स्वकार्य करने में असमर्थ है और कथंचित् विरुद्ध कार्य करनेवाला...'** होने से... (वह) कथंचित् विरुद्ध है, सर्वथा विरुद्ध नहीं क्योंकि (साथ में) चारित्र है (जितना) शुभोपयोग है उतना विरुद्ध है। (किन्तु साथ में) शुद्ध परिणति तो है। (कहते हैं कि) **`विरुद्ध कार्य करनेवाला है ऐसे चारित्र से युक्त होने से,...'** है तो (वह) चारित्रवाला भी शुभोपयोग में आ गया। आहाहा ! इन मुनियों का क्या हाल होगा ? (ऐसा विकल्प आया) वह भी शुभराग हो गया।

आहाहा ! **`जैसे अग्नि से गर्म किया हुआ घी...'** अग्नि से तो जलता है (किन्तु) अग्नि से गर्म किया हुआ घी छिटकता जाये तो भी जलता है। आहाहा ! **`जैसे अग्नि से गर्म किया हुआ घी किसी मनुष्य पर डाल दिया जावे तो वह उसकी जलन से दुःखी होता है, उसीप्रकार...'** आहाहा ! चारित्र-यथार्थ चारित्र - समकित (सहित) यथार्थ छट्ठा (सातवां) गुणस्थान - आहाहा ! (होने पर भी) यदि वह शुभयोग में आ गया तो **`स्वर्ग सुख के बंध को प्राप्त होता है,...'** जैसे गर्म घी से जलन होती है वैसे पुण्य के भाव से स्वर्ग के सुख में जलन को प्राप्त होता है। आहाहा! शांति वहाँ जलती है। शुभयोग के - पंचमहाव्रत के परिणाम शुभोपयोग है। आहाहा! गर्म घी जैसे जलाता (है) वैसे वह शुभोपयोग भी इतनी शांति को जलाता (है) और उसके फलस्वरूप स्वर्ग के सुख अर्थात् दुःख को प्राप्त होगा। स्वर्ग का सुख अर्थात् दुःख। आहाहा ! (वह तो) क्लेष है। आहाहा ! (अत:) राग का अंश भी हानिकारक है, (ऐसा) कहते हैं।

आहाहा ! यह तो वीतरागभाव - वीतरागधर्म है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की यह आज्ञा है कि प्रभु ! तू चारित्रवंत होने पर भी यदि शुद्धोपयोग नहीं होता है और (तू) शुभराग में आ जाता है (तो) प्रभु ! तुझे दुःख होगा। आहाहा ! जो शुभराग स्वयं वर्तमान दुःख ही है। (अर्थात्) पंचमहाव्रत के परिणाम, पूजा, दान, व्रत के परिणाम वर्तमान दुःख है, राग है। अररर...! और उसके फल में स्वर्ग में भी दुःख है। इन्द्रियों का सुख यानी कि दुःख। आहाहा ! अब ऐसी बात संमत होना कठिन पड़ता है अत: (लोगों) पूजा और व्रत अकषायभाव है (अर्थात्) उसमें कषाय के अंश का अभाव है, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि चारित्रवंत भी यदि शुभभाव में - पंचमहाव्रत के - विकल्प में - आ गया तो, वह गर्म घी जैसे जलाता है वैसे वह अपनी उतनी

शांति को वहाँ जलाता है। आहाहा ! और (उसके) फल में वहाँ स्वर्ग के सुख में भी क्लेष है। आहाहा ! इन्द्रियों का सुख यानी कि क्लेष। आहाहा ! जो ये राजा-महाराजा या करोड़पति-अरबपति (हैं) वे सब रागरूपी क्लेष में दुःखी हैं। आहाहा ! समझ में आया? अरबपति हो (या) चक्रवर्ती का राज हो, किन्तु उसके राग का जो भाव है वह तो शांति को जलाता है। और (वह) रागभाव वर्तमान दुःखरूप है। वह तो अशुभराग है। किन्तु यहाँ तो चारित्रवंत को (जो) शुभराग आया वह भी दुःख का कारण है। आहाहा ! दुःखरूप है और दुःख का (कारण है)। अरेरे...! (कहीं पर) शुभोपयोग को शुद्धता का साधन (कहते हैं)। (किन्तु) भाई! ऐसा नहीं। वह तो निमित्त का कथन है। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) `**स्वर्ग सुख के बंध को प्राप्त होता है, इसलिये शुद्धोपयोग उपादेय है...**' देखा ? सम्यग्दर्शन सहित और चारित्र सहित (जो) जीव है उसे भी शुद्धोपयोग उपादेय है। आहाहा ! `और शुभोपयोग हेय है।' यहाँ तो ऐसी स्पष्ट बात आयी है। भाई ! क्या हो ?

आहाहा ! पंचमहाव्रत के परिणाम वह शुभराग है, (और) वह दुःख है अत: हेय है। आहाहा ! कैसे स्वीकार हो ? यह तो सम्यग्दृष्टि (और) चारित्रवंत की बात है। (किन्तु) अभी जो पुण्य में धर्म मानता है - वह पूजा, दान, व्रत और उपवास के भाव में धर्म मानता (है) - वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! वीतराग परमात्मा की यह आज्ञा है कि प्रभु ! तू चारित्रवंत होने पर भी... यथार्थ चारित्र(वंत होने पर भी, ऐसा कहते हैं)। (वह अज्ञानी जितने) व्रत-तप करता है वह कोई चारित्र नहीं। वह तो मिथ्यात्व सहित का राग है। किन्तु यहाँ तो सम्यग्दृष्टि और चारित्रवंत को भी शुभोपयोग हो तो, वह उसे दुःख और क्लेष का कारण है (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! ऐसा है।

प्रभु ! तुम वीतरागमूर्ति हो न ? तेरा स्वरूप ही - जिन(स्वरूप है)। `घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन; मति-मदिरा के पानसौं, मतवाला समुझै न।- (नाटक समयसार अंतिम प्रशस्ति-३१) आहाहा ! `घट घट अंतर जिन बसै' प्रभु! तुम अंदर परमात्मास्वरूप ही हो। जैसे जिनवर पर्याय में वीतराग हैं वैसा तेरा द्रव्यस्वभाव (अर्थात्) तेरा स्वरूप वीतराग है। आहाहा ! अरे ! कैसे स्वीकार हो ? `घट घट अंतर जिन बसे' सुबह में आया था। इस आत्मा में और वीतराग में कोई फर्क नहीं। आत्मा वीतरागमूर्ति ही प्रभु है। उसमें जितने विकल्प उठते हैं वे राग-बंध का कारण हैं। आहाहा !

यहाँ तो वीतरागस्वरूप (जैसी) वस्तु है (वैसी) उसकी परिणति भी जब स्वभाव के आश्रय से वीतराग हुई, ऐसी परिणतिवाले को यदि शुद्धोपयोग हो तब तो (वह) निर्वाण का कारण है। किन्तु उसे भी यदि शुभराग आया (तो, वह) स्वर्ग का कारण है, क्लेश

का कारण है, बंध का कारण है। आहाहा ! अरे ! यह किस प्रकार स्वीकार हो सके ? आहाहा ! लोगों को एकान्त लगे ऐसा (है) हाँ ! क्योंकि सम्यग्दर्शन रहित केवल व्रत, तप भक्ति और पूजा करते-करते उससे धर्म होगा ऐसा (वे) मानते हैं, आहाहा ! वह तो मिथ्यादृष्टि का चिह्न है। आहाहा !

किन्तु यह (चारित्रवंत) है यह शुभयोग से धर्म मानता नहीं। (किन्तु) शुद्धोपयोग से धर्म (मानता है)। शुद्धोपयोग भले नहीं हो (तो) भी, शुद्ध परिणति है वह धर्म है ऐसा (वह) मानता है। शुभराग आया है वह धर्म है ऐसा (वह) मानता नहीं। तथापि, जो शुभराग आता (है, वह) उसे क्लेश का कारण है, बंध का कारण है। आहाहा!

(अज्ञानी) ऐसी प्रतीति कहाँ करता है ? (जब कि ज्ञानी को) अभी राग है, राग आता है न ? वह हेयरूप से आता है। अत: वह दु:ख है। ज्ञानी प्रतीति करता है कि वह हेय है। तथापि वह है न ? अंदर है न ? आहाहा ! सच्चे समकिती को, सच्चे संत को, सच्चे चारित्रवंत को (भी) राग है वह बंध का कारण है। (किन्तु) जिसे सम्यग्दर्शन ही नहीं और व्रत, तप और भक्ति में जो धर्म मनवाता है वह तो मिथ्यादृष्टि जीव है, वह जैन नहीं। किन्तु यह तो जैन... `घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन' - जिसे जिनस्वरूप की दृष्टि होकर जैनत्व प्रगट हुआ है। (अर्थात्) वीतराग वीतराग समकित प्रगट हुआ है वह जैनपना है। आहाहा ! किन्तु `मति-मदिरा के पानसौं' अपने पक्ष की दारु पीनेवाला `मतवाला समुजै न' - मतवाला अंदर क्या तत्त्व है वह समझते नहीं।

श्रोता :- श्रीमद् राजचंद्रजी ने कहा है कि `प्रेरे ते परमार्थने ते व्यवहार संमत...?'

समाधान :- स्वीकार अर्थात् ज्ञानी ऐसा मानता है कि व्यवहार है परंतु दु:खरूप है। (क्या) व्यवहार है ही नहीं ? (`समयसार' की) १२वीं गाथा में आया है न, कि व्यवहार है। आहाहा ! अरेरे...! क्या करे ? अनंतकाल से भटकता हुआ, अनंतकाल से दु:खी (ऐसे) आत्मा ने यह अंदर तत्त्व क्या है उसकी दृष्टि करी नहीं और उस दृष्टि के बिना सब व्यर्थ हैं। - व्रत का पालन किया, भक्ति की, पूजा की, लाखों मंदिर बनवाये और गजरथ निकाले। किन्तु वह अंदर राग की मंदता हो तो शुभराग है। (बाक़ी) वह पर की - जड़ की क्रिया तो कुछ कर सकता नहीं। आहाहा ! उस राग में अज्ञानी ने धर्म माना है।

यहाँ तो, उस राग में धर्म माना नहीं। किन्तु मेरा शुद्ध स्वरूप है (और) उसकी जो वीतरागी परिणति है वह धर्म है। यह राग है वह धर्म नहीं - ऐसा माना है तथापि, जो राग आया वह दु:ख का कारण है, स्वर्ग का कारण है (ऐसा कहते हैं)। आहाहा !

प्रश्न :- अस्थिरता का राग आता है वह दु:ख का कारण है ?

समाधान :- हाँ, अस्थिरता का शुभयोग है न ? पंचमहाव्रत का - अहिंसा, सत्य, व्रत, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का - (जो) विकल्प उठा है वह राग है। आहाहा! (क्योंकि) परलक्षी जो भाव हुआ है वह राग है। स्वरूप का भान है, (अतः) राग धर्म नहीं ऐसा माना है, तथापि (जो) राग की अस्थिरता आयी, वह दुःख का कारण है, बंध का कारण है (और) वह मोक्ष के कारण से विरुद्ध कारण है। समझ में आये उतना समझना बापू ! वीतराग परमेश्वर का मार्ग कोई अलौकिक (है) भाई !

आहाहा ! तीनलोक के नाथ, परमेश्वर श्री सीमंधरभगवान बिराजमान हैं - महाविदेह में प्रभु साक्षात् हैं - हाजराहजूर भगवान हैं। ये श्री कुंदकुंदाचार्य वहाँ गये थे। और आठ दिन रहकर, (बाद में) आकर यह शास्त्र बनाया (है)। आहाहा ! तीनलोक का नाथ का संदेश यह है। आहाहा ! महाविदेहक्षेत्र में समवसरण में प्रभु बिराजमान हैं। वे हाजराहजूर प्रभु हैं। वहाँ श्री कुंदकुंदाचार्य गये थे (और) वहाँ से आकर ये शास्त्र बनाये हैं। आहाहा ! सूक्ष्म बात है भाई !

(कहते हैं कि) **`शुभोपयोग हेय है।'** है न (अंदर) ? (ज्ञानी को) व्रत का विकल्प है। वह भी शुभराग है। आहाहा ! वह हेय है, त्याग करने योग्य है। आदर करने योग्य नहीं। आहाहा !

प्रभु आत्मा शरीर से भिन्न, कर्म से भिन्न, (और) राग से (भी) भिन्न (है)। वह दया, दान और व्रत के विकल्प से भी प्रभु तो अंदर भिन्न है। आहाहा ! ऐसा जो वीतरागस्वरूप चिद्‌घन (आत्मा है) उसके सन्मुख होकर जो दर्शन-ज्ञान होता है, तदुपरांत उसके विशेष सन्मुख होकर (जो) चारित्र होता है, वह चारित्र, आहाहा ! मोक्ष का वास्तविक कारण। किन्तु उस चारित्र सहित शुद्धोपयोग आता है तो (वह) चारित्र मोक्ष का कारण (होता है)। आहाहा ! (किन्तु) उसमें यदि शुभराग आता है तो वह स्वर्गसुख का - बंध का कारण है। स्वर्ग में वहाँ सुख बिलकुल नहीं। पैसेवाले, अरबपति सुखी नहीं (किन्तु) बेचारे दुःखी हैं। (शास्त्र में तो) वरांका - भिखमंगे कहे हैं। अंतर अनंत आनंद और ज्ञान की लक्ष्मी पड़ी है उसकी तो जिसे रुचि नहीं और यह पैसा...पैसा... यह धूल...धूल, स्त्री-पुत्र मिले (इस प्रकार जो मांगते हैं) वे बड़े मांगनेवाले हैं। ऐसी बात है !

अंतर आत्मा में अतीन्द्रिय आनंद, अतीन्द्रिय ज्ञान (और) अतिन्द्रिय वीतरागता भरी है। प्रभु ! तेरी लक्ष्मी का अंत नहीं नाथ ! आहाहा ! `सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घटमैं प्रगट सदा' (ऐसा) आता है न ?

`स्वारथ के साँचे परमार्थ के साँचे,
साँचे साँचे बैन कहैं साचे जैनमती हैं।

काहू के विरोधी नाहि परजय-बुद्धि नाहि,
आतमगवेषी न गृहस्थ हैं न जती हैं।।
सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घट मैं प्रगट सदा,' - नाटक समयसार (मंगलाचरण)

रिद्धि (अर्थात्) आनंद का नाथ (आत्मा) वह रिद्धि (है)। उसकी सिद्धि (अर्थात्) प्राप्ति होती है, और वृद्धि (अर्थात्) (चारित्र) उसकी वृद्धि होती है। वह रिद्धि-सिद्धि और वृद्धि (है)। (बाक़ी) यह धूल की वृद्धि और धूल में... आहाहा ! जो ये करोड़पति हैं और अरबपति हैं और उद्योगपति हैं वे सब भिखमंगे हैं।

श्रोता :- इतना ज्यादा निषेध क्यों करते हो ?

समाधान :- आहाहा ! भगवान ने अशुभभाव को तो विष कहा है। (जब) शुभभाव को विष कहा है (तब) अशुभ की तो क्या बात करना ? प्रभु ! आहाहा ! यह शुभराग आता है उसे विष कहा है। (क्योंकि वह) राग है न ? (जब) प्रभु आत्मा तो वीतरागमूर्ति है। आहाहा ! उसके (जो) श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र हुये वे भी वीतराग हुये। (अत:) उसमें (उसके साथ) जो शुभराग है वह जहर और दु:ख है। आहाहा ! तो फिर ये अरबपति-धूलपति और उसमें लक्ष रखकर हम पैसेवाले हैं और हम सुखी हैं (ऐसा माननेवाले तो दु:खी ही हैं)।

श्रोता :- तो क्या पैसा फेंक देना ?

समाधान :- उसके पैसे बिलकुल है नहीं। पैसा तो मिट्टी-धूल है। तुम तो अरूपी जीव हो। (जब) वह चीज तो धूल है, मिट्टी है। यह शरीर (भी) मिट्टी है, वह भी तेरा नहीं। तो फिर वह चीज (पैसा) तेरा कहाँ से आया ? आहाहा ! यह (शरीर) तो धूल है। धूल अर्थात् पुद्‌गल। आहाहा ! यहाँ तो शुभराग को भी दु:ख का कारण-दु:खरूप कहा (है)। अरेरे...! लक्ष्मी तो दु:ख का निमित्त है। आहाहा ! किन्तु अंदर में भगवान की भक्ति का (जो) शुभभाव होता (है वह भी दु:ख है)। आहाहा ! वह आता है। किन्तु है वह शुभराग दु:खरूप भाई ! आहाहा ! (अत:) वह हेय है ऐसा कहा है। ऐसा है प्रभु ! आहाहा !

`इसलिये शुद्धोपयोग...'** **`इसलिये' ऐसा कहा न ? (यानी कि) इस कारण से - शुद्धोपयोग है वह मोक्ष का कारण है अत: - वह **`शुद्धोपयोग उपादेय है।'** (अर्थात्) वह ग्रहण करने योग्य है, वह आदर करने योग्य है। और **`शुभोपयोग हेय है।'** (अर्थात्) त्याग करने योग्य है (किन्तु) आदर करने योग्य नहीं। आहाहा ! हेय कहो या बंध का कारण कहो। आहाहा ! ऐसी बात स्वीकृत होना कठिन पड़ता है।

प्रश्न :- व्यवहार को हस्तावलंब कहा और फिर हेय कहा ?

समाधान :- वह तो निमित्त से कहा (है)। तथापि उसका फल संसार है ऐसा कहा न ! वहाँ पर कहा है न ? आहाहा ! निमित्त के कथन शास्त्र में बहुत (आते हैं)। किन्तु उनका फल संसार है। - ऐसा ११वीं गाथा के (भावार्थ में) कहा है। आहाहा ! जगत को स्वीकृत होना बहुत कठिन है ! संप्रदाय की दृष्टि में फर्क बहुत!!

आहाहा ! व्रत करो, उपवास करो, तपश्चर्या करो, पूजा करो, भक्ति करो, मंदिर बनवाओ - उसमें धर्म है ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा ! बापू ! वह (मंदिर) तू बनवा सकता नहीं। किन्तु उसमें कदाचित् राग मंद - शुभभाव होता है वह भी बंध का कारण है। आहाहा ! यहाँ तो चारित्रवंत को भी शुभराग है वह बंध का कारण है, (ऐसा कहते हैं)। (तो फिर) अज्ञानी (कि) जो अभी शुभ से धर्म मानता है उसकी तो बात क्या करना ?

आहाहा ! परदेश में ऐसा कुछ मिले ऐसा नहीं। अरे ! हिंदुस्तान में (भी) यह बात बदल गई है, बापू ! आहाहा ! यहाँ तो जहाँ-तहाँ व्रत करो, उपवास करो, त्याग करो, बाहर का संयम - पंचमहाव्रत ले लो और यह करो और यह करो (ऐसी बातें चलती हैं)। (किन्तु) वहाँ कहाँ धर्म था भाई ! यहाँ तो (गाथा में तो) भाई! धर्मपरिणत जीव की बात ली है। आहाहा ! जिसको सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र के भाव हुये हैं आहाहा ! (यानी कि) जिसको भगवानआत्मा पूर्णानंद(स्वरूप) ज्ञाता-दृष्टा है उसका अंदर ज्ञान, भान, प्रतीत होकर स्वरूप की मग्नता भी हुई है। आहाहा! धर्मपरिणत (जीव) लिया है न ? आहाहा ! उस जीव को यदि शुद्धोपयोग हो तो, (वह) मोक्ष का कारण है। क्योंकि शुद्धोपयोग बंध के कारण से विरुद्ध है। यानी कि विरुद्ध शक्ति रहित है और यदि वह चारित्र-स्वरूप मग्नता होनेपर भी उसे शुभयोग के साथ युक्तता हो जाये तो वह हेय है, बंध का कारण है और स्वर्ग के दुःख का कारण है। आहाहा ! स्वर्ग में दुःख है !

श्रोता :- नरक से तो क़म है न ?

समाधान :- पुण्य-पाप में कोई अंतर नहीं। उसके फल में कोई अंतर नहीं। आहाहा ! वह ७७वीं गाथा में नहीं कहा ? इसमें - प्रवचनसार की ७७वीं गाथा में (ऐसा कहा है) कि जो कोई शुभ-अशुभभाव (अर्थात्) पुण्य-पाप दोनों में विशेष - अंतर मानता (है) वह घोर संसार में मिथ्यात्व सहित भटकनेवाला है। - वह प्रवचनसार की ७७ गाथा है। यह प्रवचनसार है न ? लीजिये, देखिये ! ७७ गाथा - सात के दो अंक। **`ण हि मणमदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं'** पुण्य और पाप में कोई अंतर नहीं। दोनों बंध के कारण हैं, आहाहा ! (यह) ७७ (गाथा) है। वही (बात) परमात्मप्रकाश के दूसरे भाग की ५५ गाथा में है। आहाहा ! (शुभभाव) सोने की बेड़ी है। सोने की (बेड़ी) भी लोहे की बेड़ी से कठिन चिकनी और भारी होती (है)। लोहे की बेड़ी (तो) हलकी होती (है)।

कठिन काम भाई ! आहाहा !

यहाँ (७७वीं गाथा में) कहा कि पुण्य-पाप में कोई अंतर नहीं ऐसा जो नहीं मानता वह **`हिंडदि घोरमपारं संसारं'** घोर संसार में - नरक और निगोद में भटकेगा। अररर...! आहाहा ! वह मोक्षमार्ग से विरुद्ध है न ? (अत:) वह भटकने का संसारमार्ग है। उपादेय नहीं। **`ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो'** (ऐसा) है न ? शुभ-अशुभभाव में कोई अंतर नहीं। (तथापि) जो विशेष - फर्क मानता है वह **`हिंडदि घोरमपारं संसारं'** - (घोर संसार में भटकेगा)। (ऐसा) भगवान श्री कुंदकुंदाचार्य का वचन है। आहाहा ! दिगंबर संत वन में रहते थे। भगवान के पास गये थे और (वहाँ से) यह लाये हैं। आहाहा !

शुभ और अशुभ उपयोग में - उन दोनों में शुभ ठीक (है) और अशुभ अठीक है, ऐसा जो मानता है (अर्थात्) दोनों बंध का कारण होने पर भी उनमें जो विशेष - अंतर मानते (है वे) मिथ्यादृष्टि घोर संसार में भटकनेवाले हैं। है या नहीं ? सामने पन्ना है कि नहीं ? आहाहा ! गुजराती (हरिगीत) किया है।

`नहीं मानतो - ए रीत पुण्ये पापमां न विशेष छे।
तो मोहथी आच्छन्न घोर अपार संसारे भमे।।७७।।'

मोह से आच्छन्न अर्थात् वे मिथ्यादृष्टि, घोर नरक और निगोद में जानेवाले हैं। आहाहा ! ऐसी बातें बहुत कठिन पड़ती हैं। (किन्तु) क्या करे बापू ! आहाहा! मिथ्यात्व का दुःख बहुत ज्यादा है, बहुत ज्यादा है, आहाहा ! **`मोहसंछण्णो'** कहा न ? (यानी कि) मोह से - मिथ्यात्व से आच्छादित जो जीव पुण्य और पाप में अंतर मानते (हैं वे) घोर संसार में भटकेंगे। आहाहा ! ऐसी बात है। ये सब जानने में आते हैं या नहीं? वकील कोर्ट में दलील देते हैं या नहीं ? वैसे ये भगवान की दलीलें हैं। ये तीनलोक के नाथ के कहे हुये क़ानून हैं।

श्रोता :- पुण्य को सर्वथा हेय कहेंगे तो उसमें तत्त्व का निर्णय कोई नहीं करेगा?

समाधान :- तत्त्व का निर्णय करने में विकल्प की ज़रूरत नहीं। आहाहा ! तत्त्व नव हैं न ? तो दया, दान, व्रत, भक्ति वे पुण्य परिणाम (हैं)। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय(सेवन), कमाने का भाव वे पाप (हैं)। तो वह पुण्य-पाप तत्त्व भिन्न है और ज्ञायकतत्त्व भिन्न है - जीवतत्त्व भिन्न है। नव (तत्त्व) कहे हैं न ? आहाहा ! इन नव तत्त्व का निर्णय करेगा तब यह ही आयेगा कि पुण्य और पाप जो तत्त्व है वह इस ज्ञायक तत्व में नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

अज्ञानी ऐसा कहता है कि पूजा और व्रत में बंध माननेवाले जिनेन्द्र के मार्ग से अन्जान हैं। अरे प्रभु ! क्या करते हो भाई ! आहाहा ! जिसको जिस प्रकार की श्रद्धा

हो वह उस प्रकार कहता है। `जामे जितनी बुद्धि उतनो दियो बताय; वाको बुरो न मानिए...' उसमें द्वेष नहीं करते प्रभु ! आहाहा ! `और कहाँ से लाय।' क्या करें ? आहाहा !

बहुत अच्छी गाथा है। (किन्तु) पाठ में ही है न ? देखिये न ? **`जदि सुद्धसंपयोगजुदो पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं'** (यदि) शुभ से युक्त होता है तो स्वर्गसुख (पाता है)। - इस लोक की अपेक्षा से बात (है)। (स्वर्गसुख) अर्थात् स्वर्ग की गति मिलती है। और (यदि) शुद्धोपयोग में आ जाता है तो उसे मोक्ष मिलता है। आहाहा! एक गाथा भी सही-तरह समझता है तो... (सब बात का फैसला हो जाये)। (और उसके बिना) ऐसे ही पढ़ जाता है या स्मरण कर लेता है (तो कुछ हाथ नहीं आता। आहाहा ! बापू ! यह तो तीनलोक के नाथ का पंचमकाल में विरह पड़ा है। आहाहा ! भगवान वहाँ (महाविदेह में) बिराजमान हैं और वस्तु यहाँ रह गई। आहाहा ! यह गलत है और यह सही है, ऐसा कहनेवाले कोई रहे नहीं। आहाहा!

ऋषभदेव भगवान के समय में ४००० (राजा) साधु हुये। वे नग्न वेष रखकर दूसरा कुछ करने लगे। (तब) स्वर्ग के देव ने आकर (कहा कि) `यह वेष छोड़ दो, वरना दंड देंगे। नग्नपना छोड़ दो, बाद में तुम चाहे जो करो। किन्तु नग्नपना रखकर तुम विपरीत प्ररूपणा करोगे तो नहीं चलेगा।' आहाहा ! (तब) ऐसा काल था। इस समय में कहाँ ? देव, देव (स्वर्ग) में रहे। (और) भगवान, भगवान के पास रहे। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) शुद्धोपयोग - इस कारण से शुद्धोपयोग - उपादेय है। किस कारण से ? कि सम्यग्दर्शन-चारित्र के परिणामवाले को भी यदि शुद्धोपयोग होता है तो, (वह) मोक्ष का कारण है और वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम होने पर भी यदि वह शुभोपयोग से युक्त होता है तो, वह स्वर्ग के बंध का कारण होता (है)। इस कारण से शुद्धोपयोग उपादेय है। अंतिम शब्द है। है न ? (और) शुभोपयोग हेय है।

भावार्थ :- **`जैसे घी स्वभावतः शीतलता उत्पन्न करनेवाला है तथापि...'** घी स्वभाव से तो ठंडा है। किन्तु **`गर्म घी से जल जाते हैं,...'** गर्म घी होता है तो जलते हैं। आहाहा ! **`इसीप्रकार चारित्र स्वभाव से मोक्ष दाता है, तथापि...'** चारित्र स्वभाव से मोक्षदाता है, तथापि **`सराग चारित्र से बंध होता है।'** किन्तु यदि वह चारित्र शुभरागवाला हो तो बंध होता है। (और) **`जैसे ठंडा घी शीतलता उत्पन्न करता है, इसीप्रकार वीतराग चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है।'** आहाहा ! उसकी (पहले) पहचान तो करे, प्रभु श्रद्धा तो करे। पहचान तो करे कि मार्ग यह है। भाई ! समझ में आया ? वह ११ गाथा हुई।

अथ चारित्रपरिणामसंपर्कासंभवादत्यन्तहेयस्याशुभपरिणामस्य फलमालोचयति -

असुहोदएण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।
दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिद्दुदो भमदि अच्चंतं।।१२।।
अशुभोदयेनात्मा कुनरस्तिर्यग्भूत्वा नैरयिकः।
दुःखसहस्रैः सदा अभिद्रुतो भ्रमत्यत्यन्तम्।।१२।।

यदायमात्मा मनागपि धर्मपरिणतिमनासादयन्नशुभोपयोगपरिणतिमालम्बते तदा कुमनुष्यतिर्यङ्नारकभ्रमणरूपं दुःखसहस्रबन्धमनुभवति। ततश्चारित्रलवस्याप्यभावादत्यन्तहेय एवायमशुभोपयोग इति।।१२।।

अथ चारित्रपरिणामासंभवादत्यन्तहेयस्याशुभोपयोगस्य फलं दर्शयति - **असुहोदयेण** अशुभोदयेन **आदा** आत्मा **कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो** कुनरस्तिर्यङ्नारको भूत्वा। किं करोति। **दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिद्दुदो भमदि अच्चंतं** दुःखसहस्रैः सदा सर्वकालमभिद्रुतः कदर्थितः पीडितः सन् संसारे अत्यन्तं भ्रमतीति। तथाहि - निर्विकारशुद्धात्मतत्त्वरुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वस्य तत्रैव शुद्धात्मन्यविक्षिप्तचित्तवृत्तिरूपनिश्चयचारित्रस्य च विलक्षणेन विपरीताभिनिवेशजनकेन दृष्टश्रुतानुभूतपञ्चेन्द्रियविषयाभिलाषतीव्रसंक्लेशरूपेण चाशुभोपयोगेन यदुपार्जितं पापकर्म तदुदयेनायमात्मा सहजशुद्धात्मानन्दैकलक्षणपारमार्थिकसुखविपरीतेन दुःखेन दुःखितः सन् स्वस्वभावभावनाच्युतो भूत्वा संसारेऽत्यन्तं भ्रमतीति तात्पर्यार्थः। एवमुपयोगत्रयफलकथनरूपेण चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम् ।।१२।।

अब चारित्र परिणामके साथ सम्पर्क रहित होनेसे जो अत्यन्त हेय है ऐसे अशुभ परिणामका फल विचारते हैं :-

गाथा-१२

अशुभोदये आत्मा कुनर तिर्यंच ने नारकपणे।
नित्ये सहस्र दुःखे पीड़ित संसारमां अति अति भमे।।१२।।

अन्वयार्थ :- [अशुभोदयेन] अशुभ उदयसे **[आत्मा]** आत्मा **[कुनरः]** कुमनुष्य **[तिर्यग्]** तिर्यंच **[नैरयिकः]** और नारकी **[भूत्वा]** होकर **[दुःखसहस्रैः]** हजारों दुःखोंसे **[सदा अभिद्रुतः]** सदा पीड़ित होता हुआ **[अत्यंतं भ्रमति]** (संसारमें) अत्यन्त भ्रमण करता है।

`**अब चारित्र परिणाम के साथ सम्पर्क रहित होने से जो अत्यंत हेय है...**' देखा? अशुभोपयोग अत्यंत हेय है (ऐसा कहा)। हिंसा, झूठ, चोरी, रागादि का जो अशुभोपयोग (है) वह तो चारित्रपरिणाम के साथ संपर्क-संबंध रहित है। (यानी कि) जिसे सम्यग्दर्शन

टीका :- जब यह आत्मा किंचित् मात्र भी धर्मपरिणतिको प्राप्त न करता हुआ अशुभोपयोग परिणतिका अवलम्बन करता है, तब वह कुमनुष्य, तिर्यंच और नारकीके रूपमें परिभ्रमण करता हुआ (तद्रूप) हजारों दुःखोंके बन्धनका अनुभव करता है; इसलिये चारित्रके लेशमात्रका भी अभाव होनेसे यह अशुभोपयोग अत्यन्त हेय ही है।।१२।।

सहित चारित्र है उसे अशुभभाव होता नहीं। (यदि) उसे शुभ(भाव) हो तो बंध होता है और स्वर्ग में जाता है। किन्तु उसे अशुभ(भाव का) संबंध (तो) होता ही नहीं। आहाहा! जो मुनि सच्चे संत हैं (और) जिसे प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ है आहाहा! (अर्थात्) स्वसंवेदन - आनंद का वेदन चौथे, पाँचवे गुणस्थान से भी (जिसे) विशेष - उत्कृष्ट प्रगट हुआ है (यानी कि) अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद विशेष है, ऐसे भावलिंगी साधु को यदि शुद्धोपयोग का संबंध हो तब तो (वह) मुक्ति को प्राप्त होता है। (किन्तु यदि) शुभयोग का (संबंध) हो तो स्वर्ग को प्राप्त होता है किन्तु उन्हें अशुभयोग का संबंध तो होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! वैसा शास्त्रों में आता है कि छट्ठे गुणस्थान में आर्त-ध्यान होता है, तथापि उसकी यहाँ मुख्यता नहीं। गौणरूप से भी (उसे) अशुभभाव होता नहीं, ऐसा ही कहा है। समझ में आया ?

(अशुभभाव) **`चारित्रपरिणाम के साथ सम्पर्क रहित होने से जो अत्यंत हेय है...'** शुभ(भाव) तो हेय है। (किन्तु) अशुभोपयोग तो अत्यंत हेय है। आहाहा ! मुनि होकर पैसा एकत्र करे, पैसों का फन्ड करे (तो) वह सब अशुभोपयोग अत्यंत हेय (है)। वह मुनि ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? **`चारित्रपरिणाम के साथ...'** यानी कि धर्मपरिणत तो है। उसके साथ शुभ(भाव) और शुद्ध(भाव का) मिलान किया। (किन्तु) अब, यहाँ अशुभभाव तो उसे होता ही नहीं (ऐसा कहते हैं)। **`जो अत्यंत हेय है ऐसे अशुभ परिणाम का फल विचारते हैं।'**

टीका :- **`जब यह आत्मा किंचित् मात्र भी धर्मपरिणति को प्राप्त न करता हुआ...'** देखा ? (११वीं गाथा में) धर्मपरिणति सहित की बात थी। (जब कि यहाँ) धर्मपरिणत को अशुभभाव होता नहीं, (ऐसा कहते हैं)। **`जब यह आत्मा किंचित् मात्र भी...'** किंचित् मात्र भी **`धर्मपरिणति को प्राप्त न करता हुआ अशुभोपयोग परिणति का अवलंबन करता है,...'** आहाहा ! (यानी कि) अशुभभाव से वह युक्त होता है (अर्थात्) धर्मरूप परिणमता नहीं। समझ में आया ? (और) यदि अशुभ का अवलंबन लेता है आहाहा! तो, **`तब वह कुमनुष्य (के रूप में),...'** जन्मेगा। कुमनुष्य के रूप में अवतार लेगा। आहाहा! हलके मनुष्यपने में - निर्धनता में और ऐसे कुमनुष्य में दुःखी होकर अवतार लेगा। आहाहा ! **`तिर्यंच**

(**के रूप में**)' - (अर्थात्) पशु होगा। अशुभ परिणामवाला (और) धर्म परिणति से रहित मरकर तिर्यंच - पशु होगा।

आहाहा ! जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं और केवल अशुभभाव - सारे दिन व्यापार के अशुभभाव और स्त्री-पुत्र की रक्षा करने का केवल अशुभभाव (है) - आहाहा! वह मरकर, कहते हैं कि या कुमनुष्य (होगा) और या पशु होगा। आहाहा ! कठिन काम ! यहाँ अरबपति कहलाता है (और) उद्योगपति कहलाता है। किन्तु यदि अकेला अशुभ परिणाम है, शुद्ध धर्म तो नहीं किन्तु शुभ उपयोग भी नहीं - तो, आहाहा! सत् समागम में दो-चार घँटे बिताना या दो-चार घँटे शास्त्र पढ़ना ऐसा शुभभाव भी नहीं और आहाहा ! सारा दिन दुकान पर बैठकर व्यापार में केवल पाप (करता है कि) यह किया और यह किया और यह किया और यह किया। (तो) वह अशुभ उपयोगवाला '**कुमनुष्य, तिर्यंच और नारकी के रूप में परिभ्रमण करता हुआ (तद्रूप) हजारों दुःखों के बंधन का अनुभव करता है;...**' आहाहा ! वह हजारों अर्थात् अनंत दुःख, '**इसलिये चारित्र के लेशमात्र का भी अभाव होने से यह अशुभोपयोग अत्यंत हेय ही है।**' आहाहा ! विशेष कहेंगे।

a a a

अज्ञानी, स्वभाव-सन्मुखताका प्रयत्न नहीं करता वरन् राग ही के साधन पकड़ता है, अतः उसका भ्रम दूर नहीं होता। यदि स्वभावके आश्रय-पूर्वक निर्णय करे तो भव्य-अभव्य विषयक शंका नहीं रहती । जो सत्-उपदेश सुनकर निर्णय करे, उसकी भ्रमणा दूर हो जाती है। स्वभाव-सन्मुख होकर निर्णय करनेसे वर्तमान् परिणाममें विशुद्धता होती जाती है। (परमागमसार - **९६१**)

एवमयमपास्तसमस्तशुभाशुभोपयोगवृत्तिः शुद्धोपयोगवृत्तिमात्मसात्कुर्वाणः शुद्धोपयोगाधिकारमारभते। तत्र शुद्धोपयोगफलमात्मनः प्रोत्साहनार्थमभिष्टौति -

अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धवओगप्पसिद्धाणं।।१३।।
अतिशयमात्मसमुत्थं विषयातीतमनौपम्यमनन्तम्।
अव्युच्छिन्नं च सुखं शुद्धोपयोगप्रसिद्धानाम्।।१३।।

आसंसारापूर्वपरमाद्भुताह्लादरूपत्वादात्मानमेवाश्रित्य प्रवृत्तत्वात्पराश्रयनिरपेक्षत्वादत्यन्तविलक्षणत्वात्समस्तायतिनिरपायित्वान्नैरन्तर्यप्रवर्तमानत्वाच्चातिशयवदात्मसमुत्थं विषयातीतमनौपम्यमनन्तमव्युच्छिन्नं च शुद्धोपयोगनिष्पन्नानां सुखमतस्तत्सर्वथा प्रार्थनीयम्।।१३।।

अथ शुभाशुभोपयोगद्वयं निश्चयनयेन हेयं ज्ञात्वा शुद्धोपयोगाधिकारं प्रारभमाणः, शुद्धात्मभावनामात्मसात्कुर्वाणः सन् जीवस्य प्रोत्साहनार्थं शुद्धोपयोगफलं प्रकाशयति। अथवा द्वितीयपातनिका- यद्यपि शुद्धोपयोगफलमग्रे ज्ञानं सुखं च संक्षेपेण विस्तरेण च कथयति तथाप्यत्रापि पीठिकायां सूचनां करोति। अथवा तृतीयपातनिका - पूर्वं शुद्धोपयोगफलं निर्वाणं भणितमिदानीं पुनर्निर्वाणस्यफलमनन्तसुखं कथयतीति पातनिकात्रयस्यार्थं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति - **अइसयं** आसंसाराद्देवेन्द्रादिसुखेभ्योऽप्यपूर्वाद्भुतपरमाह्लादरूपत्वादतिशयस्वरूपं, **आदसमुत्थं** रागादिविकल्परहितस्वशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नत्वादात्मसमुत्थं, **विसयातीदं** निर्विषयपरमात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतपञ्चेन्द्रियविषयातीतत्वाद्विषयातीतं, **अणोवमं** निरुपमपरमानन्दैकलक्षणत्वेनोपमारहितत्वादनुपमं, **अणंतं** अनन्तागामिकाले विनाशाभावादप्रमितत्वाद्वाऽनन्तं, **अव्वुच्छिण्णं च** असातोदयाभावान्निरन्तरत्वादविच्छिन्नं च **सुहं** एवमुक्तविशेषणविशिष्टं सुखं भवति। केषाम्। **सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं** वीतरागपरमसामायिकशब्दवाच्यशुद्धोपयोगेन प्रसिद्धा उत्पन्ना येऽर्हत्सिद्धास्तेषामिति। अत्रेदमेव सुखमुपादेयत्वेन निरन्तरं भावनीयमिति भावार्थः ।।१३।।

इसप्रकार यह (भगवान कुन्दकुन्दाचार्य देव) समस्त शुभाशुभोपयोगवृत्तिको (शुभउपयोगरूप और अशुभ उपयोगरूप परिणतिको) अपास्त कर (हेय मानकर, तिरस्कार करके, दूर करके) शुद्धोपयोगवृत्तिको आत्मसात् (आत्मरूप, अपनेरूप) करते हुए शुद्धोपयोग अधिकार प्रारम्भ करते हैं। उसमें (पहले) शुद्धोपयोगके फलकी आत्माके प्रोत्साहनके लिये प्रशंसा करते हैं।

गाथा-१३

अत्यंत, आत्मोत्पन्न, विषयातीत, अनुप अनंत ने।
विच्छेद हीन छे सुख अहो ! शुद्धोपयोग प्रसिद्ध ने।।१३।।

अन्वयार्थ :- [शुद्धोपयोगप्रसिद्धानां] शुद्धोपयोगसे निष्पन्न हुए आत्माओंका (केवली और

सिद्धोंका) **[सुखं]** सुख **[अतिशयं]** अतिशय **[आत्मसमुत्थं]** आत्मोत्पन्न **[विषयातीतं]** विषयातीत (अतीन्द्रिय) **[अनौपम्यं]** अनुपम **[अनन्तं]** अनन्त (अविनाशी) **[अव्युच्छिन्नं च]** और अविच्छिन्न (अटूट) है।

टीका :- (१) अनादि संसारसे जो पहले कभी अनुभवमें नहीं आया ऐसे अपूर्व, परम अद्‍भुत आह्लादरूप होनेसे 'अतिशय', (२) आत्माका ही आश्रय लेकर (स्वाश्रित) प्रवर्तमान होनेसे 'आत्मोत्पन्न', (३) पराश्रयसे निरपेक्ष होनेसे (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्दके तथा संकल्पविकल्पके आश्रयकी अपेक्षासे रहित होनेसे) 'विषयातीत', (४) अत्यन्त विलक्षण होनेसे (अन्य सुखोंसे सर्वथा भिन्न लक्षणवाला होनेसे) 'अनुपम', (५) समस्त आगामी कालमें कभी भी नाशको प्राप्त न होनेसे 'अनन्त' और (६) बिना ही अन्तरके प्रवर्तमान होनेसे 'अविच्छिन्न' सुख शुद्धोपयोगसे निष्पन्न हुए आत्माओंके होता है, इसलिये वह (सुख) सर्वथा प्रार्थनीय (वांछनीय) है।।१३।।

दि. १४-१-१९७९ - प्रवचन नं. - ८

प्रवचनसार - १२वीं गाथा समाप्त हुई। (अब) १३वीं (लेते हैं)। (गाथा के ऊपर) दो पंक्ति हैं न ? '**इसप्रकार यह (भगवान कुन्दकुन्दाचार्य देव) समस्त शुभाशुभोपयोगवृत्ति को (शुभउपयोगरूप और अशुभउपयोगरूप परिणति को)...**' हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग-वासना, काम क्रोध के परिणाम अशुभ हैं, वे तो अत्यंत हेय हैं। हेय अर्थात् ? (कि) तिरस्कार करने योग्य (है)। (अर्थात्) अशुभ परिणाम को दूर से छोड़ना, हेय मानना, दूर करना, छोड़ देना और शुभ परिणाम हैं वे (भी) हेय हैं। क्योंकि वे राग हैं, दुःखरूप हैं। आहाहा ! व्रत, दया, शील, संयम और तप का जो विकल्प राग है वह शुभोपयोग है। (और) वह हेय है। धर्मी को वह आदर करने योग्य नहीं। (अतः) जिसे धर्म करना है (हो) उसे पहले शुभ और अशुभ उपयोग को हेय करके त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की - शुद्ध चैतन्य, अतीन्द्रिय आनंद की सत्ता का (जो) अस्तित्वरूप तत्त्व (है) उसकी - पहले दृष्टि और अनुभव करना। शुभ को छोड़कर अशुभ में जाना ऐसा नहीं। (किन्तु) शुभ की और अशुभ की रुचि को छोड़ना। (और) रुचि को छोडकर त्रिकाली आनंदस्वरूप भगवानआत्मा ! जिसमें वे शुभाशुभ रागभाव हैं नहीं ऐसे आत्मा की दृष्टि, प्रतीति और ज्ञान करना और

बाद में शुभाशुभ उपयोग तो रहेगा। किन्तु फिर, (उन) शुभाशुभ उपयोग को भी छोड़कर शुद्धोपयोग में आना।

शुद्धचैतन्यस्वरूप का यानी कि वीतरागस्वरूप का परिणाम है वह शुद्धोपयोग (है)। आहाहा ! उस शुद्धोपयोग की प्रशंसा करना। (क्योंकि) उस शुद्धोपयोग का फल मुक्ति है। जब कि शुभाशुभपरिणाम का फल बंधन है। शुभपरिणाम का फल स्वर्गादि है। इन सेठों को पैसा-धूल मिलती है वह सब शुभ का फल (है) और अशुभ का फल, कुमनुष्य, तिर्यंच और नरक हैं। अत: उन दोनों उपयोग को छोड़कर शुद्ध चैतन्य आत्मा का (कि) जिसका अस्तित्व अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप है (उसका अनुभव करना)। अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप वीतरागमूर्ति प्रभु (आत्मा के) सन्मुख होकर प्रथम दृष्टि और अनुभव करना। बाद में शुभोपयोग को (भी) छोड़कर... अशुभोपयोग तो अत्यंत हेय ही है। (किन्तु) बाद में शुभ का भी लक्ष छोड़कर शुद्ध स्वरूप में - **शुद्ध चैतन्यघन में (स्थिर होना)।** कठिन बातें बहुत बापू !

आहाहा ! वह परमानंदमूर्ति प्रभु (आत्मा को) प्रतीत में तो लिया है और पर्याय में उसे ज्ञेय भी बनाया है। (किन्तु) बाद में शुभ को छोड़कर अंतर में शुद्धोपयोग करना। (कि) जिसमें राग का अंश नहीं। आहाहा ! ऐसे शुद्धोपयोग को... है (अंदर) ? कि '**कुन्दकुन्दाचार्यदेव समस्त शुभाशुभोपयोगवृत्ति को...**' वृत्ति अर्थात् परिणति। उसे छोड़कर (अर्थात्) '**अपास्त कर...**' आहाहा ! अपास्त (करके यानी कि) शुभाशुभ का तिरस्कार करके आहाहा ! शुभाशुभोपयोग (कि) जो आत्मा का तिरस्कार करनेवाला है, (उसका तिरस्कार करके)।

आहाहा ! ऐसी बातें हैं। लोगों को सूक्ष्म पड़ती है। (वह तो) बाहर में - सारा दिन प्रवृत्ति और प्रवृत्ति में (पड़ा है) और उसमें से निवृत्ति मिले तो ये दया, व्रत, सामायिक, प्रतिक्रमण और पौषध (करता है)। किन्तु वे कहाँ (यथार्थ) थे ? वे तो राग हैं। सामायिक तो उसे कहते हैं कि जिसको शुभाशुभोपयोग रहित स्वरूपमें से वीतरागता का लाभ मिलता है। (किन्तु) उस वीतरागता को दृष्टि में लिया हो तो फिर लाभ मिलता है न ? आहाहा ! सामायिक अर्थात् समता का लाभ। 'साम्+आय' है न ? किन्तु वह कब मिलता है ? कि जो वीतरागस्वरूप भगवान(आत्मा) है उसकी प्रथम दृष्टि हुई हो तो उसमें लीनता होने पर वीतरागता के परिणाम का लाभ होता है। उसे सामायिक कहने में आता है। किन्तु (अज्ञानी को तो) उसकी ख़बर नहीं और दो घड़ी 'नमो अरिहंताणं - नमो सिद्धांणं' किया और हो गई सामायिक (ऐसा मानता है)। आहाहा ! समझ में आया ?

(यहाँ कहते हैं कि) उस '**शुभाशुभोपयोगवृत्ति को (शुभउपयोगरूप और अशुभउपयोगरूप परिणति को) अपास्त कर...**' अपास्त करना यानी कि तिरस्कार करना, तजना, हेय मानना,

दूर करना और छोड़ देना - इतने उसके अर्थ हैं। आहाहा! **`शुद्धोपयोगवृत्ति को आत्मसात् (आत्मरूप, अपनेरूप) करते हुए...'** आहाहा ! (पुण्य-पाप के भावरहित शुद्ध परिणति को आत्मसात् (करते हुए)... (अर्थात्) आत्मा के साथ एकाग्र करते हुए... आहाहा ! ऐसा मार्ग है। उसे सामायिक कहते हैं और पौषध कहते हैं। (किन्तु अज्ञानी को तो) यह भान नहीं कि आत्मा कौन है और राग क्या है और देह क्या है ! (और हमें पौषध है ऐसा मानता है)। आहाहा ! पौषध तो... वस्तु जो अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप चैतन्य है उसका (जिसे) ज्ञान हुआ हो और जिसकी प्रतीत में वह वस्तु आयी हो (वह), बाद में उस वस्तु की पुष्टि करना - स्थिरता करके शांति की पुष्टि करना उसका नाम पौषध है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि शुभाशुभोपयोग को छोड़कर **`शुद्धोपयोगवृत्ति को (आत्मरूप, अपनेरूप) करते हुए...'** आहाहा ! शुभाशुभभाव को अपनेरूप करता था तब तक तो मिथ्यादृष्टि था और सम्यग्दर्शन होने के बाद भी, शुभपरिणाम मेरे नहीं (ऐसा मानने पर भी) वे होते (थे)। उसे आत्मरूप नहीं करते थे। (शुभाशुभ को) भिन्न रखने पर भी (ज्ञानी को) शुभाशुभभाव होते थे। (किन्तु) अब, उन्हें भी छोड़कर शुद्धोपयोग को आत्मरूप करना ऐसा कहते हैं। आहाहा ! ऐसी बात (है) !

शुद्धोपयोग को आत्मसात् करते हुए **`शुद्धोपयोग अधिकार आरंभ करते हैं।'** शुभ का (तथा) अशुभ का तिरस्कार करके, और उन्हें हेय कराके अब शुद्धोपयोग का अधिकार आरंभ करते हैं। आहाहा ! **`उसमें (पहले) शुद्धोपयोग के फल की आत्मा के प्रोत्साहन के लिये प्रशंसा करते हैं।'** आहाहा ! शुद्धोपयोग का फल अनंत सुख है (और) शुभाशुभ का फल दुःख है। (फिर) भले ही स्वर्ग मिले या ये अरबोपति-धूल के सेठ हो जाये। किन्तु वे सब दुःखी हैं। उसे अपना मानकर जो रहता है वह मिथ्यादृष्टि दुःखी है। और उसे कदाचित् अपना मानकर नहीं रहता किन्तु जो अस्थिरता होती (है) उसका यदि प्रेम है तो वह भी मिथ्यादृष्टि है। (तथा) वह अस्थिरता रहने पर भी, वह अपनी नहीं है ऐसा ज्ञायक रहता है तो वह सम्यग्दृष्टि है। किन्तु यहाँ तो उस अस्थिरता को भी छुड़ाकर शुद्धोपयोग का अधिकार, कि जिसका फल - शुद्धोपयोग का फल - अनंत आनंद - अनंत आनंद है। (वह कहते हैं)। आहाहा!

शुभ और अशुभपरिणाम स्वयं दुःख(रूप) है और उसके फलस्वरूप (जो) गति मिलती (है) वह भी दुःखरूप है और यह जो शुद्धोपयोग है (वह सुखरूप है)। चैतन्यस्वरूप शुद्ध पवित्र भगवान(आत्मा) द्रव्य है। (और उसके) जो गुण हैं वे (भी) पवित्र हैं। उसकी पवित्रता की दृष्टि करके पवित्रतारूप उपयोग शुद्ध करना। आहाहा ! उसके फल को आत्मा के प्रोत्साहन के लिये - आत्मा का उत्साह बढ़ाने के लिये - यह गाथा लेते (कहते) हैं।

टीका :- (१) **`अनादि संसार से जो पहले कभी अनुभव में नहीं आया ऐसे अपूर्व, परम अद्भुत आह्लादरूप...'** आहाहा ! अनादि से संसार में - नरक में या मनुष्य में या राज(पद) में या देव में - कहीं भी आत्मा का आनंद अनुभव में आया नहीं। आहाहा ! उन सब गति में (तो) दुःख का अनुभव किया है। (क्योंकि) इन्द्रिय सुख है वह भी दुःख है। आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि **`अनादि संसार से...'** आहाहा! (अर्थात्) जिसके संसार के परिभ्रमण की शुरूआत नहीं। आहाहा ! किसी समय संसार परिभ्रमण शुरू हुआ (है) ऐसा नहीं। वह तो अनादि है। आहाहा ! इस भव से पहले भव, उस भव के पहले भव, उस भव के पहले भव और उस भव के पहले भव - ऐसे जिसकी शुरूआत नहीं ऐसे अनादि संसार के परिभ्रमण से पहले कभी आह्लाद अनुभव में आया नहीं। आहाहा ! (अर्थात्) आत्मा का जो आनंद है वह कहीं भी कभी चार गतियों में अनुभव में आया नहीं। आहाहा ! **`ऐसे अपूर्व...'** अपूर्व अर्थात् पूर्व में नहीं हुआ **`परम अद्भुत आह्लादरूप होने से...'** परम अद्भुत आह्लादस्वरूप होने से आनंद `अतिशय' है। उस शुद्धोपयोग का फल (ऐसा) अतीन्द्रिय आनंद **`अतिशय'** है, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा !

शुभाशुभोपयोग का फल चार गति है। ज्ञानी को भी (यदि) शुभाशुभभाव होते हैं तो, उनसे उसे बंधन होता (है)। किन्तु बात यह है कि जिसे आत्मधर्म है - द्रव्यस्वभाव जो पवित्र है उसका (जिसे) अनुभव और दृष्टि हुई है - उसे, उसमें अशुभभाव आता (है)। तथापि उसे भविष्य का आयुष्य (तो) शुभ(भाव) के काल में (ही) बंधता (है)। क्योंकि द्रव्य को हाथ में लिया है न ? ग्रहण किया है न ? आहाहा ! वीतरागमूर्ति प्रभु भगवान(आत्मा को) जिसने दृष्टि और ज्ञान में लिया है ऐसे जीव को भी शुभ और अशुभभाव (तो) होते हैं (और) अशुभ से पाप का (भी) बंध होता है। किन्तु उसे भविष्य के आयुष्य का बंध उसमें (उस काल में) नहीं होता। आहाहा ! भविष्य के आयुष्य का बंध तो शुभभाव के काल में ही होता है। क्योंकि शुभभाव भी बंध का कारण है न ! आहाहा !

(कहते हैं कि) आत्मा के शुद्धोपयोग का (फल) अतिशय सुख है। आहाहा ! शुद्धोपयोग स्वयं ही आनंदस्वरूप है (जब कि) शुभ और अशुभ उपयोग दुःखस्वरूप है और उसके फल स्वरूप (मिलनेवाली) चार गति भी दुःखरूप हैं। आहाहा ! भगवानआत्मा चैतन्यस्वरूप (है)। उसके प्रति का (जो) उपयोग शुद्ध होता है वह वर्तमान आनंदस्वरूप है। किन्तु (वह) थोड़ा (है)। (जब कि) उसके फल स्वरूप (अनंत आनंद है)। अनंत अतिशय आनंद उसका फल है। आहाहा ! जिसके सुख की गंध इन्द्र के इन्द्रासन में या क्रोड़ो इन्द्राणी में या चक्रवर्ती के राज्य में नहीं। आहाहा ! ऐसा जो सुख (है वह) अतिशय सुख (है)। (और) अद्भुत परम अद्भुत (है) ! आहाहा ! केवल अद्भुत नहीं। (किन्तु परम अद्भुत

है)। आत्मा की पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद (कि) जो शुद्धोपयोग का फल (है वह अपूर्व है)। ऐसा आह्लाद पहले अनुभव में आया नहीं। ऐसा सुख और आनंद पहले नहीं हुआ (है)। (अर्थात्) पहले एक समय भी कभी नहीं हुआ ऐसा वह परम अद्भुत आह्लाद - आनंद...आनंद...आनंद...आनंद... (है)। ऐसा आनंद होने से उस शुद्धोपयोग के फल को अतिशय कहने में आता है। आहाहा !

पहले (इसप्रकार) श्रद्धा तो करे, - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! शुभ से धर्म मानता (हो), शुभ को मोक्ष का कारण मानता (हो), वह तो पहले बदल, भाई ! बाद में शुद्धोपयोग की (बात)। यद्यपि सम्यग्दर्शन होने पर (शुद्धोपयोग होता है)। (सम्यग्दर्शन) शुद्धोपयोग में ही होता (है)। किन्तु वह शुद्धोपयोग मुनि का सातवें (गुणस्थान में) होता है ऐसा नहीं होता। ऐसे शुद्धोपयोग के लिये उसे शुभ को छोड़कर स्वरूप में (आना चाहिये)। व्रतादि के विकल्प हैं वे भी शुभ हैं। आहाहा !

कोई ऐसा कहता है कि, व्रत और पूजा यह अरागीभाव है। अररर...! क्या कहते हो प्रभु ? आहाहा ! मोक्षमार्ग प्रकाशक में ऐसा नहीं कहा ? कि जिस प्रकार हिंसा के परिणाम (बंध का कारण हैं)। (सातवां अधिकार) उसी प्रकार अहिंसा के - व्रत के - परिणाम भी बंध का कारण हैं। आहाहा ! दोनों बंध के कारण हैं। वह यहाँ कहते हैं कि शुभाशुभपरिणाम वर्तमान दुःखरूप है और उसका फल भी दुःख है। (फिर) चाहे तो स्वर्ग मिलता हो तो भी वह दुःख है। आत्मा का आनंद वहाँ नहीं। आहाहा ! ये पाँच-दस करोड़ की आमदनीवाले अरबोपति सेठ होते हैं तथापि वे सब दुःखी हैं। क्योंकि जिसे आत्मा के आनंद की ख़बर भी नहीं और धूल में - पर में मुझे सुख है और हम सेठ हैं - (ऐसा मानते हैं) उन्हें भगवान ने वरांका - भिखमंगे कहा है। प्रभु तेरे में कहाँ क़मी है ? भगवान होकर तू पर से भीख मांगता है ? आहाहा ! तेरे में कहाँ अपूर्ण सुख है या अपूर्ण ज्ञान (है) ? (तेरे में तो) पूर्ण आनंद और पूर्ण ज्ञान और पूर्ण सुख भरा है न प्रभु ? पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनंद का अस्तित्व - मौजूदगी वह आत्मा है। आहाहा ! ऐसे आत्मा में अनंत सुख भरा है उसका - अनादर करके पर में तू सुख मानता है प्रभु ! (तो) तुमने तो, अपने स्वभाव का तिरस्कार किया। तो यहाँ कहते हैं कि अब पुण्य-पाप का तिरस्कार करके... आहाहा! ऐसी बातें हैं। वीतराग, जिनेश्वर, परमेश्ववर का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। भाई ! 'केवलीपण्णत्तत: धम्मो शरणं' - ऐसा मांगलिक में आता है न ? बापू ! वह कोई सूक्ष्म चीज है। इस समय तो संप्रदाय में व्रत करो और उपवास करो और भक्ति करो और पूजा करो और दान करो और साधु को आहार दो (ऐसी बातें चलती हैं)। किन्तु क्या (आहार दे) ? जब साधु ही सच्चे नहीं तब आहार देने का तेरा भाव

(मिथ्या है)। आहाहा ! उसमें संतोष मानकर (अज्ञानी) जिंदगी बिताता (है)। अरेरे ! भाई ! तेरे जन्म-मरण के अभाव की बातें रह गईं। वे शुभाशुभ तो जन्म-मरण होने के भाव हैं। (यदि) उससे रहित शुद्धोपयोग होता है तो सुख है, वह अति आह्लादरूप अतिशय है - एक बात।

(अब दूसरी) `(२) **आत्मा का ही आश्रय लेकर (स्वाश्रति) प्रवर्तमान होने से...**' लीजिये ! १०वीं गाथा में कहा था कि शुभाशुभभाव आत्मा के आश्रय से (होते हैं)। (किन्तु) वह दूसरी अपेक्षा (है)। १०वीं गाथा में आता है (उसका अर्थ यह है कि) शुभाशुभपरिणाम किसी कर्म के कारण - आश्रय से नहीं होते - इतना (वहाँ) बतलाना है। समझ में आया ? शुभाशुभपरिणाम आत्मा की पर्याय में पर्याय के कारण होते हैं। वे किसी कर्म के कारण होते हैं ऐसा नहीं। - ऐसा बतलाने के लिये वे शुभाशुभ आश्रव आत्मा के आश्रय से होते (हैं ऐसा कहा है)। उनकी पर्याय के आश्रय से (वे होते हैं), (और उन) पर्याय को आत्मा मानकर, आत्मा के आश्रय से होते (हैं ऐसा कहा है)। आहाहा ! और यहाँ `**आत्मा का ही आश्रय लेकर...**' (ऐसा कहा है)। दोनों (जगह पर) `आश्रय' शब्द (है)। आहाहा ! (१०वीं गाथा में) पर्याय के आश्रय से और पर्याय में होनेवाले विकारीभावों में पर का आश्रय नहीं (ऐसा कहा है)। यहाँ, जो शुद्धोपयोग है (वह) पुण्य-पाप के भाव से - शुभाशुभभाव से रहित (है ऐसा कहा है)। आत्मा शुद्ध पवित्र है और उसके अनंतगुण भी पवित्र हैं। उसके आश्रय से यह शुद्धोपयोग होता है। अर्थात् उसके आश्रय से शुद्धोपयोग का फल होता (है)। आहाहा! ऐसी बातें हैं !

`**आत्मा का ही आश्रय लेकर (स्वाश्रित)...**' भगवानआत्मा पूर्णानंद का नाथ प्रभु (है)। उसके आश्रय से शुद्धोपयोग के फलस्वरूप परम आनंद प्रगट होता है। (कि जो) अतीन्द्रिय आनंद की गंध स्वर्ग में इन्द्रों को (भी) नहीं। आहाहा ! सम्यग्दर्शन होता है और आनंद का अंश होता है (तो) उसकी बात नहीं। (किन्तु) जो पूर्ण वस्तु है उसकी गंध कहीं (बाहर में) नहीं। आहाहा ! कद्दू की वेल छोटी (पतली) होतीी है। किन्तु कद्दू बड़े - आधे - आधे मन का पकता है। आहाहा ! भगवानआत्मा की वेल ऐसी है कि शुद्ध आनंदघन प्रभु के (आश्रय से) उपयोग शुद्ध होने पर, उसे अतीन्द्रिय आनंद का कद्दू - सक्करकोला पकता है ऐसे अतीन्द्रिय आनंद का कद्दू - पकता है, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! देखा है न सब कुछ।

यहाँ पर कहते हैं कि भगवानआत्मा अतीन्द्रिय आनंद से लबालब भरा प्रभु (है)। उसको जब अंदर शुद्धोपयोग होता है तब उसकी पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद का अपूर्व भाव प्रगट होता है। वह आत्मा के आश्रय से होता है। उसे किसी निमित्त की या इन्द्रिय की ज़रूरत

नहीं। आहाहा ! यह एक-एक बात बहुत कठिन (है)। बापू !

(आगे कहते हैं कि) '(३) **पराश्रय से निरपेक्ष होने से...**' अर्थात् ? अंदर जो शुद्धोपयोग का फल अतीन्द्रिय आनंद (है) उसमें पराश्रय का अभाव है। स्वाश्रय का सद्भाव है और पराश्रय का अभाव है। (वह) '**(-स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द के तथा संकल्पविकल्प के आश्रय की अपेक्षा से रहित होने से)...**' (संकल्प-विकल्प) वह मन है। इन्द्रिय के और मन के आश्रय की अपेक्षा रहित होने से 'विषयातीत' है। (यानी कि) भगवानआत्मा विषयातीत स्वरूप है। उसके विषयातीत स्वरूप का जब ज्ञान (और) उसका शुद्धोपयोग हुआ तो (वहाँ) उसके फलस्वरूप विषयातीत - अतीन्द्रिय आनंद उसको आता है। आहाहा ! वह अतीन्द्रिय आनंद कोई बाहर से नहीं आता। (किन्तु) अंदर भरा है। आहाहा !

भगवान(आत्मा) असंख्य प्रदेशी तत्त्व है। (किन्तु वीतराग) प्रभु ने कहा वह। बाक़ी वीतराग के सिवा जो कोई आत्मा-आत्मा करते (हैं) उन्हें आत्मा की ख़बर नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर ने जिसे आत्मा कहा है (वह) भक्ति में आता है न ? कि 'प्रभु तुम जाणगरीति, सरव जग देखता हो लाल...' आहाहा ! 'प्रभु तुम जाणगरीति...' हे नाथ ! केवलज्ञान में आप 'सरव जग देखता हो लाल' - तीनकाल तीनलोक को देखते हो प्रभु ! किन्तु 'निज सत्ताए शुद्ध, सहुने पेखता हो लाल...' किन्तु प्रभु ! हमारी निज सत्ता को यानी (कि) निज अस्तित्व को (अर्थात्) निज के होनेरूप अस्तित्व को तो आप शुद्ध देखते हो। उसे आप आत्मा देखते हो। आहाहा !

भगवान इस आत्मा को और अनंत आत्मा को कैसा देखते हैं ? (कि) निज सत्ता-अपना अस्तित्व (जो) पवित्र और शुद्ध है उसे हे भगवान ! आप आत्मा कहते हैं और जानते हैं। (जब कि) अंदर पुण्य और पाप के विकल्प हैं वे तो आश्रवतत्त्व हैं (और) यह जड़ है वह तो अजीवत्त्व है, हे भगवान ! आपके ज्ञान में - हे वीतराग परमेश्वर प्रभु नाथ ! आपके ज्ञान में - हमारा (जो) यह आत्मा निज अस्तित्वरूप शुद्ध है उसे आप आत्मा जानते हो (और) कहते हो। आहाहा ! ऐसा जिस प्रकार भगवान ने जाना है उसीप्रकार - जो आत्मा को जानते (हैं उन्हें सम्यग्दर्शन होता है)। आहाहा!

(जो) निज सत्ता (है) अपना जो अस्तित्व है, अपनी जो हयाती (जो) है, जो मौजूद चीज है वह तो केवल अनंत-अनंत गुण की पवित्रता की खान है। आहाहा ! पवित्रता की खान कहना वह तो पर्याय की अपेक्षा से है बाक़ी वह तो अनंत-अनंत गुणस्वरूप है जिसमें से अनंत आनंद (आता है)। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग को शुद्धोपयोग के फलस्वरूप जो अनंत आनंद प्रगट हुआ है (वह तो) एक समय का आनंद (है)। ऐसा दूसरे समय में अनंत आनंद, ऐसा तीसरे समय में अनंत आनंद, इस प्रकार सादि अनंतकाल तक

अतीन्द्रिय आनंद जो (है वह) पराश्रय बिना का और स्वाश्रयवाला (है)। (ऐसे) शुद्धोपयोग का फल परम आनंद है। आहाहा ! (और वह) पराश्रय से निरपेक्ष (है)। (यानी कि) पाँच इन्द्रिय, शब्द और मन के संकल्प-विकल्प के आश्रय की अपेक्षा से रहित होने से विषयातीत है - विषय से रहित है। आहाहा ! मन और पंचेन्द्रिय के विषय के सुख से वह रहित है। आहाहा !

(अज्ञानी जीव) इन्द्रिय से विषय को ग्रहण करता है। (उसमें) इन्द्रिय तो निमित्त है। हड्डी, मांस और चमड़े का (बना हुआ जो) स्त्री का शरीर है उसका जीव को अनुभव नहीं। क्योंकि वह तो जड़ है। हड्डियाँ, चमड़े और मांस तो जड़ हैं। उन्हें आत्मा स्पर्श भी नहीं करता। मात्र उसके प्रति लक्ष जाने पर उसे `ये ठीक हैं' ऐसा जो राग होता है उस राग का - इन्द्रिय के विषय को भोगने के राग को - भोगा है। (किन्तु) उस स्त्री के शरीर का भोग नहीं। आहाहा ! (क्योंकि) यह शरीर तो जड़-मिट्टी-धूल है और आत्मा तो अरूपी है। वर्ण-गंध-रस-स्पर्श से रहित (वह) चीज, स्पर्श को छूती भी नहीं। केवल उसे विषयों के प्रति प्रेम है न ! अत: `ये ठीक हैं', ऐसा राग करके राग का अनुभव करता है। वह दुःख का अनुभव करता है। (जब कि) इस शुद्धोपयोग का फल विषयातीत है ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा ! जो पंचेन्द्रिय और मन के विकल्प से भी पार - भिन्न है ऐसा आत्मज्ञान शुद्धोपयोग का फल, विषय से अतीत नाम दूर है (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बातें (हैं) !

अज्ञानी को तो पाठ बोलने से सामायिक और लोगस्स हो गया ऐसा मानता है। किन्तु उसे तो अर्थ की भी ख़बर नहीं होती। `विहूय रयमला' - ऐसा लोगस्स में आता है न ? तो उसमें एकबार एक स्त्री ऐसा बोली कि `विहा रोई मर्या।' कोई अर्थ की भी ख़बर नहीं - भान नहीं और पहाड़ा चलाये रखता है। आहाहा ! देखिये तो सही कि इस पाठ में क्या है ? अरे ! `विहा रोई मर्या' नहीं है, प्रभु ! `विहूय रयमला' है। हे परमात्मा ! हे सिद्ध भगवान ! आपने `विहुय' नाम विशेषरूप से नाश किये हैं। `वि = विशेषरूप से।' `हुय = नाश किये हैं।' `रय = रज = आठकर्म। और मला = मल = पुण्य-पाप के भाव।' वह `रयमला' (नाम) आठ कर्मरूपी रज और पुण्य-पाप के भावरूपी मैल का आपने नाश किया है। यह `विहूय रयमला' का अर्थ है। किन्तु इसकी भी ख़बर नहीं होती और रूढ़ि चलाये रखता है और सामायिक किया (ऐसा मानता है)। किन्तु धूल में भी सामायिक नहीं, सुन तो सही ! आहाहा! ऐसा ही चलता है। आहाहा ! (अज्ञानी) बेचारी को कोई ख़बर नहीं। सारा दिन खाना पकाना होता है और पति की देखभाल करनी होती है ऐसे में किसी दिन सामायिक करती है तो (ऐसा अर्थ करती है)। आहाहा !

यहाँ कहते हैं (कि) आत्मा का - शुद्धोपयोगरूप आनंद पर के आश्रय से रहित है। (अब) चौथा बोल। '(४) **अत्यंत विलक्षण होने से (अन्य सुखों से सर्वथा भिन्न लक्षणवाला होने से)...**' आहाहा ! शब्द का सुख, रूप का सुख ऐसा जो कल्पना का सुख है उससे विलक्षण आत्मा का सुख है। (अर्थात्) (आत्मा के) सुख का लक्षण ही भिन्न है। आहाहा ! समझ में आया ? 'सुखिया जगतमां संत, दुरिजन दुखिया रे...' जिसे पुण्य और पाप के भावरहित आत्मा के आनंद का अनुभव हुआ (है) वह जीव सुखी है। आहाहा ! बाक़ी 'दुरिजन दुखिया रे...' वे सब अरबपति और राजा और देव दुरिजन, दुःखी हैं।

प्रश्न :- अरबपति दुःखी हैं। किन्तु लाखपति तो सुखी है ?

समाधान :- ये लाखपति भी दुःखी हैं)। पैसे भले ही थोड़े हो। (किन्तु) ये पैसे मेरे हैं ऐसी ममता है तो वे सब दुःखी हैं। आहाहा ! (और) समकिती को चक्रवर्ती का राज होने पर भी वह पर में सुख मानता नहीं। आहाहा ! ऋषभदेव भगवान के पुत्र भरत चक्रवर्ती को छः खंड का राज (था) और ९६ हजार स्त्री (थी)। ऐसी स्त्री नहीं, ये तो धान्य के पुतले (हैं)। (किन्तु) उसकी एक स्त्री की एक हजार देव सेवा करते (थे)। - (ऐसी स्त्री थी)। (तथापि) उससे सुख है ऐसी कल्पना का नाश कर दिया था। (तथापि) आसक्ति का भाव आता है। (क्योंकि) समकिती है न ! मुनि नहीं। तथापि उसमें सुख है ऐसी बुद्धि नष्ट हो गई है। सुख तो भगवानआत्मा में है। आहाहा ! समझ में आया ?

(यहाँ कहते हैं कि) '**अत्यंत विलक्षण...**' (अर्थात्) इन्द्रिय सुख से अतीन्द्रिय शुद्धोपयोग के फलस्वरूप सुख, अत्यंत विलक्षण (है)। (उसका) कोई भी लक्षण इन्द्रिय के विषय(सुख) के साथ मिलता नहीं। (अतः) दूसरे सुख से सर्वथा भिन्न लक्षणवाला होने से - '**अनुपम**' (है)। उसको उपमा क्या दे ? आहाहा ! अतीन्द्रिय आनंद के स्वभाव का - शुद्धस्वभाव का - जो फल है उसे उपमा किसकी दे ? उसकी उपमा उसी को। आहाहा ! चक्रवर्ती और इन्द्र को (जो) इन्द्रिय का सुख (है) उसकी उपमा भी नहीं दे सकते कि इस इन्द्रिय सुख से आत्मा का सुख अनंतगुण है (क्योंकि) जब तो राग का (जो) दुःख (है) उससे अनंतगुण दुःख (हुआ)। - वह गणना ही गलत है। आहाहा! (अज्ञानी) कहता है कि इन्द्र को सुख होता है, राजा को सुख होता है और सेठ लोगों को सुख है उससे आत्मा का अतीन्द्रिय सुख अनंतगुण (है)। (किन्तु यदि ऐसा होता तो) राग में तो ज़हरीला सुख है। (तो) क्या ज़हरीले सुख से अनंतगुण आत्मा का सुख ? (नहीं)। इसकी गणना इस प्रकार होती होगी ? आहाहा! (अज्ञानी को) कोई ख़बर नहीं कि मैं क्या बोलता हूँ और क्या मानता हूँ। मूर्ख-पागल की भाँति जगत (अज्ञानी) जिंदगी बिताता (है)। आहाहा! वीतराग परमात्मा का क्या तत्त्व है और (वीतराग परमात्मा ने) क्या कहा है उसके भान

रहित (वह) चार गति के दुःख में भटकता है। (किन्तु) अब यहाँ तो (कहते हैं कि) शुद्धोपयोगी जीव को जो अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति होती (है) वह अनुपम आनंद है। उस आनंद की कोई उपमा दे सकते नहीं। आहाहा ! (बाहर में) एक घी के स्वाद की भी उपमा दे सकते नहीं। घी का स्वाद कैसा ? केले जैसा ? तालाब में घी केले होते हैं न उनके जैसा? शक्कर जैसा ? गुड़ जैसा ? उस घी के स्वाद का ज्ञान होता (है)। किन्तु कोई (दे सके ऐसी) उपमा मिलती नहीं। तो, वे तो धूल के सुख (हैं)। आहाहा ! घी का स्वाद अर्थात् जड़। (क्योंकि) वह घी तो धूल है। उसके स्वाद का यहाँ ज्ञान है और ज्ञान में 'ये ठीक हैं' ऐसा जो राग हुआ है उसका स्वाद (है)। (जो) दुःख है। आहाहा ! उस घी के स्वाद को भी जब बता सके ऐसी चीज नहीं तो (फिर) अतीन्द्रिय आनंद (कि) जो प्रभु (आत्मा का) सुख है उसे कौन सी उपमा दें ? समझ में आया ? आहाहा !

यह धर्म बापू ! सूक्ष्म चीज है, प्रभु ! यह धर्म अर्थात् शुद्धोपयोग को धर्म कहते हैं। (अर्थात्) चारित्र धर्म (है) और उसका कारण सम्यग्दर्शन - ज्ञान (वह) पहला है। आहाहा ! 'चारित्तं खलु धम्मो' (गाथा - ७) और ('दंसण मूलो धम्मो।') - धर्म का कारण सम्यग्दर्शन है। वस्तु भगवानआत्मा परिपूर्ण आनंदस्वरूप प्रभु है। उसके अस्तित्व का सत्त्व इतना है ऐसा ज्ञान होकर प्रतीति होती है वह चारित्ररूपी धर्म का कारण है। किन्तु जब चारित्रधर्म - शुद्धोपयोग प्रगट होता है... आहाहा ! वह तो पहले आ गया न ? कि जब तक राग का अंश रहता है तब तक वह सराग चारित्र, हेय है, और राग को छोड़कर अंदर शुद्धोपयोग की मग्नता (होती है) वह उपादेय है और उस उपादेयता का फल अतीन्द्रिय आनंद है। जिसे कोई उपमा दे सकते नहीं। (ऐसा) कहते हैं। आहाहा ! घी के स्वाद को जानने पर भी, कौन सी उपमा दी जाये, कि घी का स्वाद शक्कर जैसा ? गुड़ जैसा ? तालाब में घी केले होते हैं (उनके जैसा ?) आम जैसा स्वाद होगा ? उनके स्वाद की और इस स्वाद की कोई जात ही अलग है। आहाहा ! (स्वाद) ख्याल में आता है किन्तु कुछ कह सकते नहीं। तो यह तो प्रभु (आत्मा का) अतीन्द्रिय आनंद ! आहाहा ! जिसने आत्मा के सम्यग्दर्शन सहित शुद्धोपयोग का परिणमन किया है (उसे) उसके फलस्वरूप अतीन्द्रिय आनंद (होता है)। उसे कौन सी उपमा दे ? आहाहा ! - ये चार बोल हुये।

(अब) पाँचवाँ। '(५) **समस्त आगामी काल में कभी भी नाश को प्राप्त न होने से...**' और-तदुपरांत वह आनंद जो प्रगट हुआ, वह कभी नाश नहीं होता। (जब कि) इन विषयों के सुख तो - चक्रवर्तियों जैसे सुख हो तथापि - विच्छेद हो जाते हैं। आहाहा ! बारहवाँ

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, कि जिसे छ: खंड का राज्य था, ९६ हजार रानियाँ थी और जो रत्न के पलंग पर सोता था वह, मरने पर वे विषय छूट गये और वह नरक में, सातवीं नारक में गया। इस समय भी वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सातवीं नारक में है। आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि विषय का सुख तो नाशवान है। वह बदल गया तो बात खत्म हो गई। (जब कि) इस आत्मा के शुद्धोपयोग का फल नाशवान नहीं - अविच्छिन्न है। आहाहा! यहाँ पर अरबपति सेठ हो और १०-१० करोड़ की तो आमदनी हो (तो) भी वे इन्द्रिय के सुख नाशवान हैं। आहाहा! बुढ़ापा आ गया और शरीर में रोग आया - पक्षघात हो गया - (तो, वे नष्ट होते हैं)। आहाहा ! (अत:) वे इन्द्रिय के सुख तो नाशवान हैं। यह अतीन्द्रिय सुख जो है वह अविनाशी है। है (अंदर) ? `अनंत' है। यानी कि उसका भविष्यकाल में कभी भी अंत नहीं होगा। जब से सर्वज्ञ परमेश्वर भगवान को शुद्धोपयोग के फलस्वरूप अनंत आनंद प्रगट हुआ (है तब से) भविष्य में अनंत-अनंतकाल तक वह रहनेवाला है। देखिये ! जिसने शुभाशुभभाव का तिरस्कार किया है ऐसे शुद्धोपयोग की प्रशंसा करके उसके फल को बतलाते हैं। आहाहा ! यह पाँचवां बोल अनंत का हुआ। गाथा में है न ? कि `अणोवममणंतं'।

(अब कहते हैं कि) `**(६) बिना ही अंतर के प्रवर्तमान होने से `अविच्छिन्न' (है)।**(अर्थात्) उसमें अंतर पड़ता नहीं। (जब कि) विषय सुख में तो अंतर पड़ता (है)। पक्षघात हो जाये (और) छ: महीना तक बिस्तर में पड़े (बिमार हो जाये) तो बात खत्म हो गई - सभी शौकमौज पड़े हो (तथापि) कुछ भोग सकता नहीं। आहाहा! गले में केन्सर होता है तो (गले में) पानी उतारते हुये चिखता है। `**बिना ही अंतर के**' (यानी कि) अतीन्द्रिय आनंद में तो अंतर ही नहीं। आहाहा ! (जब कि) ये (इन्द्रिय सुख) तो २५-५० बरस भोगने पर क्षय हो जाता है - पक्षघात हो जाता है। पाचनशक्ति ऐसी क़मजोर हो जाती है कि मौसंबी का पानी (रस) भी पचना कठिन पड़ता है। ऐसे इन्द्रिय के विषय के सुख विच्छिन्न (है)। - अंतर पड़कर नष्ट होनेवाले हैं। आहाहा!

`बिना ही अंतर के प्रवर्तमान होने से `अविच्छिन्न' सुख शुद्धोपयोग से निष्पन्न हुए...' लीजिये ! आहाहा ! जैसे द्रव्य और गुण शुद्ध है ऐसे ही शुद्ध परिणाम होने से (अर्थात्) वस्तु-द्रव्य और गुण तो शुद्ध है ही। (अब) ऐसे ही शुद्ध परिणाम होने से... आहाहा ! उसे शुद्धोपयोग कहते हैं। आहाहा ! `**बिना ही अंतर के प्रवर्तमान होने से `अविच्छिन्न'...**' - ऐसा शुद्धोपयोग से निष्पन्न हुए आत्माओं का सुख है। `**इसलिये वह (सुख) सर्वथा प्रार्थनीय (वांछनीय) है।**' आहाहा ! लोगस्स में नहीं आता ? (कि) `सिद्धासिद्धिंममदिसंतु' - (किन्तु अज्ञानी को तो) उसकी ख़बर भी नहीं होती कि यह क्या है। हे सिद्ध भगवंतो, आपका

जो अनंत सुख है वह मुझे दिखाइये। उसका अर्थ यह है कि मैं केवलज्ञान को पाऊँ, वह शुद्धोपयोग से पाया जाता है। (उसमें) आता है न ? कि `सिद्धासिद्धिंममदिसंतु' - हे सिद्ध भगवंतो ! (वे) अनंत बिराजमान हैं न ? मुझे सिद्धत्व दिखाइये (तो) वह दिखाई देता है कब ? कि केवलज्ञान होता है तब। यानी कि मुझे केवलज्ञान प्राप्त हो - मैं आत्मा में शुद्धोपयोग में रमणता करूं और मुझे केवलज्ञान हो - वह सिद्ध भगवान के पास प्रार्थना की है। (यद्यपि) भगवान किसी को कुछ देते नहीं। भगवान तो भिन्न चीज है (और) भगवान कुछ लेते-देते नहीं। किन्तु याचना - प्रार्थना करनेवाले ऐसा कहते हैं। आहाहा ! ऐसी बातें (हैं) ! (अन्य) कहीं भी सुनाई नहीं दे ऐसी बातें (हैं)। (अत: अज्ञानी को ऐसा होता है कि) क्या यह नवीन धर्म निकाला होगा ? कई लोग ऐसा कहते हैं, `सोनगढवाले ने नवीन धर्म निकाला'। अरे प्रभु, नया नहीं है। वीतरागप्रभु का धर्म ही यह है। आहाहा !

प्रश्न :- सम्यग्दर्शन तो नवीन प्रगट होता है न ?

समाधान :- वह भी नवीन नहीं। वह तो अंदर पुराना... पुराना धर्म लिया जान मेरे संतो ! पुराना धर्म... अनंत आनंद(मय) जो पुराना धर्म है उसका भान हुआ तो वह (प्रगट) हुआ। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। जगत से बहुत न्यारी बातें भाई ! अरेरे! जन्म-मरण करके अनंतबार शुभाशुभभाव किये (हैं)। नौवीं ग्रेवेयक गया तो वे शुभभाव कैसे होंगे प्रभु ? आहाहा! तथापि, उसके फलस्वरुप तो ग्रेवेयक के दुःख हैं। वहाँ राग है, राग। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) **`शुद्धोपयोग से निष्पन्न हुए'** अर्थात् शुद्धोपयोग को प्राप्त हुआ **`सुख शुद्धोपयोग से निष्पन्न हुए आत्माओं के होता है, इसलिये वह** (सुख) **सर्वथा प्रार्थनीय** (**वांछनीय**) **है।'** देखा ? उसको हेय कहा था - शुभभाव को हेय कहा था और अशुभभाव को `अत्यंत हेय' कहा था। (तो) इस सुख को अत्यंत आदरणीय-उपादेय-प्रार्थनीय कहते हैं। आहाहा ! अत: वह आनंद सर्वथा प्रार्थनीय है। **`सर्वथा प्रार्थनीय (वांछनीय) है।'** आहाहा ! परमानंदनाथ प्रभु कि जिसका फल परमानंद है उसकी इच्छा-भावना करने योग्य है। आहाहा ! - शुद्धोपयोग के फल का वर्णन किया।

`अब शुद्धोपयोगपरिणत आत्मा का स्वरूप कहते हैं।'** जिसे शुद्धोपयोग हुआ है वह आत्मा कैसा होता है ? उसकी दशा कैसी होती है कि जिसके फल,स्वरूप यह अनंत आनंद की प्राप्ति होती है ? - उस शुद्धोपयोग की व्याख्या अब करते हैं। (जब कि) पहले शुद्धोपयोग के फल की व्याख्या कही थी। आहाहा ! **`शुद्धोपयोगपरिणत...' देखा ? सम्यग्दर्शन है (और) चारित्र भी है। किन्तु जब शुभोपयोग राग होता है तब तो शुद्धोपयोग नहीं। किन्तु यह तो शुद्धोपयोग (जिसे हुआ है) - राग को छोड़कर जिसे शुद्ध पवित्रता

अथ शुद्धोपयोगपरिणतात्मस्वरूपं निरूपयति -

सुविदिदपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगो त्ति।।१४।।
सुविदितपदार्थसूत्रः संयमतपःसंयुतो विगतरागः।
श्रमणः समसुखदुःखो भणितः शुद्धोपयोग इति।।१४।।

सूत्रार्थज्ञानबलेन स्वपरद्रव्यविभागपरिज्ञानश्रद्धानविधानसमर्थत्वात्सुविदितपदार्थसूत्रः। सकलषड्-जीवनिकायनिशुम्भनविकल्पात्पंचेन्द्रियाभिलाषविकल्पाच्च व्यावर्त्यात्मनः शुद्धस्वरूपे संयमनात्, स्वरूपविश्रा-न्तनिस्तरङ्गचैतन्यप्रतपनाच्च संयमतपःसंयुतः। सकलमोहनीयविपाकविवेकभावनासौष्ठवस्फुटीकृतनिर्विका-रात्मस्वरूपत्वाद्विगतरागः। परमकलावलोकनाननुभूयमानसातासातवेदनीयविपाकनिर्वर्तितसुखदुःखजनित-परिणामवैणम्यत्वात्समसुखदुःखः श्रमणः शुद्धोपयोग इत्यभिधीयते।।१४।।

अथ येन शुद्धोपयोगेन पूर्वाक्तसुखं भवति तत्परिणतपुरुषलक्षणं प्रकाशयति - **सुविदिदपयत्थसुत्तो** सुष्ठु संशयादिरहितत्वेन विदिता ज्ञाता रोचिताश्च निजशुद्धात्मादिपदार्थोस्तत्प्रतिपादकसूत्राणि च येन स सुविदितपदार्थसूत्रो भण्यते। **संजमतवसंजुदो** बाह्ये द्रव्येन्द्रियव्यावर्तनेन षडजीवरक्षणेन चाभ्यन्तरे निजशुद्धात्मसंवित्तिबलेन स्वरूपे संयमनात् संयमयुक्तः, बाह्याभ्यन्तरतपोबलेन कामक्रोधादिशत्रुभिरखण्डित-प्रतापस्य स्वशुद्धात्मनि प्रतपनाद्विजयनात्तपःसंयुक्तः। **विगदरागो** वीतरागशुद्धात्मभावनाबलेन समस्तरागादिदोषरहितत्वाद्विगतरायः। **समसुहदुक्खो** निर्विकारनिर्विकल्पसमाधेरुद्गता समुत्पन्ना तथैव परमानन्दसुखरसे लीना तल्लया निर्विकारस्वसंवित्तिरूपा या तु परमकला तदवष्टम्भेनेष्टानिष्टेन्द्रियविषयेषु हर्षविषादरहितत्वासमसुखदुःख। **समणो** एवंगुणविशिष्टः श्रमणः परममुनिः **भणिदो सुद्धोवओगो त्ति** शुद्धोपयोगो भणित इत्यभिप्रायः।।१४।।

के परिणाम हुए हैं - जिसे शुद्धोपयोग का व्यापार हुआ है - (उसकी बात है)। `**सुद्धसंपयोगजुदो**' कहा है न ? (११वीं गाथा) द्रव्य और गुण (तो) पवित्र और शुद्ध है। उसमें जिसने शुद्धोपयोग की क्रिडा शुरु की है। ऐसे आत्मा का स्वरूप कहते हैं।

तीनलोक के नाथ वीतराग सर्वज्ञ जिन परमेश्वर संत को शुद्धोपयोगी कहते हैं। वे संत कैसे होते हैं ? (उनकी बात है)। आहाहा ! सूक्ष्म बात बापू !

टीका :- `**सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल से...**' (अर्थात्) भगवान परमात्मा के कहे हुए आगम - परमागम को सूत्र कहते हैं। उन सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल से (अर्थात्) उन सूत्रों का अर्थ जानकर जिसे उनका ज्ञान हुआ (है)। (किन्तु) भगवान के कहे हुए परमागम हाँ। आहाहा ! सूक्ष्म बात है। प्रभु ! श्वेतांबर के जो शास्त्र हैं वे भगवान के कहे हुए नहीं। कठिन लगे ऐसा है। आहाहा ! दो हजार बरस पहले वे दिगंबर पंथमें से निकले हुए हैं और बाद में शास्त्र बनाये (हैं)। (अत:) वे कल्पित शास्त्र हैं। भगवान के कहे हुए

अब शुद्धोपयोगपरिणत आत्माका स्वरूप कहते हैं :-

गाथा-१४

सुविदित सूत्र पदार्थ, संयम तप सहित वीतराग ने।
सुख दु:खमां सम श्रमणने शुद्धोपयोग जिनो कहे।।१४।।

अन्वयार्थ :- [सुविदितपदार्थसूत्रः] जिन्होंने (निज शुद्ध आत्मादि) पदार्थोंको और सूत्रोंको भली भाँति जान लिया है, **[संयमतपःसंयुतः]** जो संयम और तपयुक्त हैं, **[विगतरागः]** जो वीतराग अर्थात् राग रहित हैं **[समसुखदुःखः]** और जिन्हें सुख-दुःख समान हैं, **[श्रमणः]** ऐसे श्रमणको (मुनिवरको) **[शुद्धोपयोगः इति भणितः]** 'शुद्धोपयोगी' कहा गया है।

टीका :- सूत्रोंके अर्थके ज्ञानबलसे स्वद्रव्य और परद्रव्यके विभागके परिज्ञानमें श्रद्धानमें और विधानमें (आचरणमें) समर्थ होनेसे (स्वद्रव्य और परद्रव्यकी भिन्नताका ज्ञान, श्रद्धान और आचरण होनेसे) जो श्रमण पदार्थोंको और (उनके प्रतिपादक) सूत्रोंको जिन्होंने भलीभाँति जान लिया है ऐसे हैं, समस्त छह जीवनिकायके हननके विकल्पसे और पंचेन्द्रिय सम्बन्धी अभिलाषाके विकल्पसे आत्माको व्यावृत्त करके आत्माका शुद्धस्वरूपमें संयमन करनेसे, और स्वरूपविश्रान्त निस्तरंग चैतन्यप्रतपन होनेसे जो संयम और तपयुक्त हैं, सकल मोहनीयके विपाकसे भेदकी भावनाकी उत्कृष्टतासे (समस्त मोहनीय कर्मके उदयसे भिन्नत्वकी उत्कृष्ट भावनासे) निर्विकार आत्मस्वरूपको प्रगट किया होनेसे जो वीतराग है, और परमकलाके अवलोकनके कारण साता वेदनीय तथा असाता वेदनीयके विपाकसे उत्पन्न होनेवाले जो सुख-दुःख उन सुख-दुःख जनित परिणामोंकी विषमताका अनुभव नहीं होनेसे (परम सुखरसमें लीन निर्विकार स्वसंवेदनरूप परमकलाके अनुभवके कारण इष्टानिष्ट संयोगोंमें हर्ष शोकादि विषय परिणामोंका अनुभव न होनेसे) जो समसुखदुःख हैं, ऐसे श्रमण शुद्धोपयोगी कहलाते हैं।।१४।।

या समकिती के कहे हुए नहीं। अररर...! ऐसा सुनना कठिन पड़ता है ! भाई ! यहाँ तो भगवान के श्रीमुख से (निकली हुई वाणी है)। 'मुख ॐकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै...' साक्षात् तीनलोक के नाथ की ॐध्वनि छूटती (है) उसमें से अर्थ गणधर विचारते (हैं)। 'रचि आगम उपदिशै भविक जीव संशय निवारै...' आहाहा ! ऐसे जो परम आगम हैं... इसका (इस मंदिर का) नाम परमागम है है न ? ये (इसमें) पौने चार लाख अक्षर हैं वे परमागम के हैं। इसलिये इसका नाम परमागम (मंदिर) है। पौने चार लाख अक्षर हैं। १५ हजार तो सोने के हैं। ८ हजार करनेवाले थे बाद में हमने ना कही (कहा),

`रहने दो भाई ! इस जंगल में आ पड़े हैं।' देनेवाले तो बहुत हैं। कहते हैं `६० हजार सोने के करनेवाले हैं' हमने कभी भी किसी को कहा नहीं। किन्तु करनेवाले को ना कहनी पड़े। उनके जो अक्षर हैं वे आगम के हैं।

आहाहा ! भगवान के श्रीमुख से निकले हुए ये परमागम-समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय और अष्टपाहुड आदि हैं। आहाहा ! ऐसे **`सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल से...'** (अरे !) अभी सूत्र किसको कहना वह भी जिसे समझ में आये नहीं। अरेरे ! जगत में क्या होता (है) ? अनादि से भटकते-भटकते हुए जीव को, सत्यशास्त्र किसको कहना उसकी ख़बर भी नहीं। आहाहा ! उन परमागमरूपी सूत्रों का अर्थ (देखा)? तदुपरांत सूत्र का भाव कहा (है)। उसके ज्ञानबल से **`स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के परिज्ञान में...'** आहाहा ! उन परमागम में वह कहा है कि चैतन्यमूर्ति भगवानआत्मा स्वद्रव्य (है) और वाणी, शरीर, कर्म और राग वे सब परद्रव्य हैं। आहाहा! सूत्रों में कहा है ऐसा उसने (शुद्धोपयोगी ने) ज्ञानबल से जाना। आहाहा ! इससे यदि विपरीत अर्थ करता है तो वह सूत्रों के अर्थ को जानता नहीं।

(यहाँ पर क्या कहते हैं ?) कि सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल से... यानी कि उनमें जो कहा है उसके ज्ञानबल से, उनमें स्वद्रव्य और परद्रव्य का विभाग कहा है। आहाहा ! भगवानआत्मा अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप प्रभु (है)। शुद्ध द्रव्य, शुद्ध गुण और उसकी अतीन्द्रिय ज्ञान की जो पर्याय (है) उसे आत्मा - स्वद्रव्य कहा (है)। और शरीरादि, कर्मादि और रागादि वे सब - दया, दान और व्रत के वे सब परिणाम भी - परद्रव्य में जाते हैं - ऐसा आगम में लिखा है - कहा हुआ था उसका उसने यथार्थ ज्ञान किया (है)। (ऐसा कहते हैं)।

क्या कहा वह ? कि **`सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल से स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के परिज्ञान में...'** पूर्ण ज्ञान में... आहाहा ! परिज्ञान अर्थात् समस्त प्रकार से यथार्थ ज्ञान। आहाहा ! जिसने सूत्र के अर्थमें से - स्वयंमें से ज्ञान निकाला (है) उस ज्ञानबल से। शुभराग द्वारा या अशुभराग से ऐसा सूत्र में नहीं कहा। आहाहा! (किन्तु) ज्ञानबल से **`स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के परिज्ञान में श्रद्धान में और विधान में (आचरण में) समर्थ होने से...'** शुद्धोपयोग इस (जीव को) होता है (ऐसा कहना है) कि जिसे स्व और परद्रव्य का विभाग हुआ है, विवेक हुआ है, भिन्नता हुई है, उसे शुद्धोपयोग होने का अवसर है, (ऐसा कहते हैं)। विशेष कहेंगे।

a a a

दि. १५-१-१९७९ - प्रवचन नं. - ९

(प्रवचनसार) - १४वीं गाथा (चलती है)। शुद्धोपयोगरूप हुये आत्मा का स्वरूप (यानी कि) शुभाशुभ परिणाम से रहित शुद्धस्वरूप परिणमित - शुद्धोपयोगरूप (परिणमित) ऐसे जीव का स्वरूप क्या है वह कहते हैं। (तो कहते हैं कि) **`सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल से'** (अर्थात्) भगवान के कहे हुये जो परमागम सूत्र (हैं) उनके अर्थ के ज्ञानबल से (यानी कि) उनमें जो कहने का भाव है वह जानकर। उनमें क्या कहने का भाव है ? कि **`स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के परिज्ञान में...'** **`सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल से स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के परिज्ञान में...'** सूत्रों में ऐसा कहा है कि स्वद्रव्य और परद्रव्य को भिन्न जानों। स्वद्रव्य भगवानआत्मा को और परद्रव्य को भिन्न जानना। उन सूत्र के कहे हुये अर्थ का स्वरूप है और पदार्थ का भी वह स्वरूप है। सूत्र में पदार्थ का ऐसा स्वरूप कहा है उसे स्वज्ञान - स्वद्रव्य का ज्ञान और परद्रव्य का उसमें अभाव है, (ऐसा) ज्ञान पहले होना चाहिये। यहाँ पहले ज्ञान की अपेक्षा से बात ली है। (क्योंकि) ज्ञानप्रधान (कथन) है न ? अत: श्रद्धा बाद में लेंगे। क्या कहा वह? (कि) सूत्र के अर्थ में (जो) ये कहा है उसके ज्ञानबल से। - उनमें ऐसा कहा है कि स्वद्रव्य जो ज्ञायक भगवान (है) और परद्रव्य स्वरूप जो रागादि पर (हैं) उन्हें भिन्न जानना। आहाहा ! भले ही स्वद्रव्य और परद्रव्य - (दो) हैं। किन्तु दोनों को भिन्न - विभाग (करके) जानना। यहाँ स्वद्रव्य का आश्रय लेने पर ज्ञान होता (है) वह अपेक्षा लिया नहीं। (किन्तु) यहाँ तो स्वद्रव्य और परद्रव्य की भिन्नता होकर (जो) ज्ञान होता (है) उसे ज्ञान कहा (है)। (क्योंकि यह) ज्ञानप्रधान कथन है न ! समझ में आया ? आहाहा ! सूत्रों में ऐसा कहा है। उन सूत्रों का अर्थ (भी) वह है। जिसने सूत्र के इस अर्थ को जाना (है) उसने पदार्थ के स्वरूप को (जाना है)। स्व से पर भिन्न और पर से स्व भिन्न - ऐसा जिसने ज्ञान किया (है वह) उस ज्ञानबल से स्वद्रव्य को और परद्रव्य को भिन्न जानता है। आहाहा ! ऐसी बात है ! है शुद्धोपयोग की बात। किन्तु ऐसा पहले जीव को ज्ञान होना चाहिये (ऐसा कहते हैं)। समझ में आया ?

पदार्थ का जिस प्रकार का स्वरूप सूत्रों में कहा है वह जिसने जाना (यानी कि) स्वद्रव्य और परद्रव्य का विभाग (जाना है)। है न (अंदर) ? कि **`स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के परिज्ञान में...'** (अर्थात्) पूर्ण ज्ञान में... `परिज्ञान' है न ? (तो) `परि' अर्थात् पूर्ण - समस्त प्रकार से पूर्ण ज्ञान। आनंद और ज्ञानस्वरूप स्वद्रव्य भगवानआत्मा का और पर का - भले ही रागादि परज्ञेय (है)। उसका भी पर से भिन्न ज्ञान। यहाँ केवल स्व के आश्रयरूप ज्ञान की बात नहीं लेनी। समझ में आया ? यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है इसलिये, स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग का ज्ञान (ऐसा लेना है)। आहाहा! जिस प्रकार सूत्र में कहा है उसप्रकार यह (शुद्धोपयोगी) करता है (वैसा कहते हैं)। आहाहा !

स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के - विवेक के - भिन्नता के - भेद के परिज्ञान में... एकबात। आहाहा ! ऐसा पहले ज्ञान (उसे) होना चाहिये। वरना उसे शुद्धोपयोग हो सकेगा नहीं (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! और सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल से स्वद्रव्य और परद्रव्य के `श्रद्धान में...' भाई ! इसमें दोनों लिये हैं (कि) स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग की श्रद्धा। (किन्तु) केवल स्वद्रव्य की (श्रद्धा लिया नहीं)। `**भूयत्थमस्सिदो** खलु' - यह दृष्टि की प्रधानता से कथन है। (समयसार ११ गाथा)। आहाहा ! जब कि यहाँ ज्ञानप्रधान कथन में, ज्ञायकस्वरूप भगवान(आत्मा) और जो पर - रागादि पर - वस्तु (है उन) दोनों का पर से भिन्न ज्ञान (लिया है)। केवल स्व का ज्ञान - ऐसा नहीं। वह पीछे आता है न ? चरणानुयोग में (गाथा-२४२) पीछे आता है कि ज्ञायक - स्व ज्ञायक और ज्ञेय - उन दोनों का यथार्थ ज्ञान (वह सम्यग्ज्ञान है)। आहाहा ! यानी कि रागादि जो है (वह बंध का कारण है)। (अर्थात्) शुभराग है वह बंध का कारण है और अशुभ राग है वह (भी) बंध का कारण है - इसप्रकार परद्रव्य के विभाग की श्रद्धा (वह सम्यग्दर्शन है)। (यद्यपि यहाँ) पहले ज्ञान लिया है। आहाहा ! है (तो) यह मुनिपने के शुद्धोपयोग की व्याख्या कि शुद्धोपयोग किसको कहते हैं। किन्तु उस शुद्धोपयोग से पहले यह चाहिये ऐसा कहते हैं। आहाहा!

स्वद्रव्य और परद्रव्य की भिन्नता करके - भिन्न किया - भेदज्ञान किया उसका नाम ज्ञान (है)। और स्वद्रव्य और परद्रव्य की भिन्न श्रद्धा (वह सम्यग्दर्शन है)। कहिये! इसमें श्रद्धा का - सम्यग्दर्शन का अधिकार आया ! स्वद्रव्य भगवानआत्मा ! और पर की - शरीर की या कर्मादि या रागादि की - पर से भिन्न ऐसी जो श्रद्धा (वह सम्यग्दर्शन है)। समझ में आया ? - दो (बातें हुई)। ज्ञान और श्रद्धा की (पहली) बात कही। अब यहाँ तो शुद्धोपयोगवाला जीव लेना है न ? (तो) उसे पहले यह तो होना चाहिये और (अब कहते हैं कि) स्वपर के विभाग के `**विधान में**' (अर्थात्) स्व और पर के विभाग के

`(**आचरण में**) **समर्थ होने से...**' आहाहा ! स्व-पर के विभाग का ज्ञान किया और सूत्र में भी ऐसा (कहा) था। (तथा) स्व-पर के विभाग की श्रद्धा किया (और) सूत्र में भी ऐसा (कहा) था। (यानी कि) सूत्र ने उसे इस प्रकार कहा था। (अत:), उसका दूसरा अर्थ करते हैं तो, वह सूत्र के अर्थ को समझते नहीं। आहाहा ! और उसके `(**आचरण में**) **समर्थ होने से...**' - वह तीसरा बोल लिया (है)। स्व और पर के विभाग के (आचरण में) (अर्थात्) स्व के आचरण में समर्थ होने से परमानंद का नाथ प्रभु शुद्ध भगवानआत्मा के आचरण में यानी कि आत्मा के आचरण में यानी कि राग और कर्म से भिन्न होकर आत्मा के आचरण में समर्थ होने से। है (अंदर) ? `**स्वद्रव्य और परद्रव्य की भिन्नता का ज्ञान, श्रद्धान और आचरण होने से...**' आहाहा ! स्वद्रव्य और परद्रव्य की भिन्नता की श्रद्धा करने से... है न ? और `**आचरण होने से...**' विधान में अर्थात् `**आचरण होने से...**' आहाहा! वह चारित्र आया। `**जो श्रमण...**' अब यहाँ तो चारित्र सहित - सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्‌चारित्र सहित - श्रमण की (बात है)। आहाहा ! समझ में आया ? जीव को इस प्रकार जानना तो होगा या नहीं ? कि साधु कैसे शुद्धोपयोगी होते (हैं)? और उस शुद्धोपयोग का फल उनको (मुनि को) मोक्ष (है)।

पहले तो स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग का ज्ञान और श्रद्धान तो (हुआ)। अब तदुपरांत स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के (आचरण में) (अर्थात्) स्व के आचरण में (वह) समर्थ है। (यानी कि) राग के और पर के आचरण को छोड़कर स्वरूप के आचरण में - जो आत्मा आनंद और ज्ञान(स्वरूप है) उसके आचरण में (वह) समर्थ है। वह चारित्र (है)। आहाहा ! (ऐसे) `**जो श्रमण पदार्थों को और (उनके प्रतिपादक) सूत्रों को...**' देखा? सूत्रों के पदार्थ को ऐसे कहा है। उन पदार्थों को और उनके प्रतिपादक सूत्रों को... आहाहा ! श्रमण, कि जिसे स्व-पर पदार्थों का भिन्न ज्ञान और श्रद्धान हुआ है तथा स्व-पर पदार्थों का भिन्न आचरण हुआ है वे, ऐसे पदार्थों को और पदार्थों के प्रतिपादक सूत्र को... पाठ में दो हैं न ? `**सुविदितसूत्रपदार्थ**' ऐसा पाठ है न ? (तो) सुविदित = सु+विदित=सम्यक् प्रकार से जिसने जाने हैं। आहाहा! सूत्र और सूत्र के अर्थों को (श्रमण ने) सम्यक् प्रकार से जाना है। और इसलिये उन्हें पदार्थों का ज्ञान भी सम्यक् प्रकार से हुआ है। आहाहा ! - वह `**सुविदितसूत्रपदार्थ**' की व्याख्या कही। तदुपरांत अब संयम और तप की (बात करेंगे)। आहाहा !

(तो कहते हैं कि) स्व आचरण में समर्थ होने से जिस श्रमण ने पर से भिन्न ऐसे पदार्थों को - स्व को और पर को - तथा पदार्थ के प्रतिपादक सूत्र को (जाने हैं)। (अर्थात्) उन पदार्थ के प्रतिपादक सूत्र भी पर से भिन्न (आत्म)पदार्थ को कहना चाहते

हैं (ऐसा कहते हैं)। यहाँ भेदज्ञान प्रधान कथन है न ? समझ में आया ? आहाहा ! जिन्होंने दो - पदार्थ को और उनके प्रतिपादक सूत्र को... (पाठ में भी) दो हैं न ? आहाहा ! सूत्रों में जिस प्रकार कहा है उस प्रकार जाना है और पदार्थ को (भी) उसी प्रकार पर से भिन्न जाना है और श्रद्धान किया (है) और उसमें जो स्थिर हुये (हैं)। आहाहा ! (ऐसे श्रमणों ने) `**पदार्थोंको और (उनके प्रतिपादक) सूत्रोंको जिन्हों ने भलीभाँति जान लिया है...**' आहाहा ! (पदार्थों को) सूत्र में पर से भिन्न कहा हैं। (तो) उसी प्रकार भिन्न करके (जिसने) जाना है उसने, सूत्र को और पदार्थ को भलीभाँति जाना है। समझ में आया? (किन्तु) जो कोई व्रत और तप का जो विकल्प है उसे धर्म मानता है उसने (सूत्र को जाना नहीं)। (क्योंकि) सूत्र में ऐसा कहा नहीं। (किन्तु) (आत्मा) राग से भिन्न पदार्थ है ऐसा (सूत्र में) कहा है। जो रागतत्त्व पुण्य-पापतत्त्व, आस्रवतत्त्व है उससे भगवानआत्मा भिन्न है। ऐसा सूत्र में कहा है और पदार्थ का (भी) यह स्वरूप है। समझ में आया ? आहाहा! इस प्रकार (जिसने जाना है उसने, सूत्र और पदार्थ को) भलीभाँति जाना है। (श्रमण) ऐसे (होते) हैं। आहाहा ! जिसने ऐसा यथार्थ जाना है और उसी प्रकार यथार्थ श्रद्धान किया है वे अब अपने स्वरूप में स्थिर होते हैं (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! यह शुद्धोपयोग की व्याख्या है न ! किन्तु पहले जिसे स्व-पर के विभाग का ज्ञान ही नहीं और स्व-पर के विभाग की श्रद्धा ही नहीं वह, पर से भिन्न होकर स्वरूप में स्थिर हो सकता नहीं। आहाहा ! बहुत काम (कठिन) ! आहाहा ! टीका तो टीका है न ! आहाहा ! श्री अमृतचंद्राचार्य जिस बात को कहते हैं वह इतनी स्पष्ट (करते हैं कि)....

शुद्धोपयोग उसको होता है कि जिसने पर से भिन्न भगवानआत्मा को - स्वद्रव्य को जाना है, पर से भिन्न स्वद्रव्य की श्रद्धा की है और जिसने तदुपरांत परद्रव्य और रागादि से भिन्न स्वरूप में रमणता की है - स्वरूप का आचरण किया है। आहाहा ! (लीजिये !) यह आचरण (है)। (किन्तु) लोग इस शुभभाव को सदाचरण कहते हैं। (किन्तु) वह सदाचरण नहीं। (क्योंकि) उस राग आचरण तो असत् आचरण है। (जब कि) यह स्वरूप का अंतर आचरण सदाचरण है। सत् ऐसे ज्ञायकभाव भगवानआत्मा का पर से भिन्न ज्ञान, श्रद्धान करके स्वरूप में सदाचरण का आचरण करते हैं। आहाहा ! उसे यहाँ (सदाचरण) - चारित्र कहने में आया है।

(अब कहते हैं कि) `**समस्त छ: जीवनिकाय के हनन के विकल्प से**' रहित है। चारित्र बतलाना है न ? बाद में शुद्धोपयोग को कहना है न ? (कहते हैं कि) `**समस्त छ: जीवनिकाय के हनन के...**' आहाहा ! संयम लेना है न ! तो संयम में छ: काय, पाँच इन्द्रिय और मन - (उन) बारह से भिन्न होता है। आता है न ? आहाहा ! छ: काय की दया का

पालन करना - ऐसा यहाँ नहीं (कहना)। (किन्तु) छः काय की हिंसा के विकल्प से (आत्मा को पीछे हटाने की बात है) और मोक्षमार्ग प्रकाशक में आता है न भाई ? कि हिंसा में प्रमाद प्रधान है (और) विषय में (विषयसेवन में) अभिलाषा प्रधान है। (सातवाँ अधिकार) - वह यहाँ बताया है।

क्या कहा ? कि मोक्षमार्ग प्रकाशक में (ऐसा आता है कि) हिंसा से निवृत्त होता है। किन्तु हिंसा में प्रमाद प्रधान है उसे तो पहचानता नहीं। आहाहा ! (और) विषय का तो त्याग किया किन्तु विषय की (विषयसेवन की) अंदर में अभिलाषा है उसे तो वह पहचानता नहीं। है न (वहाँ) ? आहाहा ! मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी गज़ब काम (किया) है न ! और कलश टीका में कहा है न ! कि 'पठन, पाठन, स्मरण, चिंतन, स्तुति, वंदना इत्यादि अनेक क्रियारूप विकल्प विष समान कहे हैं।' (कलश-१८९) देखिये न ! आहाहा ! ऐसे जो विकल्प (हैं उन्हें भी) विष के समान कहा है - ज़हर के समान कहा है। यह प्रवीणता दूसरे प्रकार की है। आहाहा ! व्रत का - बाह्य व्रत का - पंच महाव्रतादि का - जो विकल्प है वह ज़हर है। (जबकि) अंदर व्रत कि जो स्वरूप में स्थिर होना है वह तो चारित्र है। आहाहा !

प्रश्न :- यह तो व्यवहार साधन है न ?

समाधान :- व्यवहार, साधन नहीं किन्तु उसे भी उपचार से कहा है (और) वह मोक्षमार्ग प्रकाशक में कहा है न ? कि धर्म तो निश्चय है वही है। किन्तु उसके बाह्य साधन, उपचार से (धर्म) कहने में आये हैं। भाई ! उसमें ऐसा कहा है। यह मोक्षमार्ग प्रकाशक है न ? देखिये ! लीजिये ! वही आया हाँ। आहाहा ! सामने ही सूत्र आता है न ! (उसमें कहते हैं कि) 'चरणानुयोग में जिस प्रकार जीवों के अपने बुद्धिगोचर धर्म का आचरण हो वैसा उपदेश दिया है। वहाँ धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है वही है।' आहाहा ! (देखो) ! यह मोक्षमार्ग प्रकाशक ! 'उसके साधनादिक' - (अर्थात्) व्यवहार, निमित्तादि... समयसार में (११वीं गाथा के भावार्थ में) कहा है न! कि निमित्त को हस्तालंब जानकर बहुत कहा है। किन्तु उसका फल संसार है। आहाहा ! चारों ओर से देखो तो सत्य (ही) बाहर आता है। आहाहा ! (यहाँ मोक्षमार्ग प्रकाशक के आठवें अधिकार में कहते हैं कि) 'उसके साधनादिक उपचार से धर्म है। इसलिये व्यवहारनय की प्रधानता से नानाप्रकार उपचार धर्म के भेदाभेदिकों का इसमें निरूपण किया जाता है; क्योंकि निश्चयधर्म में तो कुछ ग्रहण-त्याग का विकल्प नहीं है, और नीचली अवस्था में विकल्प छूटता नहीं है; इसलिये जीव को धर्मविरोधी कार्यों को छुड़ाने का और धर्मसाधनादि कार्यों का ग्रहण कराने का उपदेश इसमें है।' आहाहा ! बाद में तो, निश्चयसहित का उपदेश है और केवल व्यवहार का

भी उपदेश है (ऐसी) लंबी बात है।

यहाँ क्या कहना है ? कि जिसे स्व और पर के विभाग का - भिन्नता का यथार्थ ज्ञान हुआ है (अर्थात्) सूत्र में जैसा कहा है वैसा ही जिसे पदार्थ का ज्ञान अंदर हुआ है और सूत्र में जैसा कहा है वैसा ही जिसे पर से भिन्न करके स्व की श्रद्धा हुई है और सूत्र में ऐसा कहा है कि सर्व पर से भिन्न होकर स्वरूप का आचरण करना उसे चारित्र कहते हैं। तो सूत्र में जैसा कहा है वैसा पदार्थ का स्वरूप जिसने जाना है, अनुभव किया है और (उसका) आचरण किया है। आहाहा! यहाँ अब संयम लेना है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन तदुपरांत अब संयम की (बात लेते हैं) (सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक ही संयम होता है और इसलिये ही) संयम में `सम्' शब्द आता है न ? `यम' यानी कि सम्यग्दर्शन सहित (नि)यम।

आहाहा ! और भाई ! `मोक्षमार्गप्रकाशक' में ऐसा भी आता है न ? कि सावद्य योग का त्याग करता है, किन्तु शुभ विकल्प का त्याग कर सकता नहीं। जैसे कंदमूल का त्याग करता है, और हरितकाय खाता है। किन्तु वह हरितकाय के खाने में धर्म मानता नहीं। वैसे उस सावद्य योग का - अशुभ का त्याग किया। (किन्तु) शुभभाव के त्याग का प्रत्याख्यान करता नहीं। क्योंकि उसे अभी विकल्प है न ? किन्तु जैसे कोई कंदमूल का त्याग करता है और हरितकाय खाता है तथापि, उसमें धर्म मानता (नहीं), आहाहा! अशुभ का त्याग और स्वरूप की दृष्टि-ज्ञान-रमणता तो है। अब अशुभ का (अर्थात्) सावद्य योग का त्याग (तो है), (किन्तु) शुभराग का त्याग नहीं। तथापि उस शुभराग को (मुनि) धर्म मानते नहीं। - ऐसा मोक्षमार्ग प्रकाशक में (सातवें अधिकार में) आता है न ! आहाहा ! मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी सिद्धांतों को ही स्पष्ट किया है ! सत्य को ही (स्पष्ट किया है) ! अरे ! ऐसा समय कब मिलेगा भाई ? आहाहा! देखिये न ! ये बेचारे जीव कहाँ पड़े हैं ? अरेरे...!!!

(यहाँ कहते हैं कि) `**छः जीवनिकायके हननके विकल्पसे और पंचेन्द्रिय सम्बन्धी अभिलाषाके विकल्पसे आत्माको व्यावृत्त करके...**' देखा ? (केवल) बाहर से पँचेन्द्रिय के विषय से छूटा ऐसा नहीं। (किन्तु अभिलाषा से विकल्प से व्यावृत्त होकर) (और) इसी कारण मोक्षमार्ग प्रकाशक में कहा है न ? कि पंचेन्द्रिय के विषय को छोड़ा किन्तु उनकी अभिलाषा को छोड़ा नहीं। अर्थात् (अज्ञानी ने) विषय को छोड़ा ही नहीं। अंदर में (विषय की) मीठास जब तक है तब तक उन पंचेन्द्रिय के विषय का उसे त्याग नहीं। आहाहा ! (अज्ञानी) बाहर से विषय का सेवन करता नहीं और स्त्री आदि सब का त्याग (भी) करता है तथापि उसे अंतर की गहराई में उसकी अभिलाषा रहा करती (है)। क्योंकि स्वद्रव्य

का ज्ञान और श्रद्धान (उसे) नहीं और स्वरूप की रमणता (भी उसे) नहीं। आहाहा ! अत: पंचेन्द्रिय के बाह्य संयोग छोड़ने पर भी, उसकी जो इच्छा नाम अभिलाषा (है) वह छोड़ी नहीं इसलिये वह विषय का त्यागी नहीं। आहाहा ! क्या बात ! `मोक्षमार्गप्रकाशक' लीजिये या यह `कलशटीका' लीजिये या यह `समयसार' आदि कोई भी सिद्धांत लीजिये - (एक ही बात है)। आहाहा ! ऐसी वस्तु उसमें है। (वहाँ) राग का अवकाश कहाँ है कि जिससे राग से धर्म हो ? व्रत के परिणाम से (धर्म हो) ? आहाहा! यहाँ तो व्रत के परिणाम से भिन्न स्वरूप का आचरण (श्रमण ने) किया है ऐसा कहा है। व्रत के परिणाम को पर में गिनकर, पर के विभाग से स्व का ज्ञान-श्रद्धान करके स्व के आचरण में (श्रमण) आया है (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! ऐसी बात है। भाई !

(कहते हैं कि) `**पंचेन्द्रिय सम्बन्धी अभिलाषाके विकल्पसे...**' है न ? कि `**विकल्पसे आत्माको व्यावृत्त करके...**' आहाहा ! पँचेन्द्रिय के बाहर के विषय तो अनंतबार छोडे, किन्तु अंदर अभिलाषा छूटी नहीं। आहाहा ! क्योंकि आनंद का स्वाद आया नहीं। अत: विषय की अभिलाषा का स्वाद उसे आये बिना रहता नहीं। आहाहा ! `**पँचेन्द्रिय संबंधी अभिलाषाके विकल्पसे**' देखा ? `**विकल्पसे आत्माको व्यावृत्त करके**' (अर्थात्) आत्मा को ...., रोक के, भिन्न कर के। `**विकल्पसे व्यावृत्त करके आत्माका शुद्धस्वरूपमें संयमन करनेसे,...**' समझ में आया ? पंचेन्द्रिय के विषय की अभिलाषा से - विकल्प से छूटकर आत्मा का शुद्धस्वरूप में संयमन किया है। (अर्थात्) विकल्प को छोड़कर शुद्धस्वरूप में स्थिर किया है, संयमरूप आचरण किया है। आहाहा !

(कहते हैं कि) आत्मा को व्यावृत्त करके... (किन्तु) इस प्रकार हाँ! (कि) अभिलाषा के विकल्प से व्यावृत्त करके। मोक्षमार्ग प्रकाशक में (७वें अधिकार में) आता है न ? कि (अज्ञानी) निमित्त को छोड़ने का प्रयत्न करता है किन्तु उसके प्रति जो अभिलाषा है उसे छोड़ने का प्रयत्न नहीं करता। आहाहा ! और वह अभिलाषा छूटे कब ? कि **प्रथम स्व-पर का (भिन्न) ज्ञान और स्व-पर की भिन्न श्रद्धा (हो) और (बाद में) पर से भिन्न होकर स्वरूप में स्थिर हो** तब उसे उस प्रकार का संयम होता है। आहाहा ! अरेरे ! ऐसी बातें हैं भाई ! लोगों को कठिन (लगती है)। (क्योंकि) इस समय तो ये बाह्य की हो-हा, हो-हा (चलती है)। (अज्ञानी) पंचेन्द्रिय के विषय को - निमित्त को छोड़ने का प्रयत्न करता है। किन्तु अंदर के भाव को - विकल्प को - दशा को - छोड़ने का प्रयत्न नहीं करता। `मोक्षमार्गप्रकाशक' के (७वें अधिकार में) कहा है कि `बाह्य त्रस-स्थावर की हिंसा और पंचेन्द्रिय-मन के विषयों में प्रवृत्ति उसको अविरती जानता है, किन्तु हिंसा में प्रमाद परिणति मूल है और विषयसेवन में अभिलाषा मूल है उसका अवलोकन

नहीं करता।' आहाहा! `बाह्य क्रोधादि करना उसे कषाय जानता है, किन्तु अभिप्राय में जो राग-द्वेष बस रहे हैं उनको नहीं पहचानता, तथा बाह्य चेष्टा हो उसे योग जानता है, शक्तिभूत योगों को नहीं जानता।' आहाहा ! `तथा राग-द्वेष-मोहरूप जो आस्रवभाव हैं, उनका तो नाश करने की चिंता नहीं, और बाह्यक्रिया अथवा बाह्यनिमित्त मिटाने का उपाय रखता है।' आहाहा ! देखा ? कैसी बात कही है !

यहाँ कहते हैं कि (शुद्धोपयोगी) पंचेन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा के विकल्प से व्यावृत्त हुआ है। (अज्ञानी कहता हैं कि) पंचेन्द्रिय के विषय से निवृत्त हुआ है अर्थात् विषय का त्यागी हुआ है किन्तु यहाँ (मोक्षमार्ग प्रकाशक में) कहते हैं कि नहीं। आहाहा ! (उसमें कहते हैं कि) `बाह्य क्रिया अथवा बाह्य निमित्त मिटाने का उपाय रखता है, सो उनके मिटाने से आस्रव नहीं मिटता। क्योंकि द्रव्यलिंगी मुनि अन्य देवादिक की सेवा नहीं करता, हिंसा और विषयों में प्रवर्तता नहीं।' देखा ? `क्रोधादि नहीं करता, मन-वचन-काया को रोकता है, तथापि उसके मिथ्यात्वादि चारों आस्रव पाये जाते हैं। तथा कपट से भी उन कार्यों को नहीं करता है।' (यदि) कपट से करे तो नौवीं ग्रैवेयक (तक) जाता नहीं। आहाहा ! भारी कहा है। थोड़ा थोड़ा, धीरे धीरे समझने योग्य है। ऐसा है प्रभु !

(यहाँ कहते हैं कि) आत्मा को अभिलाषा के विकल्प से व्यावृत्त करके... देखा ? पंच इन्द्रिय के विषय का त्याग करके ऐसा नहीं। (क्योंकि) वह तो निमित्त का त्याग हुआ। आहाहा ! (किन्तु) (आत्मा को अभिलाषा के विकल्प से व्यावृत्त करके) **`आत्मा का शुद्धस्वरूप में संयमन करने से'** और (अभिलाषा के विकल्प से) व्यावृत्त करके वह शुभ(भाव में) प्रवर्ता है ऐसा नहीं। (क्योंकि) वह तो विकल्प से (ही) निवृत्त हुआ है। अत: शुभभाव से भी निवृत्त हुआ है। आहाहा ! (विकल्प से) व्यावृत्त हुआ है अत: कोई ऐसा कहे कि वह अशुभ से तो निवृत्त हुआ है किन्तु, शुभ में प्रवर्तता है तो ऐसा नहीं। आहाहा ! (कहते हैं कि) **`शुद्धस्वरूप में संयमन करने से...'** वह (चौथी बात हुई)। ज्ञान, श्रद्धा, आचरण और संयम - (वे चार बातें ली)। अब तप की (बात करते हैं कि) **`और स्वरूपविश्रांत निस्तरंग चैतन्यप्रतपन होने से...'** आहाहा! (अज्ञानी) तो आहार को छोड़ा और यह किया अत: हो गया तप (ऐसा मानता है)। वह तप नहीं। आहाहा ! (तप तो) `विषयकषाय आहारो त्यागो जत विज्यते' है। बाक़ी सब तो लंघन है। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) **`स्वरूप विश्रांत...'** है (अंदर) ? (अर्थात्) स्वरूप में स्थिर हुआ। देखो ! इसे तप कहते हैं। निस्तरंग यानी कि तरंग रहित; चंचलता रहित; शांत; विकल्प रहित, जब विकल्प नहीं होता तब तप कहने में आता है। आहाहा! (तो कहते हैं कि) **`निस्तरंग चैतन्यप्रतपन होने से...'** देखा ? स्वरूप विश्रांत (और) निस्तरंग (यानी कि) स्वरूप

में स्थिर होना और विकल्प का अभाव - इस प्रकार दो बातें ली। ऐसा चैतन्यप्रतपन होने से (यानी कि) प्रतापवंत होना; झलकता हुआ; देदीप्यमान होना। आहाहा ! इसे तप कहते हैं। लीजिये ! है (अंदर) ? (कि) स्वरूपविश्रांत निस्तरंग ऐसा जो चैतन्यप्रतपन होने से, आहाहा ! जैसे गेरु लगाने से सोना सोहाता है और शोभता है वैसे जो चैतन्यप्रतपन होने से। आहाहा ! (अर्थात्) चारित्र सहित विश्रांत स्वरुप में उग्रता से रमणता करता है। आहाहा ! और निस्तरंग है। (यानी कि) उसे विकल्प नहीं। ऐसा चैतन्यप्रतपन होने से - चैतन्य वस्तु जो भगवानआत्मा (है वह) प्रतपन होने से - (अर्थात्) विशषरूप से तप्तायमान (होने से) यानी कि उग्रता से स्थिर (होने से) - चारित्र में भी उग्र होता है उसे यहाँ तप कहने में आता है। आहाहा !

`जो संयम और तपयुक्त हैं,...' (किन्तु) ऐसा संयम-शुद्ध स्वरूप में संयम वह (संयम)। और ऐसा तप। और पहले कहे ऐसा ज्ञान और दर्शन। उन ज्ञान, दर्शन, संयम और तप सहित जो है। यहाँ अब शुद्धोपयोग सिद्ध करना है न ? आहाहा ! (किन्तु) यह ज्ञान, यह दर्शन, यह संयम और यह तप (है) और ऐसा (ही) सूत्र में कहा है। उससे यदि विपरीत मानता है तो, (वैसा) सूत्र में कहा नहीं। आहाहा !

(कहते हैं कि) **`सकल मोहनीय के विपाक से भेद की भावना की उत्कृष्टता से...'** आहाहा ! सकल मोहनीय का विपाक (अर्थात्) राग का पाक आये (वह) (और) उसके भेद की भावना से (यानी कि) उससे भिन्नता की भावना की उत्कृष्टता से **`(समस्त मोहनीय कर्म के उदय से भिन्नत्व की उत्कृष्ट भावना से) निर्विकार आत्मस्वरूप को प्रगट किया...'** (अर्थात्) निर्विकार भगवानआत्मा ! राग रहित ऐसे वीतरागी निर्विकल्प आत्मस्वरुप को प्रगट किया **`होने से जो वीतराग है,...'** आहाहा ! ऐसी बातें ! निर्विकार आत्मस्वरूप भगवानआत्मा ! अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप निर्विकल्प (और) निर्विकार (है)। ऐसे आत्मस्वरूप को प्रगट किया होने से... आहाहा ! ये मुनि ! (ऐसे मुनि होते हैं)। पंच महाव्रत का पालन करने से या नग्न होने से मुनि (हैं) ऐसा नहीं। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात भाई ! आहाहा !

`और परमकला के अवलोकन के कारण...'** केवलज्ञान को प्राप्त करानेवाली और आनंद स्वभावमय ऐसी परमकला के अवलोकन के कारण... आहाहा ! **`समसुखदुःख' कहना है न ? (तो कहते हैं कि) **`परमकला के अवलोकन के कारण'** (अर्थात्) आनंदस्वरूप ज्ञानमूर्ति प्रभु भगवान(आत्मा को) पूर्ण केवलज्ञान की प्राप्ति करानेवाली जो परमकला (है) उसके अवलोकन के कारण **`सातावेदनीय तथा असातावेदनीय के विपाक से उत्पन्न होनेवाले जो सुखदुःख...'** (अर्थात्) संयोग। सातावेदनीय से मिलनेवाले अनुकूल संयोग को सुख कहते हैं और असाता के उदय से मिलनेवाली प्रतिकूलता को दुःख कहते हैं। यहाँ सुखदुःख

की कल्पना की बात नहीं। समझ में आया ? `**उन सुखदुःख जनित परिणामों की विषमता का अनुभव नहीं होने से...**' आहाहा ! शरीर को अनुकूलता पार नहीं हो (या) असाता के दुःख का - प्रतिकूलता का पार नहीं हो, तथापि उन सुखदुःख जनित (अर्थात्) संयोग से उत्पन्न होनेवाले परिणाम की विषमता अनुभव में नहीं आती होने से (`**जो समसुखदुःख हैं।**') आहाहा ! अनुकूलता में राग और प्रतिकूलता में द्वेष ऐसे सुखदुःख में उत्पन्न होनेवाली जो विषमता उनको (श्रमण को) अनुभव में आती नहीं। आहाहा ! `(**परम सुखरस में लीन...**)' परम सुखरस (अर्थात्) आनंद। भगवानआत्मा अतीन्द्रिय आनंदमूर्ति प्रभु (है)। उसके आनंद के रस में लीन (ऐसी) `**निर्विकार स्वसंवेदनरूप परमकला के अनुभव के कारण...**' देखा ? यह कला (है)। आहाहा! `**निर्विकार स्वसंवेदनरूप परमकला**' यह कला (है)। आहाहा !

अतीन्द्रिय आनंद(स्वरूप) प्रभु भगवानआत्मा का पर से भिन्न ज्ञान (करना), उसकी पर से भिन्न श्रद्धा करना और उसमें पर से भिन्न (होकर) स्थिर होना (तथा) उसमें चैतन्यप्रतपन की उग्र निर्विकल्प दशा होना (वह परमकला है)। ऐसी `**परमकला के अनुभव के कारण इष्टानिष्ट संयोगों में...**' देखा ? सुखदुःख अर्थात् इष्ट-अनिष्ट संयोग (हैं)। इष्ट-अनिष्ट की कल्पना जो होती है उस कल्पना से तो (श्रमण) रहित है। किन्तु ये संयोग हैं उससे जनित जो इष्ट-अनिष्ट कल्पना (अस्थिरता की) है वह कल्पना भी उन्हें नहीं। `**इष्ट-अनिष्ट संयोगों...**' देखा ? इष्ट-अनिष्ट संयोग (कहे हैं)। समसुखदुःख का अर्थ नीचे (मूल ग्रंथ में) लिखा है कि सुख और दुःख (अर्थात् इष्ट और अनिष्ट संयोग) दोनों जिन्हें समान हैं। आहाहा ! सातावेदनीय से मिलनेवाली अनुकूलता और असाता(वेदनीय से) मिलनेवाली प्रतिकूलता जिन्हें अंतर में समान हैं। (यानी कि) वीतरागभाव है। आहाहा !

`**इष्टानिष्ट संयोगों में हर्ष शोकादि विषम परिणामों...**' देखा ? आहाहा ! अनुकूल संयोग में हर्ष और प्रतिकूल (संयोग में) शोक। (अर्थात्) रति और अरति आदि `**विषम परिणामों का अनुभव न होने से जो समसुखदुःख हैं,...**' जो संत इस दशा में हैं वे समसुखदुःख हैं। संयोग में - अनुकूल या प्रतिकूल, दोनों में विषमता - राग या द्वेष जिन्हें नहीं (वे समसुखदुःख हैं ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! ऐसी सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित (जो दशा है) संयम और तप सहित (जो दशा है) (तथा) ऐसी जिन्हें विषमता उत्पन्न होती नहीं और समभाव जिन्हें उत्पन्न होता है। आहाहा ! (अर्थात्) जो समसुखदुःख हैं `**ऐसे श्रमण शुद्धोपयोगी कहलाते हैं।**' आहाहा ! भारी बात भाई! ऐसे शुद्धोपयोगी मोक्ष का कारण है। आहाहा ! बीच में शुभराग आता (है) वह बंध का कारण (है)। (बीच में) व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि (भाव) आता है। किन्तु वह सब बंध का कारण है। वे शुद्धोपयोग नहीं। (किन्तु) वे तो शुभोपयोगी हैं। आहाहा! वे शुभोपयोगी... (जो) सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित हैं

उनकी बात है हाँ! वे शुभोपयोगी स्वर्ग में जाते (हैं)। (उन्हें) गति मिलती (है)। (जब कि) वे शुद्धोपयोगी मोक्ष को प्राप्त होते (हैं)। आहाहा ऐसा है !

अरे ! इसमें वादविवाद क्या करें ? और किसके साथ झगड़ा ? अरे प्रभु ! कौन हो तुम अंदर ? (तुम तो) अनंत-अनंत वीतरागता से भरे भगवान हो न ! आहाहा! (तो) ऐसी वीतरागता का अवलंबन लेकर जिन्होंने वीतरागता (प्रगट की यानी कि) वीतराग सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, ऐसे वीतरागस्वभाव का अवलंबन लेकर वीतरागी ज्ञान प्रगट किया है, ऐसे वीतरागस्वरूप में रमणता करके जिसने संयम प्रगट किया है और विशेषरूप से अंदर रमणता करके जिन्होंने तप किया है (अर्थात्) प्रतपन - आत्मा को पर्याय में शोभायमान किया है (तथा) जिन्हें साता-असाता से मिलनेवाली अनुकूल-प्रतिकूल संयोग में विषमभाव उत्पन्न होता नहीं आहाहा ! ऐसे श्रमण को शुद्धोपयोगी कहते हैं और वह शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है। ऐसी व्याख्या है ! आहाहा ! समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन रहित केवल शुभभाव तो मिथ्यात्वसहित होने से बंध का कारण है। और सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित तथा स्वरूप की स्थिरता के - आचरण के अंश सहित (होने पर भी) बीच में (जो) शुभभाव आता (है) (वह भी) बंध का कारण है। ये महाव्रतादि के परिणाम बंध के कारण हैं। वे कोई चारित्र नहीं। आहाहा ! वीतराग और समसुखदुःख - (इस प्रकार) दो बातें ली हैं। है न ? कि **`सुविदित सूत्र पदार्थ, संयम तप सहित वीतराग ने। सुख दुःखमां सम श्रमणने शुद्धोपयोग जिनो कहे।।**' आहाहा ! ऐसी व्याख्या कभी भी सुनी होगी नहीं।

सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित अनुभव होने पर भी जिसमें दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम आते (हैं) वह सब शुभराग है। वह कोई धर्म नहीं और उनका फल बंध-क्लेश है। आहाहा! और इस शुद्धोपयोग का फल निःकषाय-अकषाय-क्लेष रहित - आनंद है। आहाहा! क्या कहा वह ? कि आत्मज्ञान और आत्मदर्शन होने पर भी (और) स्वरूप में आचरण भी किसी जाति का होनेपर भी, (यदि) अभी दया, दान, व्रत, भक्ति, भगवान का विनय और पंच परमेष्ठी का स्मरण आदि शुभराग होता है तो उस राग के फल में स्वर्ग के क्लेष को प्राप्त होना ही उसका फल है। आहाहा ! जो कोई उस रागरहित समसुखदुःख (हैं) और वीतराग परिणाम जिन्होंने प्रगट किये हैं। आहाहा ! ऐसे जो शुद्धोपयोगी संत हैं उनकी - मुक्ति होती (है)। मोक्ष होता है। आहाहा ! सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के अंश सहित होने पर भी, जिन्हें वे महाव्रतादि के परिणाम (हैं), भगवान आदि के विनय का भाव (है) और भगवान की भक्ति, पूजा आदि के शुभभाव में यदि (वह) रहता (है) तो वह शुभभाव दुःख का कारण है। आहाहा ! वह बंध के क्लेष को प्राप्त होगा,

और यह शुद्धोपयोगी अबंध के आनंद को प्राप्त होगा। समझ में आया ? ऐसी बात है! अभी (अज्ञानी को) उसके ज्ञान में भी (यह बात) नहीं - पहचान नहीं और संसार में ८४ के अवतार में भटकने के लिये चला जाता (है)। आहाहा ! यहाँ तो (कहते हैं कि जो) ज्ञान, दर्शन, चारित्र, संयम और तप सहित (है)। (तथा) जिसने अनंत भव का अंत कर दिया है (वह भी) यदि अभी शुभभाव में रहता (है) तो, वह स्वर्ग के क्लेष के बंध को प्राप्त होगा। आहाहा ! केवल मिथ्यादृष्टि के शुभपरिणाम की तो बात ही क्या करना! किन्तु यह तो सम्यग्दर्शन - ज्ञान और चारित्र - स्वरूप रमणता (सहित जिसे) आनंद की रमणता है और पूर्णता नहीं अत: शुभराग - देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का (राग), महाव्रत का (राग), विनय का (राग) और दान का राग (यानी कि राग को घटाना) आदि शुभभाव - आता है। किन्तु अरेरे ! वह भी बंध के क्लेष को प्राप्त होकर स्वर्ग में जायेगा। आहाहा ! किन्तु जिन्हें ऐसे सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन सहित (तथा) चारित्र की रमणता के अंश सहित अंदर वीतरागता प्रगट हुई है (वे मोक्ष को प्राप्त करेंगे)। (चारित्र सहित) शुभरागवाले को अभी (पूर्ण) वीतरागता नहीं। वीतरागता का कुछ अंश है। किन्तु पूर्ण वीतरागता नहीं। आहाहा ! अत: उसे राग का भाव आता है। (किन्तु) यहाँ मुनि (जो कि) आत्मज्ञानी (हैं), आत्मानुभवी (हैं) और स्वरूप में रमणता करते हैं (और जिन्हें) रागरहित वीतरागता है और जिन्हें अनुकूल या प्रतिकूल में - समभाव है (किन्तु) विषमभाव नहीं उन्हें यहाँ शुद्धोपयोगी परिणमनवाला कहते हैं। और ऐसे शुद्धोपयोगियों को मोक्ष होता (है)। आहाहा !

अज्ञानी के शुभ(भाव) की तो क्या बात करना ? (और) चौथे - पाँचवें गुणस्थान के शुभ(भाव) की (भी) बात क्या करना ? (किन्तु) जिन्हें अंदर छट्ठे गुणस्थान की भूमिका के योग्य चारित्र का अंश (प्रगट) हुआ है, वह भी समकित है, दर्शन है और ज्ञान है। वह भी यदि शुभभाव में आ जाता है तो, वह बंध में जायेगा। आहाहा! छट्ठे गुणस्थान में आता है तब शुभभाव होता है। अत: ऐसा कहते हैं कि उसे बंध होगा। राग है वह बंध है। आहाहा ! रहस्यपूर्ण चिट्ठी में नहीं आता ! कि ज्ञानी को पूजा आदि का भाव आता है वह विकल्प है, राग है। कोई ऐसा कहता है कि, पूजा में राग नहीं। अरे प्रभु ! क्या कहते हो भाई ? पूजा और व्रत जैनधर्म नहीं। किन्तु वह तो राग है। आहाहा ! किन्तु उसे नहीं स्वीकार होता तो क्या हो सकता है ? दृष्टि में फर्क है अतः क्या हो सकता है ? अरे प्रभु ! सूत्र में (पूजा में राग नहीं ऐसा) कहना नहीं और पदार्थ का वह स्वरूप भी नहीं। आहाहा! **'सुविदित सूत्रों और पदार्थों'** - ये शब्द कितने (कीमती) रखे हैं ? ये श्री कुंदकुंदाचार्य के शब्द हैं !

'सुविदित सूत्रों और पदार्थों' (यानी कि) यथार्थ प्रकार से शास्त्र का जिसने ज्ञान

अथ शुद्धोपयोगलाभानन्तरभाविशुद्धात्मस्वभावलाभमभिनन्दति -

उवओगविसुद्धो जो विगदावरणंतरायमोहरओ।
भूदो सयमेवादा जादि परं णेयभूदाणं।।१५।।
उपयोगविशुद्धो यो विगतावरणान्तरायमोहरजाः।
भूतः स्वयमेवात्मा याति पारं ज्ञेयभूतानाम्।।१५।।

यो हि नाम चैतन्यपरिणामलक्षणेनोपयोगेन यथाशक्ति विशुद्धो भूत्वा वर्तते स खलु प्रतिपदमुद्भिद्यमानविशिष्टविशुद्धिशक्तिरुद्ग्रन्थितासंसारबद्धदृढतरमोहग्रन्थितयात्यन्तनिर्विकारचैतन्यो निरस्तसमस्तज्ञानदर्शनावरणान्तरायतया निःप्रतिघविजृम्भितात्मशक्तिश्च स्वयमेव भूतो ज्ञेयत्वमापन्नानामन्तमवाप्नोति। इह किलात्मा ज्ञानस्वभावो ज्ञानं तु ज्ञेयमात्रं; ततः समस्तज्ञेयान्तर्वर्तिज्ञानस्वभावमात्मानमात्मा शुद्धोपयोगप्रसादादेवासादयति।।१५।।

एवं शुद्धोपयोगफलभूतानन्तसुखस्य शुद्धोपयोगपरिणतपुरुषस्य च कथनरूपेण पञ्चमस्थले गाथाद्वयं गतम्।।

इति चतुर्दशगाथाभिः स्थलपञ्चकेन **पीठिकाभिधानः** प्रथमोऽन्तराधिकारः समाप्तः।।

तदनन्तरं सामान्येन सर्वज्ञसिद्धिर्ज्ञानविचारः संक्षेपेण शुद्धोपयोगफलं चेति कथनरूपेण गाथासप्तकम्। तत्र स्थलचतुष्टयं भवति, तस्मिन् प्रथमस्थले सर्वज्ञस्वरूपकथनार्थ प्रथमगाथा, स्वयम्भूकथनार्थं **द्वितीया** चेति 'उवओगविसुद्धो' इत्यादि गाथाद्वयम्। अथ तस्यैव भगवत उत्पादव्ययध्रौव्यस्थापनार्थं प्रथमगाथा, पुनरपि तस्यैव दृढीकरणार्थं द्वितीया चेति 'भंगविहीणो' इत्यादि गाथाद्वयम्। अथ सर्वज्ञश्रद्धानेनानन्तसुखं भवतीति दर्शनार्थं 'तं सव्वट्ठवरिट्ठं' इत्यादि सूत्रमेकम्। अथातीन्द्रियज्ञानसौख्यपरिणमनकथनमुख्यत्वेन प्रथमगाथा, केवलिभुक्तिनिराकरणमुख्यत्वेन द्वितीया चेति 'पक्खीणघाइकम्मो' इति प्रभृति गाथाद्वयम्। एवं द्वितीयान्तराधिकारे स्थलचतुष्टयेन समुदायपातनिका। तद्यथा - अथ शुद्धोपयोगलाभानन्तरं केवलज्ञानं भवतीति कथयति। अथवा द्वितीयपातनिका - **कुंदकुंदाचार्यदेवाः** सम्बोधनं कुर्वन्ति, हे शिवकुमारमहाराज, कोऽप्यासन्नभव्यः संक्षेपरुचिः पीठिकाव्याख्यानमेव श्रुत्वात्मकार्यं करोति, अन्यः कोऽपि पुनर्विस्तररुचिः शुद्धोपयोगेन संजातसर्वज्ञस्य ज्ञानसुखादिकं विचार्य पश्चादात्मकार्यं करोतीति व्याख्याति - **उवओगविसुद्धो जो** उपयोगेन शुद्धोपयोगेन परिणामेन विशुद्धो भूत्वा वर्तते यः **विगदावरणंतरायमोहरओ भूदो** विगतावरणान्तरायमोहरजोभूतः सन्। कथम्। **सयमेव** निश्चयेन स्वयमेव **आदा** स पूर्वोक्त आत्मा **जादि** याति गच्छति। किं। परं पारमवसानम्। केषाम्। **णेयभूदाणं** ज्ञेयभूतपदार्थानाम्। सर्वं जानातीत्यर्थः। अतो **विस्तरः -** यो निर्मोहशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणेन शुद्धोपयोगसंज्ञेनागमभाषया पृथक्त्ववितर्कवीचारप्रथमशुक्लध्यानेन पूर्वं निरवशेषमोहक्षपणं कृत्वा तदनन्तरं रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वसंवित्तिलक्षणेनैकत्ववितर्कावीचारसंज्ञद्वितीयशुक्लध्यानेन क्षीणकषायगुणस्थानेऽन्तर्मुहूर्तकालं स्थित्वा तस्यैवान्त्यसमये ज्ञानदर्शनावरणवीर्यान्तरायाभिधानधाति-कर्मत्रयं युगपद्विनाशयति, स जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तवस्तुगतानन्तधर्माणां युगपत्प्रकाशकं केवलज्ञानं प्राप्नोति। ततः स्थितं शुद्धोपयोगात्सर्वज्ञो भवतीति।।१५।।

अब, शुद्धोपयोगकी प्राप्तिके बाद तत्काल (अन्तर पड़े बिना) ही होनेवाली शुद्ध आत्मस्वभाव (केवलज्ञान) प्राप्तिकी प्रशंसा करते हैं :-

गाथा-१५

जे उपयोग विशुद्ध ते मोहादि घाती रज थकी।
स्वयमेव रहित थयो थको ज्ञेयान्त ने पामे सही।।१५।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो **[उपयोगविशुद्धः]** उपयोग विशुद्ध (शुद्धोपयोगी) है **[आत्मा]** वह आत्मा **[विगतावरणान्तरायमोहरजाः]** ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहरूप रजसे रहित **[स्वयमेव भूतः]** स्वयमेव होता हुआ **[ज्ञेयभूतानां]** ज्ञेयभूत पदार्थोंके **[पारं याति]** पारको प्राप्त होता है।

टीका :- जो (आत्मा) चैतन्य परिणामस्वरूप उपयोगके द्वारा यथाशक्ति विशुद्ध होकर वर्तता है, वह (आत्मा), जिस पद पद पर (प्रत्येक पर्यायमें) विशिष्ट विशुद्ध शक्ति प्रगट होती जाती है, ऐसा होनेसे, अनादि संसारसे बँधी हुई दृढ़तर मोहग्रन्थि छूट जानेसे अत्यन्त निर्विकार चैतन्यवाला और समस्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तरायके नष्ट हो जानेसे निर्विघ्न विकसित आत्मशक्तिवान स्वयमेव होता हुआ ज्ञेयताको प्राप्त (पदार्थों) के अन्तको पा लेता है।

यहाँ (यह कहा है कि) आत्मा ज्ञानस्वभाव है, और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है; इसलिये समस्त ज्ञेयोंके भीतर प्रवेशको प्राप्त (ज्ञाता) ज्ञान जिसका स्वभाव ऐसे आत्माको आत्मा शुद्धोपयोगके ही प्रसादसे प्राप्त करता है।

किया है - जैसा (स्वरूप शास्त्र में) कहा है वैसा (सत्य) पदार्थ का भी ज्ञान किया है (अर्थात्) सूत्र में कहा है वैसा ही जिसने ज्ञान किया है, ऐसे संयम और तपसहित है (तथा) जिन्हें शुद्धोपयोग - वीतरागता और समभाव वर्तता है, ऐसा आत्मा मोक्षमार्ग में और मोक्ष में है - वह मोक्ष को प्राप्त होगें। यद्यपि अंत में (२७२ गाथा में) तो ऐसा कहते हैं कि जो मोक्षमार्ग में है वह मोक्षतत्त्व है। आहाहा ! बहुत अच्छी गाथा है!

`**अब, शुद्धोपयोग की प्राप्ति के बाद तत्काल (अंतर पड़े बिना) ही होनेवाली शुद्ध आत्मस्वभाव (केवलज्ञान) प्राप्ति की प्रशंसा करते हैं।**' केवलज्ञान अर्थात् वह तो आत्मस्वभाव है। (अत:) ऐसे शुद्धोपयोग प्राप्त जीव को तुरंत ही केवलज्ञान होता है। आहाहा! (अंदर) है ? कि `**शुद्धोपयोग की प्राप्ति के बाद तत्काल (अंतर पड़े बिना) ही होनेवाली शुद्ध**

भावार्थ :- शुद्धोपयोगी जीव प्रतिक्षण अत्यन्त शुद्धिको प्राप्त करता रहता है; और इसप्रकार मोहका क्षय करके निर्विकार चेतनावान होकर, बारहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें ज्ञानावरण; दर्शनावरण और अन्तरायका युगपद् क्षय करके समस्त ज्ञेयोंको जाननेवाले केवलज्ञानको प्राप्त करता है। इसप्रकार शुद्धोपयोगसे ही शुद्धात्मस्वभावका लाभ होता है।।१५।।

आत्मस्वभाव (केवलज्ञान) प्राप्ति की...' अर्थात् '**केवलज्ञान की प्राप्ति की प्रशंसा करते हैं।**' आहाहा ! (केवलज्ञान की) प्राप्ति की प्रशंसा करते हैं।

'**जो उपयोग विशुद्ध...**' देखा ? '**विशुद्ध**' (कहा) (इस शुद्ध उपयोग को विशुद्ध कहा)। विशुद्ध तो शुभभाव को भी कहते हैं और शुद्धभाव को (भी) कहते हैं (अत:) जहाँ जो अनुकूल आता हो वह लगाना और '**ज्ञेयान्त ने पामे सही...**' अर्थात् जितने ज्ञेय हैं उन्हें जान लेता (है)। तीनकाल, तीनलोक के जो ज्ञेय हैं उन सब ज्ञेयों को वह शुद्धोपयोग के फल में केवलज्ञान प्राप्त होने पर जान लेता है। इसकी विशेष बात कहेंगे।

a a a

जो जीव, लौकिक-अनुकुलतामें ही खो गया हो यानी उसे वर्तमानमें दु:ख ही न लगता हो, वैसा श्रोता धर्म-श्रवणके योग्य नहीं है।
(परमागमसार - ९७८)

❁

जो धर्मबुद्धिवश निंद्य कार्योंका त्यागी हुआ है वैसा जीव ही शास्त्र-श्रोता होना चाहिए। जो कार्य लौकिकरूपसे भी शोभा-जनक नहीं है उन कार्योंका करनेवाला श्रोता होने योग्य नहीं है और ऐसा जीव कभी वक्ता तो हो ही नहीं सकता । (परमागमसार - ९७९)

दि. १६-१-१९७९ - प्रवचन नं. - १०

प्रवचनसार-१५वीं गाथा की टीका। कल गाथा कहने में आयी थी। **`जो (आत्मा) चैतन्य परिणामस्वरूप उपयोग के द्वारा...**' अर्थात् क्या कहते हैं ? कि जो यह चैतन्यद्रव्य है उसका (जो) चैतन्यपरिणामस्वरूप उपयोग (उसके द्वारा) अर्थात् चैतन्य का (जो) पूर्णस्वरूप है उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान और उसमें शुद्धोपयोग की रमणता - तीनों को यहाँ चैतन्यपरिणामस्वरूप उपयोग कहा है। त्रिरत्न लक्षण शुद्धोपयोग। यानी कि ज्ञानस्वरूप चिदानंदधन भगवानआत्मा के शुद्ध चैतन्य परिणाम। (अर्थात्) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र - ये तीनों चैतन्य के परिणाम हैं। वह **`चैतन्यपरिणामस्वरूप...**' संस्कृत टीका में **`चैतन्यपरिणामलक्षणेन्**' है। किन्तु `लक्षण' अर्थात् स्वरूप। आहाहा! ऐसा जो चैतन्य भगवान है वह ज्ञानस्वरूप प्रभु है। उसके सन्मुख के ज्ञानपरिणाम, दर्शन(परिणाम) (और) चारित्रपरिणाम - वे त्रिरत्न लक्षणरूप परिणाम (हैं)। उन्हें यहाँ शुद्धोपयोग कहने में आया है। आहाहा ! वह शुद्धोपयोग सर्वज्ञपद की प्राप्ति का कारण है। आहाहा !

`चैतन्यपरिणामस्वरूप...' (अर्थात्) रागादि जो बीच में आता है वह कोई चैतन्यस्वरूप नहीं। अत: (उन) राग का उलंघन करके चैतन्य की जात के जो स्वरूप लक्षणवाले - चैतन्य लक्षणस्वरूप - (जो परिणाम हैं उन्हें) (यानी कि) त्रिकाली भगवानआत्मा के स्वभाव का अंतर ज्ञान, अंदर दृष्टि और (उसकी) अंतर स्थिरता को यहाँ चैतन्यपरिणामस्वरूप - उपयोग-लक्षण कहने में आया है। आहाहा ! मूल केवलज्ञान की बात है न ? केवलज्ञान किससे पाया जाता है ? अरिहंतपद, सिद्धपद या सर्वज्ञपद (किससे पाया जाता है) ? (कि) सर्वज्ञस्वरूपी भगवानआत्मा का - सर्वज्ञस्वभावी जो आत्मा (है) उसका - जो सर्वज्ञस्वभाव है उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा और उसकी रमणता से। (अर्थात्) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की (यानी कि) शुद्धोपयोग की रमणतारूप चैतन्य के परिणाम (के द्वारा पाया जाता है)।

उसके **`द्वारा यथाशक्ति...**' आहाहा ! ऐसा (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) प्राप्त होने के बाद भी **`यथाशक्ति विशुद्ध होकर वर्तता है,...**' - (वैसा कहते हैं)। अपनी शक्ति अनुसार शुद्धोपयोग में सातवें गुणस्थान में (जो वर्तता है वह आत्मा) आहाहा ! शक्ति अनुसार विशुद्ध यानी

कि शुद्ध - निर्मल होकर जो वर्तता है वह आत्मा है। सूक्ष्म बात है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की - स्वरूप के ज्ञान की (बात है)। (बाक़ी) आगम का ज्ञान चाहे जितना हो (तो) भी वह कोई ज्ञान नहीं। इस प्रकार नव तत्त्व की, छः द्रव्य की आदि की श्रद्धा हो (तो भी) वह कोई सम्यग्दर्शन नहीं और अंदर व्रत, नियम के जो विकल्प हैं वे कोई चारित्र नहीं। आहाहा ! अतः यहाँ चैतन्यस्वरूप की जात का - चैतन्यस्वरूप लक्षणवाला - जो परिणाम (है उसे) (अर्थात्) त्रिकाली (चैतन्य के) निश्चय रत्नत्रयस्वरूप परिणाम को उपयोग के द्वारा कहा है। (उस उपयोग के द्वारा जो आत्मा) **'यथाशक्ति विशुद्ध होकर वर्तता है, वह (आत्मा),...'** (यानी कि) शुद्धोपयोग में यथाशक्ति निर्मल होकर वर्तता है। एक बात।

आहाहा ! यह तो सर्वज्ञता किस प्रकार प्राप्त हो ? उसका उपाय क्या है ? (उसका उपाय यह है)। आहाहा ! किसी व्यवहार रत्नत्रय का राग कोई मोक्षमार्ग नहीं। अथवा वह कोई मोक्ष की - केवलज्ञान की - प्राप्ति का उपाय नहीं। आहाहा! अनंत अनंत गुण का भंडार आत्मा, भगवान (है)। उसकी जिसे अंतर दृष्टि हुई (यानी कि) महा भगवान का स्वीकार हुआ, उसका ज्ञान हुआ, और उसमें चैतन्य में शुद्धोपयोगरूपी परिणमन (अर्थात्) चारित्र हुआ (है)। (वह जीव) दर्शन, ज्ञान, चारित्र) के द्वारा यथाशक्ति यानी कि शक्ति अनुसार... (शक्ति अनुसार क्यों कहा ?) (क्योंकि) पूर्ण शुद्धता तो बाद में होगी। केवलज्ञान की प्राप्ति का जो शुद्धोपयोग है वह तो आगे जाकर होगा। किन्तु ऐसे शुद्धोपयोग (के द्वारा जो) **'यथाशक्ति विशुद्धि होकर वर्तता है, वह (आत्मा), जिसे पद पद पर (प्रत्येक पर्याय में) विशिष्ट विशुद्धशक्ति प्रगट होती जाती है,...'** आहाहा ! क्या कहा ? (कि) ज्ञानानंदस्वरूप भगवान(आत्मा की) सन्मुख के दर्शन, ज्ञान और चारित्र के परिणाम यथाशक्ति वर्तते हैं। (वह) बाद में क्रमशः किसी (अंश में) विकसित होते जाते हैं, ऐसा कहते हैं। सातवें गुणस्थानमें से आगे आठवाँ, नौवाँ और दसवाँ (इस प्रकार विकसित होते है)। विशिष्ट नाम विशेष, असाधारण, खास। है (अंदर) ? (मूल शास्त्र में फूटनोट में है)। विशुद्धिशक्ति अर्थात् यहाँ शुद्ध परिणमन की विशुद्धशक्ति कही है। विशुद्धि अर्थात् यहाँ पर शुभभाव नहीं।

केवलज्ञान किस प्रकार प्राप्त होता है और केवलज्ञान किसको कहना यह उसे जानना पड़ेगा न ? आहाहा ! तो कहते हैं कि **'विशुद्धिशक्ति प्रगट होती जाती है,...'** यानी (कि) शुद्धोपयोग में शुद्धता विकसित होती जाती है। आहाहा! प्रत्येक पर्याय में शुद्धता विकसित होती जाती है। (और) **'ऐसा होने से...'** ऐसे कारण से (अर्थात्) ऐसी शुद्धता की वृद्धि होती जाती है इस कारण से आहाहा ! **'अनादि संसार से बँधी हुई दृढ़तर मोहग्रंथि छूट जाने से...'** आहाहा ! शुद्धोपयोग की रमणता जमते जमते - शुद्धोपयोग की वृद्धि

होने पर - मोहग्रंथि का नाश हो जाता है। पहले मोह का नाश होता है न ? आहाहा ! **`अनादि संसार से बँधी हुई दृढ़तर...'** है न (अंदर)? **`दृढ़तर'** लिया है, दृढ़ नहीं, दृढ़तम (भी) नहीं (किन्तु) दृढ़तर - मध्यम लिया है। आहाहा ! **`अनादि संसार से बँधी हुई दृढ़तर मोहग्रंथि'** (ऐसा कहा है) क्योंकि पहले सम्यग्दर्शन हुआ है तब कोई कोई मोहग्रंथि तो नष्ट हुई है। सभी (मोहग्रंथि) नष्ट नहीं हुई। मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी की ग्रंथि तो नष्ट हुई है। आहाहा! इससे आगे बढ़ने पर दृढ़तर रही है, दृढ़तम रही नहीं। आहाहा ! भगवानआत्मा ! अपने ज्ञानस्वभाव के सन्मुख के उपयोग में पहले तो सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है। उस समय मोहग्रंथि जो (अनादि की) दृढ़तम थी उनका नाश हो जाता है (और) केवल चारित्रमोह की ग्रंथि रह गई है। आहाहा ! समझ में आया ? कितना संक्षेप किया है ? (थोड़े में कितनी बात कही है !)

ऐसी जो (दृढ़तर मोहग्रंथि है) वह अनादि से है। आहाहा ! श्री अमृतचंद्राचार्य ने (समयसारजी के तीसरे श्लोक में भी) कहा न ? कि मेरे परिणाम अभी अनादि के मलिन हैं। वे अनादि के (मलिन परिणाम) हैं। भले ही (हमें) सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ, ज्ञान हुआ और चारित्र (भी) है, किन्तु अभी (जो) अशुद्धता है वह अनादि की है। आहाहा ! भले ही (अशुद्धता) थोड़ी है। (परिणति कलुषित है ऐसा कहा है न ?) आहाहा ! (तथापि) है अनादि की। वह कोई नई नहीं। (अर्थात् अशुद्धता) नहीं थी और हुई है ऐसा नहीं। अशुद्धता बिलकुल (नष्ट हुई) थी और (फिर से) हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा ! मैंने मेरे प्रभु को देखा, जाना और अनुभव किया (है)। (अत:) इतनी ग्रंथि का तो वहाँ नाश हो गया है। किन्तु (अब) यहाँ पर उग्र पुरुषार्थ के द्वारा जब शुद्धोपयोग वृद्धिगत होता गया तब जो अनादि की चारित्रमोह की ग्रंथि थी (वह भी नष्ट हो गई, वैसा कहते हैं)। आहाहा ! वह (चारित्रमोह की ग्रंथि) नष्ट हो गई थी और (फिर से) नई हुई है, ऐसा तो है नहीं। (क्योंकि) नष्ट हुई हो जब तो बारहवाँ गुणस्थान आ जाये। आहाहा ! समझ में आया ? (क्या) वीतराग मार्ग ! उसके द्रव्य-गुण-पर्याय की और (उसमें भी) पर के अभाव की अलौकिक बातें हैं !! आहाहा! (कहते हैं कि) वह अनादिकाल की बँधी हुई दृढ़तर मोहग्रंथि छूट जाने से...

दृढ़तर क्यों कहा ? यह अपेक्षा से कहा (है)। दृढ़तम नहीं (कहा), वैसे ही जघन्य दृढ़तर भी नहीं (कहा)। (क्योंकि) अभी अंदर चारित्रमोह का अंश है न ? आहाहा! ऐसा **`दृढ़तर मोहग्रंथि छूट जाने से अत्यंत निर्विकार चैतन्यवाला...'** वह वीतराग स्वभाव हुआ। आहाहा ! **`अत्यंत निर्विकार चैतन्यवाला और समस्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अंतराय के नष्ट हो जाने से...'** पहले मोह का नाश हुआ। (बाद में) शुद्धोपयोग विकसित होते

होते ऐसा (शुद्धोपयोग) हुआ कि मोह की ग्रंथि जो थोड़ी थी उसका (भी) नाश हो गया। बाद में **`अत्यंत निर्विकार चैतन्यवाला और समस्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अंतराय के नष्ट हो जाने से...**' आहाहा ! शुद्धोपयोग के द्वारा जब मोहग्रंथि - चारित्रमोह का भी नाश हो गया तब उन्हें वह शुद्धोपयोग विकसित होता हुआ तेरहवें गुणस्थान में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय वे तीनों कर्म भी नाश हुये। यह (मोक्ष का) उपाय है। (ऐसा) कहते हैं।

`समस्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अंतराय के नष्ट हो जाने से निर्विघ्न विकसित आत्मशक्तिवान...**' आहाहा ! अब जो आत्मशक्ति विकसित हुई (है) उसे कोई विघ्न नहीं। जो अपनी हीनदशा(रूप) विघ्न था वह भी (अब) नहीं। निमित्त तो एक तरफ रहा। आहाहा ! अंतराय आदि नष्ट होने से **`निर्विघ्न विकसित आत्मशक्तिवान स्वयमेव होता हुआ...' यह आत्मशक्ति अर्थात् प्रगटदशा। त्रिकाली (शक्ति की) बात नहीं। राग की शक्ति का अभाव होकर आत्मशक्ति का विकास हुआ, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! ऐसी बात (है)।

उसे संवर - शुद्धोपयोग क्या है ? और उसका फल क्या है ? - वह जानना होगा न ? नव तत्त्व में मोक्ष तत्त्व क्या है ? और उसका उपाय संवर-निर्जरा का शुद्धोपयोग क्या है ? (वह जानना चाहिये न ?) (क्योंकि) नव तत्त्व में वह आता है न ? आहाहा ! (कहते हैं कि) **`आत्मशक्तिवान स्वयमेव होता हुआ...**' (अर्थात्) आठ कर्म का नाश होने के कारण वह (आत्मशक्तिवान) हुआ, ऐसा नहीं। स्वयं जो स्वयं के कारण केवलज्ञान की विकसित शक्ति प्रगट हुई है। आहाहा ! कर्म के अभाव के कारण यह शक्ति (प्रगट) हुई, ऐसा नहीं। (क्योंकि) उस निमित्त का तो (स्वयं में) अभाव (है)। किन्तु स्वयं ही स्वयमेव - ज्ञान की जैसी सर्वज्ञ शक्ति थी वैसी ही पर्याय में स्वयमेव - सर्वज्ञरूप विकास शक्ति प्रगट हुई। आहाहा ! उन परमात्मा को अरिहंत कहते हैं। अब (अज्ञानी को) अरिहंत की अभी ख़बर नहीं और `नमो अरहंताणम् - नमो अरहंताणम्' करता (है)। आहाहा ! और यहाँ तक कि पर के अरिहंत को इस प्रकार (जब तक) जानता है, तब तक विकल्प है। समझ में आया? अरिहंत इस रीति से हुये और इससे केवलज्ञान को प्राप्त हुये - ऐसा भी जब तक ज्ञान है (तब तक) वह भी अभी विकल्प है। यहाँ तो - इसमें तो - स्वयं (केवलज्ञान) को प्राप्त हुआ, उसकी बात है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई !

आहाहा ! भगवान(आत्मा) तो सर्वज्ञस्वरूपी ही है। प्रभु ! आहाहा ! मुक्तस्वरूप है। ज्ञान और आनंदादि स्वभाव से भरा भगवान मुक्तस्वरूप है। उसकी अंतर में दृष्टि हुई, अंतर में उसका ज्ञान हुआ। शास्त्रज्ञान आदि (है) वह नहीं। आहाहा ! (किन्तु) वह भगवान(आत्मा) कि (जो) पूर्ण शक्ति का भंडार परमात्मा (है), उसका जो ज्ञान हुआ, और उसमें जो

शुद्धोपयोग की रमणता हुई, आहाहा ! उससे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। कहिये समझ में आया ? नव तत्त्व में मोक्ष तत्त्व और उसके उपाय(रूप) तत्त्व (जो) संवर-निर्जरा का शुद्धोपयोग (हैं उन) दोनों का यहाँ ज्ञान कराते हैं। समझ में आया ? इसमें आस्रव और बंध का (तो) अभाव किया है। यहाँ तो संवर-निर्जरारूप शुद्धोपयोग आहाहा ! (अर्थात्) जैसा चैतन्य भगवान पूर्ण शुद्ध है - द्रव्य से शुद्ध है और गुण से शुद्ध है - वैसी ही परिणति में शुद्धोपयोग की दशा (यानी कि) निश्चय रत्नत्रय लक्षणस्वरूप (जो) शुद्धोपयोग प्रगट हुआ, उससे चार कर्म का नाश होकर और अंदर जैसी शक्तिरूप (जैसे) स्वभावरूप - सर्वज्ञपना था, ऐसा जिन्हें सर्वज्ञपना - केवलज्ञान प्रगट हुआ। जो नवतत्त्व में (मोक्ष और उसके उपाय की बात चलती है)। अपने अंदर का तत्त्व (है), हाँ ! आहाहा !

श्रोता :- भेदज्ञान ज्योति अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह शुद्धोपयोग करता है वह भेदज्ञान ज्योति (है)। इससे भिन्न, इससे भिन्न ऐसे भेदज्ञान को तो अभी विकल्प कहा है। यहाँ तो वह (भी) नहीं। आहाहा ! कलश में आता है न ? आत्म भगवान (तो) पूर्णानंद, सहजात्मस्वरूप (है)। जिसके अस्तित्व में पवित्रतामय अनंत गुण का भंडार (है)। (ऐसा वह) प्रभु ही है, परमात्मा ही है। जिन-जिनवर और (इस परमात्मा के) स्वभाव में कोई फर्क नहीं। किन्तु वह स्वभाव (कि जो) पूर्ण है, शक्तिरूप है वह, भगवान को पर्याय में प्रगट हुआ है (और अज्ञानी को प्रगटा)। उस पूर्णरूप स्वभाव का जिसने श्रद्धा और ज्ञान में आदर किया (है), उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान कहते हैं। और जो पूर्ण स्वभाव है उसके दर्शन, ज्ञान सहित शुद्धोपयोग की रमणता जिसको प्रगट हुयी (है) उसको मोक्ष का उपाय, शुद्धोपयोग, निश्चय रत्नत्रयलक्षण कहते हैं। लीजिये ! ऐसा है।

श्रोता :- दूसरा कोई आसान रास्ता बताइये न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यही रास्ता है। जो रास्ता हो सो हो, दूसरा कौन सा हो? आहाहा ! जो रास्ता होता है वही होता है न ? कठिन पड़े (या) महँगा पड़े - किन्तु रास्ता (जो होता है वही होता है)। (जिस प्रकार कोई गाँव) २५ कोस दूर हो तो उसे वही रास्ता बतलाया जाता है। किन्तु (कोई) कहता है कि (भाई !) आसान - पाँच गाव ही चलें ऐसा रास्ता बतलाइये। भाई ! इस प्रकार नहीं जाना होगा। पाँच कोस के (रास्ते पर) तो दूसरा गाँव आयेगा। आहाहा ! वैसे यह भगवानआत्मा ! अरे! वह आत्मा क्या चीज है भाई ! आहाहा ! अनंत अनंत ज्ञान-सर्वज्ञस्वभाव, अनंत अनंत दर्शन-सर्वदर्शीस्वभाव, अनंत अनंत आनंद - पूर्ण आनंदस्वभाव, अनंत अनंत वीर्य - पूर्ण पुरुषार्थस्वभाव, ऐसे ऐसे अनंत गुण का पूर्ण स्वभाववान भगवानआत्मा (है)। उसके सन्मुख होकर जो दृष्टि होती है उसे

सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसके सन्मुख के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। शास्त्र अध्ययन या (दूसरे अध्ययन की) यहाँ बात नहीं। आहाहा ! वह जैसा स्वरूप (है) वैसा दर्शन और ज्ञान हुआ वह दो रत्न हुये - दर्शन और ज्ञान। तीसरा रत्न शुद्धोपयोग है। चारित्र की रमणता होना - शुद्धोपयोग (होना) - वह तीन लक्षणयुक्त निश्चय रत्नत्रय, मोक्षमार्ग है, उसे यहाँ शुद्धोपयोग कहा (है)। आहाहा ! है, यह तो भाई ! मार्ग ऐसा है। आहाहा ! जीव को भटकते - भटकते अनंतकाल हुआ (किन्तु यह मार्ग प्राप्त किया नहीं)। आहाहा !

(कहते हैं कि) `**आत्मशक्तिवान स्वयमेव...**' शक्ति शब्द से (यहाँ) पर्याय की बात है। गुण की (बात) नहीं। (क्योंकि) `**निर्विघ्न विकसित आत्मशक्ति...**' ऐसा कहा है न ? आहाहा ! त्रिकाली शक्ति है वह तो गुणरूप है। यहाँ तो निर्विघ्न विकसित (आत्मशक्ति की - पर्याय की बात है)। `**निर्विघ्न विकसित आत्मशक्तिवान स्वयमेव होता हुआ**' आहाहा! `**ज्ञेयता को प्राप्त (पदार्थों) के अंत को पा लेता है।**' (संस्कृत में) `**ज्ञेयभूतानाम्**' है न ? (यानी कि) जितने ज्ञेयभूत - ज्ञेयरूप - जगत में (पदार्थ) हैं आहाहा ! ज्ञेयता को प्राप्त अर्थात् पदार्थ - ज्ञेयता को प्राप्त जितने पदार्थ हैं उनके - अंत को वह ज्ञान पा लेता है। है न (अंदर) ? मूलपाठ है न ? देखिये न ? कि `**भूदो सयमेवादा**' देखा ? (स्वयमेव हुआ है)। बाद में `**जादि परं णेयभूदाणं**' ज्ञेयभूत जितने ज्ञेय हैं उनके अंत को पा लेता है। आहाहा ! गाथा तो गाथा है न !

(सम्यग्ज्ञान होने पर) स्वयं को (तो) जाना। किन्तु उसका (जो) त्रिकालपना है उसे अभी जाना नहीं। त्रिकालपना तो सर्वज्ञ होता है तब उसका त्रिकालपना जानने में आता (है)। आहाहा! ऐसे - स्व और पर जो ज्ञेयभूत (पदार्थ) हैं, जो ज्ञान में (आते हैं) - ज्ञान का विषय (होते हैं) - ऐसे जो ज्ञेयभूत (पदार्थ) हैं, जितने ज्ञेयभूत (पदार्थ) हैं, (यानी कि) द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव जितने ज्ञेयभूत हैं उन्हें - उनके अंत को ज्ञान पा लेता है। यानी (कि) वह ज्ञान ऐसे ज्ञेय को जान लेता है। आहाहा ! कोई ज्ञेय बाक़ी रह जाता है, ऐसा उस (ज्ञान में) नहीं। जितने ज्ञेयभूत - ज्ञेयस्वरूप को प्राप्त - पदार्थ हैं... आहाहा! लोक-अलोक, काल - तीनकाल, तीनलोक - उर्ध्व, मध्यम और अधो(लोक में) अनंत द्रव्य - आत्मा (और) परमाणु (आदि) जितने ज्ञेय अर्थात् ज्ञान में आने योग्य, ऐसे ज्ञेयभूत जितने पदार्थ हैं उन्हें वह ज्ञान जान लेता है - जानता है। आहाहा ! है (अंदर) ? आहाहा ! श्री जयसेनाचार्य की टीका में `पारं' का (ऐसा) अर्थ किया है, - `पारं' (अर्थात्) `पारमवसानम्' जितने ज्ञेय जगत में हैं उन सब के अंत को पा लेता है। आहाहा ! तीनकाल, तीनलोक, अनंत द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव (आदि) जो ज्ञेयभूत - ज्ञेयस्वरूप हैं, ज्ञान में आये ऐसे ज्ञेयस्वरूप हैं वे सभी ज्ञेयस्वरूप के अंत को ज्ञान पा लेता (है)। आहाहा ! ऐसा उसका केवलज्ञानस्वभाव

शुद्धोपयोग के `प्रसादात्' - (प्रसाद से) प्रगट होता है। आहाहा ! उस शुभ क्रियाकांड के प्रसाद से तो पुण्यबंध होता (है)। आहाहा ! वह तो पहले (११वीं गाथा में) कह गये हैं कि सम्यग्दर्शन है, चारित्र भी है। तथापि साथ में शुभराग जब तक है तब तक वह स्वर्ग को प्राप्त होगा (किन्तु) मोक्ष को प्राप्त नहीं होगा। आहाहा ! वह जीव जब राग का उलंघन करके शुद्धोपयोग को प्राप्त होगा और उस शुद्धोपयोग की विकसित होती दशा होने पर मोह का (जब) नाश करेगा और बाद में तीन कर्म का (भी) जब नाश करेगा, तब उन्हें सर्वज्ञता (होगी) - जितने ज्ञेय हैं उन्हें पूर्णरूप से जानने की शक्ति प्रगट होगी। आहाहा ! आदि अंत रहित चीज है उसे आदि अंत रहित जान लिया वह भी ज्ञेय है न ? जिसकी आदि नहीं (और) जिसका अंत नहीं - ऐसा (वह) भी ज्ञेय है। आहाहा ! (उसे केवलज्ञान जान लेगा)। काल की आदि नहीं, काल का अंत नहीं, (उसी प्रकार) क्षेत्र का (भी) अंत नहीं कि यहाँ क्षेत्र समाप्त हो गया। आहाहा ! उन सभी ज्ञेय को - जानने योग्य के स्वरूप को प्राप्त - वह शुद्धोपयोग के प्रसाद से (प्रगट) हुआ ज्ञान (अर्थात्) आत्मशक्तिस्वरूप वह (ज्ञान) उन्हें जान लेता है। कहिये समझ में आया ?

आहाहा ! (यह तो) मोक्ष का मंडप डाला (है) ! यह (लग्न के समय) तीन तिथि पर और पाँच तिथि पर मंडप लगाते हैं न ? वैसे इस शुद्धोपयोग को किया उसने मोक्ष का मंडप लगाया (है)। थोड़ा शुद्धोपयोग विकसित होगा तो केवलज्ञान होगा। आहाहा ! लग्न में तीसरे दिन या पाँचवें दिन (मंडप) लगाते हैं न ? वैसे यहाँ केवलज्ञान को प्राप्त करने के लिये शुद्धोपयोग का मंडप लगाया (है)। आहाहा ! वह शुद्धोपयोग विकसित होते होते - विशुद्ध होते होते - केवलज्ञान को प्राप्त होता है। आहाहा ! लग्न की तीन या पाँच वर्धी कहते हैं न ? यहाँ अंत:मुहूर्त की वर्धी है। आहाहा! (अर्थात्) जिसने पूर्णानंद का नाथ भगवान(आत्मा की) श्रद्धा, ज्ञान और रमणता उत्पन्न किया, उसे अब अंत:मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त करने की अवधि है। आहाहा ! क्या टीका ! (क्या) अमृतचंद्राचार्य (और क्या) कुंदकुंदाचार्य ! आहाहा ! केवलज्ञान के पथिक (हैं)। हम अल्पकाल में केवलज्ञान को प्राप्त करनेवाले हैं ऐसा कहते हैं। हमारा शुद्धोपयोग इस समय अभी पूरा नहीं होगा। किन्तु वह शुद्धोपयोग विकसित होते होते जब पूर्ण होगा तब हम सर्वज्ञ होंगे। (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! समझ में आया ?

श्रोता :- यह क्षपकश्रेणीवाले के शुद्धोपयोग की बात है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ तो एक ही बात (है)। पहले सातवें (गुणस्थान में) शुद्धोपयोग हुआ है। बाद में `**विशिष्ट विशुद्ध शक्ति प्रगट होती जाती है**' - ऐसा कहा न ? (यानी कि) विशुद्धिशक्ति विकसित होते होते क्षपकश्रेणी में आगे गया और जब पूर्ण हुई, तब

मोह का नाश हुआ। और केवलज्ञान होने पर तीन कर्म का नाश हुआ। जैसी शक्ति पूर्ण थी वैसी पर्याय में शक्ति पूर्ण प्रगट हो गई। आहाहा ! जैसा और जितना उसका शक्ति का - स्वभाव में सामर्थ्यभाव था उतना उसकी पर्याय में प्रगट हो गया। आहाहा ! (अर्थात्) प्राप्त की प्राप्ति हुई। जो अंदर पूर्ण (स्वभाव) था (उसकी पर्याय में प्राप्ति हुई)। आहाहा ! बहुत मंगलिक बात है। प्रभु ! आहाहा ! आज मकरसंक्रात (सूर्य की गति) पलटी न ? (उसी प्रकार) यह शुद्धोपयोग जब पलटा तब केवलज्ञान प्रगट हुआ (ऐसा कहते हैं)। (मकरसंक्रात) पुण्य बदला है। (जब कि) यह (शुद्धोपयोग) पवित्र पलटी है। आहाहा ! वह पंद्रहवीं गाथा का अर्थ हुआ। किन्तु उसमें बहुत भरा है !

दर्शन-ज्ञान-चारित्रवाले की शुद्धोपयोगरूपी चारित्रदशा की (यहाँ बात है)। सराग समकितवाले की (बात) नहीं। सराग समकित अर्थात् (यद्यपि) समकित तो वितरागी ही है। किन्तु जीव को जब तक राग है तब तक उसे सराग समकित कहते (हैं)। सराग चारित्र कहते (हैं)। किन्तु वह राग है वह बंध(रूप) है। जितना विकल्प है उतना बंध है। आहाहा ! (और) कलशटीका में तो वहाँ तक लिया है कि शुद्धात्मा का विचार भी बंध का कारण है। विचार शब्द से वहाँ विकल्प है। आहाहा ! वहाँ कलशटीका में (कलश-१८९ में) आया था न ? प्रतिक्रमण के अर्थ में (रात्रि में आया था न) ? (कि) पठन, पाठन, स्मरण, स्तुति और शुद्धात्मा का विचार भी बंध का कारण है। आहाहा ! यह छोड़कर अंदर शुद्धोपयोग में (जो) जम गया है उसे, उससे (शुद्धोपयोग से) सर्वज्ञस्वभाव (जो) शक्तिरूप (था) वह प्रगट (पर्याय में) हो गया। (अर्थात्) पर्याय की शक्ति में सर्वज्ञपना (प्रगट हो गया)। आहाहा !

'**यहाँ (यह कहा है कि) आत्मा ज्ञानस्वभाव है, और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है;...**' क्योंकि ज्ञान जितने ज्ञेय हैं उनको जानने के स्वभाववाला है। '**इसलिये समस्त ज्ञेयों के भीतर प्रवेश को प्राप्त...**' यानी कि समस्त ज्ञेय को जाननेवाला। प्रवेश करना अर्थात् समस्त ज्ञेय को जाननेवाला आहाहा ! ज्ञान जिसका स्वभाव है - '**ज्ञान जिसका स्वभाव है ऐसे आत्मा को आत्मा शुद्धोपयोग के ही प्रसाद से प्राप्त करता है।**' आहाहा!

(कहते हैं कि) '**ज्ञान जिसका स्वभाव है...**' प्रधान ज्ञान लिया है न ? जानना (एक) ही जिसकी शक्ति (है), जानना ऐसा ही जिसका स्वभाव है। '**ऐसे आत्मा को आत्मा शुद्धोपयोग के ही प्रसाद से प्राप्त करता है।**' आहाहा ! (ऐसा) लोगों को बहुत सूक्ष्म लगता है - निरस लगता है। उन बाहर के व्रत और भक्ति में उसे ऐसा लगता है कि इनमें कुछ समझ में तो आता है ? किन्तु उनमें क्या समझना था? आहाहा ! वह तो राग है बापू ! आहाहा ! '**शुद्धोपयोगप्रसादात् एव आसादयति**' - आहाहा ! शुद्धोपयोग के प्रसाद से वे

(केवलज्ञान को) प्राप्त हो जाते हैं (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! वह गाथा का अर्थ है। उसका यह सार कहा है।

भाई यह तो धर्मकथा है न प्रभु ! यह तो सर्वज्ञ-स्वभाव भगवान(आत्मा) सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु है। उसकी पर्याय में सर्वज्ञता किस प्रकार प्रगट होती है उसकी बात है, भाई! भगवानआत्मा सर्वज्ञस्वरूपी ही है। क्योंकि ज्ञान का `ज्ञ' स्वभाव है। तो `ज्ञ' स्वभाव है वह पूर्ण `ज्ञ' स्वभाव है। (और) पूर्ण `ज्ञ' स्वभाव है अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव है। सर्वज्ञस्वभावी भगवानआत्मा के सर्वज्ञस्वभाव की सम्यक् प्रतीति (होती है), उसका ज्ञान (होता है और) उसमें रमणता (होती है) आहाहा ! वह सर्वज्ञस्वभावमें से सर्वज्ञपर्याय प्रगट करने का उपाय है। आहाहा ! ऐसी बात है। (किन्तु) मोक्षमार्ग दो कहे हैं न ? वह (व्यवहार) तो कथनमात्र कहा है, भाई ! वह मोक्षमार्ग नहीं। वह तो उपचार से (कहा है)। उपचार अर्थात् व्यवहार और व्यवहार अर्थात् उपचार, दोनों एक ही बात है। उस (व्यवहार को) उपचार से (मोक्षमार्ग कहा है)। (बाक़ी) मोक्षमार्ग तो यह (निश्चय) एक ही है। (शास्त्र में) राग को (जो) मोक्षमार्ग कहा है, वह तो कथनमात्र है। और (व्यवहार) निमित्त है उसे आरोप से (मोक्षमार्ग) कहा (है)। (बाक़ी) मार्ग तो यह एक ही है, यह एक ही है।

श्रोता :- तो, दो मोक्षमार्ग क्यों कहे ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो कहते हैं न ? कि (व्यवहार) कथनमात्र (है) और यह वहाँ - (मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवें अध्याय में भी कहा न) ? कि अन्य चीज (निमित्त) है उसमें (मोक्षमार्ग का) आरोप किया (है)। आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उसमें जो राग बाक़ी है वह निमित्त है, उसे आरोप से कह दिया। (यद्यपि) है तो वह बंध का कारण किन्तु (उसमें) आरोप करके जीव को समझाया, कि निमित्त ऐसा है। - ऐसा उसका ज्ञान कराया (है)। वह (भी) आता है न ? कि व्यवहार की बात कीया है वह निमित्त का ज्ञान कराने के लिये की है। - ऐसा (भी) सातवें अध्याय में आता है न भाई ? आहाहा ! `मोक्षमार्गप्रकाशक' में (भी) (कमाल कीया है न !) जब जब स्मरण में आता है तब तब (बात कीया है)। आहाहा ! (दो मोक्षमार्ग) साथ में कहे किस कारण ? कि वह तो (निमित्त का) ज्ञान कराने के लिये (कहे हैं)। ऐसा उसका अर्थ हुआ। आहाहा ! ऐसा मार्ग है।

द्रव्यसंग्रह की ३५वीं गाथा में भाव संवर के भेद आते हैं। तो उसमें भाव संवर के भेद में - व्रत आये हैं न ? किन्तु वह व्रत कौन सा ? निश्चय। जो राग रहित स्थिरता - रमणता है वह, उस निश्चय व्रत की ही वहाँ बात है। (कोई ऐसा कहता है कि), `भाव संवर में व्रतों का एक ही प्रकार है। अत: यह (विकल्परुप) व्रत है वह भाव

संवर है।' (किन्तु) वह व्रत नहीं। जो विकल्परूप व्यवहार व्रत है वह तो आस्रव है, राग है और बंध का कारण है। निश्चय व्रत की ही वहाँ स्पष्ट टीका है। द्रव्यसंग्रह की ३५वीं गाथा में भाव संवर के भेद लिये हैं। उसमें व्रत को (भी भाव संवर के भेद में) लिया है। `व्रत' ऐसा शब्द पड़ा है। उस व्रत की व्याख्या टीका में की है कि, रागरहितस्वरूप की निर्विकल्प दशा को यहाँ पर व्रत कहते हैं। (यानी कि) निश्चयव्रत की ही वहाँ बात है। वह चर्चा हो गई है। आहाहा ! (यह गाथा पढ़कर अज्ञानी) कहता है कि देखिये ! इसमें व्रत को भी संवर कहते हैं? (किन्तु) किस व्रत को (संवर कहा है) ? बापू ! भाई ! तू ऐसा नहीं कर। (जो) शुभराग है - शुभोपयोग जो है - वह तो राग है, आस्रव है, पुण्यास्रव है। आहाहा! आनंदस्वरूप भगवानआत्मा में लिपट जाये, स्थिर हो जाये - दर्शन-ज्ञान सहित स्थिर हो जाये (अर्थात्) निर्विकल्प हो जाये, उसे वहाँ भाव-संवर का भेद-व्रत कहा है। ऐसा है। आहाहा ! आनंदस्वरूप प्रभु (आत्मा का) ज्ञान और दर्शन हुआ है, उसमें लीन हो जाता है - लिपट जाता है, स्थिर हो जाता है। उसे (वहाँ) भाव संवर का भेद (ऐसा) व्रत कहा है। यहाँ तो स्पष्ट बात है, बापू ! आहाहा ! अरेरे ! भगवान का विरह हुआ - (भगवान दूर) रह गये और ऐसा विवाद(होता है) ? चोर कोतवाल को दंड देता है ऐसा किया। आहाहा ! ऐसा है और वैसा है - ऐसी भाषा कर के जिनमार्ग से विपरीत है (ऐसा हम पर आरोप करते हैं)। प्रभु ! क्या करता है भाई! तू भी तो प्रभु है, भाई ! आहाहा ! चैतन्यस्वरूप भगवान है न तू ? आहाहा ! पूर्णानंद का नाथ ! अपार स्वरूप तेरा है न ? उसमें ऐसी विपरीतता तूने कहाँ से खड़ी की ? आहाहा !

व्यवहार व्रतादि को - प्रतिक्रमणादि को - (वहाँ) विष कहा है। (समयसार गाथा - ३०६/३०७) आहाहा ! और भाई ! उन्हें (विष) कहा उसके भी अर्थ में जयचंदजी पंडित ने लिखा है कि, कर्तापना है इसलिये (विष कहा है)। ऐसा कौंस में अर्थ है। कर्तापना अर्थात् परिणमता है अत: (कर्ता है)। क्या कहा समझ में आया ? कर्तापना अर्थात् करने योग्य है, ऐसा नहीं। किन्तु परिणमन है इसलिये (कर्ता)। समयसार में जहाँ (३०६/३०७ गाथा में) प्रतिक्रमणादि आठ बोल लिये हैं वहाँ कहा है कि उन्हें विष क्यों कहा है ? (क्योंकि) वहाँ कर्तापना (है अर्थात्) (कर्तापना है अर्थात्) परिणमन है इसलिये (कर्तापना है)। कर्तापना अर्थात् करने योग्य है ऐसा नहीं। (वहाँ श्लोकार्थ में) कौंस में `कर्तृत्व की बुद्धि संभवित है' - ऐसा लिया है। (अर्थात्) परिणमन है इसलिये कर्ता है। है न (वहाँ) ? आहाहा ! पूर्वकाल के पंडित भी जहाँ देखा वहाँ जैसा होना चाहिये वैसा उसका अर्थ (करते थे)। ऐसा ही होना चाहिये भाई ! तुम्हारी कल्पना से बचाव करके (चाहे जैसा अर्थ

करते हो) तो ऐसा नहीं चलेगा। ऐसा है।

भावार्थ :- `**शुद्धोपयोगी जीव प्रतिक्षण अत्यंत शुद्धि को प्राप्त करता रहता है;...**' देखा ? सातवें (गुणस्थान में) शुद्धोपयोगी (तो) हुआ। तथापि आगे प्रतिक्षण शुद्धि को प्राप्त करता रहता है। आहाहा ! `**अत्यंत शुद्धि को प्राप्त करता रहता है;...**' (अर्थात्) अंदर भगवान(आत्मा को) आनंद में रमणता करते-करते-करते शुद्धोपयोग विकसित होता है। आहाहा ! `**और इसप्रकार मोह का क्षय करके...**' - इसप्रकार मोह का नाश करके पर्याय में `**निर्विकार चेतनावान होकर,...**' (यानी कि) वीतरागी चेतनावान होकर... (निर्विकार=वीतरागी)। `**बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय में...**' आहाहा ! `**ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय का युगपद् क्षय करके...**' तीनों का एकसाथ (क्षय करके) `**समस्त ज्ञेयों को जाननेवाले...**' `**समस्त ज्ञेयों के जाननेवाले केवलज्ञान को प्राप्त करता है।**' आहाहा ! टीका में है न ? श्री जयसेनाचार्य की टीका में उसका (यह) अर्थ लिया है। आहाहा ! अरे ! (जीव को) ऐसी बातें सुनने मिलती नहीं और कहीं दूर दूर भटकता है। भाई ! भगवान का अनादर करके राग से लाभ मानना वह तो प्रभु का अनादर है। आहाहा ! उसके स्वभाव से ही उसके स्वभाव की प्राप्ति हो वह उसका आदर है। आहाहा ! ऐसा है।

`**इसप्रकार शुद्धोपयोग से ही...**' एकान्त ? कथंचित् शुद्धोपयोग से और कथंचित् शुभोपयोग से (होता है)। ऐसा अनेकान्त तो (होना) चाहिये या नहीं ? अनेकान्त अर्थात् इसप्रकार - (शुद्धोपयोग से) होता है और अन्य रीति से नहीं होता - वह अनेकान्त (है)। ऐसा अनेकान्त का स्वरूप है। आहाहा ! कलश टीका में अनेकान्त कहा है न? (कलश-२) कि सत्ता सो द्रव्य है और सत्ता सो गुण है - वह अनेकान्त है। ऐसा `कलशटीका' में आया है न भाई ! आहाहा ! वस्तु भगवानआत्मा है। (तो), सत्ता सो द्रव्य है वह अभेद (है) और सत्ता सो गुण है वह भेद (है) - यह अनेकान्त है। - ऐसा कलश टीका में है। आहाहा! ऐसी तो `कलशटीका' में (स्पष्ट बात है)। अरे ! जहाँ जहाँ देखते हैं वहाँ वहाँ `कलशटीका' में और `मोक्षमार्गप्रकाशक' में बहुत स्पष्ट किया है। (तथापि) उन्हें भी नहीं माननेवाले निकलते हैं ! ? कितने ही `मोक्षमार्गप्रकाशक' को मानते नहीं। अरेरे ! अपना दृष्टि में मेल नहीं बैठे (अत: उन्हें) नहीं मानने का अर्थ क्या ? - वह १५ गाथा हुई।

अथ शुद्धोपयोगजन्यस्य शुद्धात्मस्वभावलाभस्य कारकान्तरनिरपेक्षतयाऽत्यन्तमात्मायत्तत्वं द्योतयति -

तह सो लद्धसहावो सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो।
भूदो सयमेवादा हवदि सयंभु त्ति णिद्दिट्ठो।।१६।।
तथा स लब्धस्वभावः सर्वज्ञः सर्वलोकपतिमहितः।
भूतः स्वयमेवात्मा भवति स्वयम्भूरिति निर्दिष्टः।।१६।।

अयं खल्वात्मा शुद्धोपयोगभावनानुभावप्रत्यस्तमितसमस्तघातिकर्मतया समुपलब्धशुद्धानन्तशक्तिचित्स्वभावः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञायकस्वभावेन स्वतन्त्रत्वाद्गृहीतकर्तृत्वाधिकारः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावेन प्राप्यत्वात् कर्मत्वं कलयन्, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावेन साधकतमत्वात् करणत्वमनुबिभ्राणः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावेन कर्मणा समाश्रियमाणत्वात् संप्रदानत्वं दधानः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनसमये पूर्वप्रवृत्तविकलज्ञानस्वभावापगमेऽपि सहजज्ञानस्वभावेन ध्रुवत्वालम्बनादपादानत्वमुपाददानः शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावस्याधारभूतत्वादधिकरणत्वमात्मसात्कुर्वाणः, स्वयमेव षट्कारकीरूपेणोपजायमानः, उत्पत्तिव्यपेक्षया द्रव्यभावभेदभिन्नघातिकर्माण्यपास्य स्वयमेवाविर्भूतत्वाद्वा स्वयंभूरिति निर्दिश्यते। अतो न निश्चयतः परेण सहात्मनः कारकत्वसम्बन्धोऽस्ति, यतः शुद्धात्मस्वभावलाभाय सामग्रीमार्गणव्यग्रतया परतंत्रैर्भूयते।।१६।।

अथ शुद्धोपयोगजन्यस्य शुद्धात्मस्वभावलाभस्य भिन्नकारकनिरपेक्षत्वेनात्माधीनत्वं प्रकाशयति - **तह सो लद्धसहावो** यथा निश्चयरत्नत्रयलक्षणशुद्धोपयोगप्रसादात्सर्वं जानाति तथैव सः पूर्वोक्तलब्धशुद्धात्मस्वभावः सन् **आदा** अयमात्मा **हवदि सयंभु त्ति णिद्दिट्ठो** स्वयम्भूर्भवतीति निर्दिष्टः कथितः। किंविशिष्टो भूतः। **सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो भूदो** सर्वज्ञः सर्वलोकपतिमहितश्च भूतः संजातः। कथम्। **सयमेव** निश्चयेन स्वयमेवेति। तथाहि - अभिन्नकारकचिदानन्दैकचैतन्यस्वभावेन स्वतन्त्रत्वात् कर्ता भवति। नित्यानन्दैकस्वभावेन स्वयं प्राप्यत्वात् कर्मकारकं भवति। शुद्धचैतन्य -स्वभावेन साधकतमत्वात्करणकारकं भवति। निर्विकारपरमान्दैकपरिणतिलक्षणेन शुद्धात्मभावरूपकर्मणा -समाश्रियमाणत्वात्संप्रदानं भवति। तथैव पूर्वमत्यादिज्ञानविकल्पविनाशेऽप्यखण्डितैकचैतन्यप्रकाशेन विनश्वरत्वादपादानं भवति। निश्चयशुद्धचैतन्यादिगुणस्वभावात्मनः स्वयमेवाधारत्वादधिकरणं भवतीत्यभेदषट्कारकीरूपेण स्वत एव परिणममाणः सन्नयमात्मा परमात्मस्वभावकेवलज्ञानोत्पत्तिप्रस्तावे यतो भिन्नकारकं नापेक्षते ततः स्वयंभूर्भवतीति भावार्थः ।।१६।।

`**अब, शुद्धोपयोग से होनेवाली शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति...**' (अर्थात्) चैतन्य भगवानआत्मा `**अब, शुद्धोपयोग से होनेवाली शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति...**' अर्थात् चैतन्य भगवानआत्मा का द्रव्य और अनंत गुण जो शुद्ध है, वैसी ही शुद्ध दृष्टि, शुद्ध ज्ञान और शुद्धोपयोग से शुद्धस्वभाव की प्राप्ति होती (है)। समझ में आया ? शुद्धात्मस्वभाव अर्थात् केवलज्ञान। (कहते हैं कि) `**शुद्धोपयोग से होनेवाली शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति...**' आहाहा ! `**अन्य कारकों**

अब, शुद्धोपयोगसे होनेवाली शुद्धात्मस्वभावकी प्राप्ति अन्य कारकोंसे निरपेक्ष (स्वतंत्र) होनेसे अत्यन्त आत्माधीन है (लेशमात्र पराधीन नहीं है) यह प्रगट करते हैं :-

गाथा-१६

सर्वज्ञ, लब्ध स्वभावने त्रिजगेन्द्र पूजित ए रीते।
स्वयमेव जीव थयो थको तेने स्वयंभू जिन कहे।।१६।।

अन्वयार्थ :- [तथा] इसप्रकार **[सः आत्मा]** वह आत्मा **[लब्धस्वभावः]** स्वभावको प्राप्त **[सर्वज्ञः]** सर्वज्ञ **[सर्वलोकपतिमहितः]** और सर्व (तीन) लोकके अधिपतियोंसे पूजित **[स्वयमेव भूतः]** स्वयमेव हुआ होनेसे **[स्वयंभूः भवति]** 'स्वयंभू' है **[इति निर्दिष्टः]** ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है।

टीका :- शुद्ध उपयोगकी भावनाके प्रभावसे समस्त घातीकर्मोंके नष्ट होनेसे जिसने शुद्ध अनंतशक्तिवान चैतन्य स्वभावको प्राप्त किया है, ऐसा यह (पूर्वोक्त) आत्मा, (१) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञायक स्वभावके कारण स्वतंत्र होनेसे जिसने **कर्तृत्वके** अधिकारको ग्रहण किया है ऐसा, (२) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूपसे परिणमित होनेके स्वभावके कारण स्वयं ही प्राप्य होनेसे (स्वयं ही प्राप्त होता होनेसे) **कर्मत्वका** अनुभव करता हुआ, (३) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूपसे परिणमित होनेके स्वभावसे स्वयं ही साधकतम (उत्कृष्ट साधन) होनेसे **करणताको** धारण करता हुआ, (४) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूपसे परिणमित होनेके

से निरपेक्ष...' अब भाषा देखिये ! कर्म के कारकों की अपेक्षा से रहित... आहाहा ! बहुत अच्छी बात है। (गाथा में) 'स्वयंभू' है न ? अन्य कारक के कारण से (अर्थात्) किसी कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान हुआ, ज्ञानावरणीय का क्षय होने से केवलज्ञान हुआ ऐसी अपेक्षा जहाँ नहीं, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! वह तो स्वयमेव - स्वयं के षट्कारक से - उत्पन्न हुआ केवलज्ञान है। आहाहा ! वह पंचास्तिकाय की ६२वीं गाथा के साथ अनुसंधान हो गया। विकार के परिणाम (स्वयं के) षट्कारक के परिणाम से - स्वयं से होते हैं। उन्हें अन्य कारकों की (अपेक्षा नहीं)। विकार के कारकों को भी अन्य कारक की अपेक्षा नहीं। आहाहा ! जिस काल में जो पर्याय स्वयं से - (स्वयं के) षट्कारक से उत्पन्न हुई, उसे अन्य की अपेक्षा क्या ? तो विकार होता है (उसमें) भी कर्ता विकार है, कार्य विकार है, कारण-साधन विकार है और अपादान-संप्रदान, आधार (भी विकार है)। विकार की, मिथ्यात्व की और राग-द्वेष की पर्याय भी (ऐसी ही हैं) तो फिर आहाहा !

स्वभावके कारण स्वयं ही कर्म द्वारा समाश्रित होनेसे (अर्थात् कर्म स्वयं को ही देनेमें आता होनेसे) **सम्प्रदानताको** धारण करता हुआ, (५) शुद्ध अनन्तशक्तिमय ज्ञानरूपसे परिणमित होनेके समय पूर्वमें प्रवर्तमान विकलज्ञानस्वभावका नाश होने पर भी सहज ज्ञानस्वभावसे स्वयं ही ध्रुवताका अवलम्बन करनेसे **अपादानताको** धारण करता हुआ, और (६) शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूपसे परिणमित होनेके स्वभावका स्वयं ही आधार होनेसे **अधिकरणता को** आत्मसात् करता हुआ - (इसप्रकार) स्वयमेव छह कारकरूप होनेसे, अथवा उत्पत्ति-अपेक्षा से द्रव्य-भावभेदसे भिन्न घातीकर्मोंको दूर करके स्वयमेव आविर्भूत होनेसे, `स्वयंभू' कहलाता है।

यहाँ यह कहा गया है कि - निश्चयसे परके साथ आत्माका कारकताका सम्बन्ध नहीं है, कि जिससे शुद्धात्मस्वभावकी प्राप्तिके लिये सामग्री (बाह्य साधन) ढूँढनेकी व्यग्रतासे जीव (व्यर्थ ही) परतंत्र होते हैं।

भावार्थ :- कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण नामक छह कारक हैं। जो स्वतंत्रतया-स्वाधीनतासे करता है वह कर्ता है; कर्ता जिसे प्राप्त करता है वह कर्म है; साधकतम अर्थात् उत्कृष्ट साधनको करण कहते हैं; कर्म जिसे दिया जाता है अथवा जिसके लिये किया जाता है वह सम्प्रदान है; जिसमेंसे कर्म किया जाता है, वह ध्रुववस्तु अपादान है, और जिसमें अर्थात् जिसके आधारसे कर्म किया जाता है वह अधिकरण है। यह छह कारक व्यवहार और निश्चयके भेदसे दो प्रकारके हैं। जहाँ परके निमित्तसे कार्यकी सिद्धि कहलाती है वहाँ व्यवहार कारक हैं, और जहाँ अपने ही उपादान कारणसे कार्यकी सिद्धि कही जाती है वहाँ निश्चय कारक हैं।

व्यवहार कारकोंका दृष्टान्त इस प्रकार है-कुम्हार कर्ता है; घड़ा कर्म है; दंड, चक्र, चीवर इत्यादि करण हैं; कुम्हार जल भरनेवालेके लिए घड़ा बनाता है, इसलिए जल भरनेवाला सम्प्रदान है; टोकरीमेंसे मिट्टी लेकर घड़ा बनाता है, इसलिए टोकरी अपादान है, और पृथ्वीके आधार पर घड़ा बनाता है, इसलिए पृथ्वी अधिकरण है। यहाँ सभी कारक भिन्न-भिन्न हैं। अन्य कर्ता है; अन्य कर्म है; अन्य करण है; अन्य सम्प्रदान; अन्य अपादान और अन्य अधिकरण है। परमार्थतः कोई द्रव्य किसीका कर्ता-हर्ता नहीं हो सकता, इसलिये यह छहों व्यवहार कारक असत्य हैं। वे मात्र उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे कहे जाते हैं। निश्चयेसे किसी द्रव्यका अन्य द्रव्यके साथ कारणताका सम्बन्ध है ही नहीं।

जो निर्मल केवलज्ञान होता है उस केवलज्ञान की एक समय की पर्याय भी स्वयं से - (स्वयं के) षट्कारक से उत्पन्न होती है। आहाहा ! उस केवलज्ञान का कर्ता भी केवलज्ञान है, केवलज्ञान का कार्य भी केवलज्ञान है, केवलज्ञान का साधन भी केवलज्ञान है। आहाहा !

निश्चय कारकोंका दृष्टान्त इसप्रकार हैः- मिट्टी स्वतन्त्रतया घटरूप कार्यको प्राप्त होती है इसलिए मिट्टी कर्ता है और घड़ा कर्म है। अथवा, घड़ा मिट्टीसे अभिन्न है इसलिए मिट्टी स्वयं ही कर्म है; अपने परिणमन स्वभाव से मिट्टीने घड़ा बनाया इसलिए मिट्टी स्वयं ही करण है; मिट्टीने अपनेमेंसे पिंडरूप अवस्था नष्ट करके घटरूप कर्म किया और स्वयं ध्रुव बनी रही इसलिए स्वयं ही अपादान है; मिट्टीने अपने ही आधारसे घड़ा बनाया इसलिए स्वयं ही अधिकरण है। इसप्रकार निश्चयसे छहों कारक एक ही द्रव्यमें हैं। परमार्थतः एक द्रव्य दूसरे की सहायता नहीं कर सकता और द्रव्य स्वयं ही, अपनेको, अपनेसे, अपने लिए, अपनेमेंसे, अपनेमें करता है इसलिए निश्चय छह कारक ही परम सत्य हैं।

उपरोक्त प्रकारसे द्रव्य स्वयं ही अपनी अनन्त शक्तिरूप सम्पदासे परिपूर्ण है इसलिए स्वयं ही छह कारकरूप होकर अपना कार्य करनेके लिए समर्थ है, उसे बाह्य सामग्री कोई सहायता नहीं कर सकती। इसलिए केवलज्ञान प्राप्तिके इच्छुक आत्माको बाह्य सामग्रीकी अपेक्षा रखकर परतंत्र होना निरर्थक है। शुद्धपयोगमें लीन आत्मा स्वयं ही छह कारकरूप होकर केवलज्ञान प्राप्त करता है वह आत्मा स्वयं अनन्त शक्तिवाले ज्ञायकस्वभावसे स्वतन्त्र है इसलिए स्वयं ही कर्ता है; स्वयं अनन्त शक्तिवाले केवलज्ञानको प्राप्त करनेसे केवलज्ञान कर्म है, अथवा केवलज्ञानसे स्वयं अभिन्न होनेसे आत्मा स्वयं ही कर्म है; अपने अनन्त शक्तिवाले परिणमन स्वभावरूप उत्कृष्ट साधनसे केवलज्ञानको प्रगट करता है, इसलिए आत्मा स्वयं ही करण है; अपनेको ही केवलज्ञान देता है, इसलिये आत्मा स्वयं ही सम्प्रदान है; अपनेमेंसे मति श्रुतादि अपूर्ण ज्ञान दूर करके केवलज्ञान प्रगट करता है इसलिये और स्वयं सहज ज्ञान स्वभावके द्वारा ध्रुव रहता है इसलिये स्वयं ही अपादान है, अपनेमें ही अर्थात् अपने ही आधारसे केवलज्ञान प्रगट करता है, इसलिये स्वयं ही अधिकरण है। इसप्रकार स्वयं छह कारकरूप होता है, इसलिये वह `स्वयंभू' कहलाता है। अथवा, अनादिकालसे अति दृढ़ बँधे हुए (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतरायरूप) द्रव्य तथा भाव घातीकर्मोंको नष्ट करके स्वयमेव आविर्भूत हुआ अर्थात् किसीकी सहायताके बिना अपने आप ही स्वयं प्रगट हुआ इसलिये `स्वयंभू' कहलाता है।।१६।।

केवलज्ञान होकर केवलज्ञान में रहा है, केवलज्ञानमें से केवलज्ञान हुआ है और केवलज्ञान के आधार से केवलज्ञान हुआ है। आहाहा ! अरे ! ऐसी स्वतंत्र वस्तु (है), प्रभु ! आहाहा ! केवलज्ञान की पर्याय स्वयं के षट्कारक के परिणमन से - स्वयं से होती है।

बारहवें गुणस्थान में तो वीतरागता है। केवलज्ञान कहाँ है ? यह तो तेरहवें (गुणस्थान की बात है)। (बारहवें गुणस्थान में) वीतरागता थी इसलिये केवलज्ञान हुआ है, ऐसा भी

नहीं। वह तो व्यवहार से बात कही है कि वीतरागता हुई (इसलिये) बाद में यह केवलज्ञान हुआ, ऐसे (बारहवें गुणस्थान में) जो वीतरागता हुई है वह भी षट्कारक के परिणमन से हुई है। आहाहा ! बारहवें (गुणस्थान में) जो वीतरागता पर्याय में हुई (है वह), उसी समय पर होनेवाली (थी)। वह अपने कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण से हुई है। और (बाद में) केवलज्ञान हुआ है वह (भी) यह पूर्व की वीतरागपर्याय थी इसलिये हुई है, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! वह तो उसका (पूर्व पर्याय का) ज्ञान कराने के लिये निमित्त से (व्यवहार से) कथन है (कि वीतरागता थी इसलिये केवलज्ञान हुआ)। (इसी प्रकार) मोक्षमार्ग से केवलज्ञान हुआ, (ऐसा कहना) वह (भी) निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कथन है। वह पूर्व का मोक्षमार्ग निमित्त है। (क्योंकि) स्वयं का उपादान तो, उस काल में स्वतंत्र परिणमता है। आहाहा ! अब ऐसा विषय स्मरण में कैसे रखना? बापू ! जैसा मार्ग (है)। (ऐसा) जीव को निश्चय करना पड़ेगा। आहाहा ! वस्तु जिस प्रकार है उसी प्रकार जीव को नि:संदेह निश्चय करना पड़ेगा। प्रभु ! आहाहा ! अरे ! ऐसा अवसर कब मिलेगा, भाई ?

`शुद्धोपयोग से होनेवाली शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति...'** आहाहा ! (शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति) शुद्धोपयोग से है। तथापि यहाँ कहते हैं कि शुद्धोपयोग से (उसकी प्राप्ति हुई नहीं)। ऐसी शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति **`अन्य कारकों से निरपेक्ष (स्वतंत्र) होने से...' आहाहा ! प्रत्येक पर्याय स्वतंत्र है। आहाहा ! इसमें - प्रवचनसारजी में - १०२ गाथा में कहा है न ? कि जो पर्याय उत्पन्न होती है वह उसका निजक्षण है - उसका जन्मक्षण है - उत्पत्ति क्षण है। (अर्थात्) उत्पत्ति है वह उसकी सृष्टि है। ९९ गाथा में तो (अपने अपने अवसरों में प्रकाशमान (प्रगटते हुये) समस्त परिणामों) ऐसा कहा है। किन्तु इसमें - १०२ गाथा में - तो **`निजक्षण'** (है) ऐसी स्पष्ट (बात है)। और १०१ गाथा में तो ऐसा भी लिया है कि (जो) केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, उसके पूर्व में वीतरागदशा थी उसकी भी अपेक्षा नहीं। केवलज्ञान हुआ उसे द्रव्य-गुण की (भी) अपेक्षा नहीं। आहाहा ! केवलज्ञान हुआ उसे ज्ञानावरणीय (कर्म के) अभाव की (भी) अपेक्षा नहीं। ऐसी बातें हैं। यह व्यापार अन्य प्रकार का है।

श्रोता :- यह तो भगवान होने का व्यापार है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। संसार में पाप के व्यापार तो नाश होनेवाले हैं। जहाँ तहाँ कर्ता-कर्ता... मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... (ऐसा मानता है)। अरे प्रभु! तुम ज्ञानस्वरूप हो न ! (तो) वह क्या करते हो ? (वह) जानने का कार्य करे या (कुछ) करने का कार्य करे ? जानने का (भी क्या) कार्य नहीं ? आहाहा ! और वह भी - जानने का कार्य भी - जो पर्याय है वह भी - निमित्त का (या) ज्ञेय का ज्ञान करता है, ऐसा भी

नहीं। (क्योंकि) वह ज्ञान की परिणति स्वत: छ: कारकरूप से परिणमित हुई है। आहाहा ! (वैसे) पूर्व में बारहवें (गुणस्थान में) वीतराग हुआ, इसलिये तेरहवें (गुणस्थान में) केवलज्ञान हुआ, वह तो एक निमित्त का ज्ञान कराने के लिये व्यवहार की बात है। आहाहा ! ऐसा उपदेश ?

बेचारे लोगों को (एक तो) फुरसत नहीं। (और जब) दो घड़ी घंटाभर सुनने के लिये जाता है तो तब (उसे) मिलता है अन्य। (इसलिये) ऐसी बात सुनने पर उसे ऐसा लगता है कि यह तो किस जाति का है ? (क्या) यह नया धर्म है ? आहाहा! वह तो मोक्षमार्ग प्रकाशक में कहा है कि मार्ग में जो परंपरा चलती है वह (कोई नयी परंपरा नहीं)। इस समय लोग कहते हैं कि, `राग से (धर्म) होता है, ऐसी जो परंपरा चलती है उस परंपरा को तोड़ना नहीं।' जबकि `मोक्षमार्गप्रकाशक' में कहते हैं कि अज्ञानी ने अनादि से जो परंपरा मानी है उसे तोड़कर जैनशास्त्र के अनुशार जो (बात करते हैं) वह नयी नहीं। है न (उसमें) ? सातवें अध्याय में है। आहाहा ! उन्होंने (पं. टोडरमलजी ने) कितनी बातें कही हैं !

(लोग ऐसा कहते हैं कि) यह तो नया है ! कोई (ऐसा) कहता नहीं और आपने नया निकाला ? अरे भाई ! यह वस्तु नयी नहीं। (यह) नवीन मार्ग नहीं। किन्तु जो पुरानी परंपरा अज्ञानी ने मानी थी, उससे (यह) नया (अलग) लगता है (किन्तु) इस कारण से (यह) कोई नया नहीं। यह तो जैनशास्त्र के अनुसार जो वस्तु है वह यही है। समझ में आया ? (अज्ञानी) कहता है कि हमारी परंपरा चलती है उसे तोड़कर यह आपने नया क्या निकाला ? किन्तु गलत परंपरा जो चलती हो उसे (तोड़कर) शास्त्र अनुसार कहना वह कोई नया नहीं। वह बात `मोक्षमार्गप्रकाशक' में डाली है कि, पुरानी गलत परंपरा (जो) होती है उसे तोड़कर शास्त्र अनुसार कहे वह (कोई) नवीन नहीं - ऐसे शब्द हैं। बहुत रखा है। उसमें कहते हैं कि -

प्रश्न :- परंपरा छोड़कर नवीन मार्ग में प्रवर्तना योग्य नहीं।

आहाहा ! अज्ञानी कहता है कि राग से धर्म होता है, व्यवहार करते करते निश्चय होता है ऐसी जो हमारी परंपरा अभी तक चली आती है (उसे छोड़कर नवीन मार्ग में प्रवर्तन करना योग्य नहीं)। है अंदर ?

उत्तर :- यदि अपनी बुद्धि से नवीन मार्ग पकड़े तो योग्य नहीं है। जो परंपरा अनादिनिधन जैनधर्म का स्वरूप शास्त्रों में लिखा है, उसकी प्रवृत्ति मिटाकर पापी पुरुषों ने बीच में अन्यथा प्रवृत्ति चलायी हो, उसे परंपरा मार्ग कैसे कहा जा सकता है? तथा उसे छोड़कर पुरातन जैनशास्त्रों में जैसा धर्म लिखा था, वैसे प्रवर्तन करे तो उसे नवीन

मार्ग कैसे कहा जा सकता है ?

आहाहा ! `मोक्षमार्गप्रकाशक' में बहुत डाला है ! आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) उस शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति (यानी कि) केवलज्ञान की प्राप्ति **`अन्य कारकों से निरपेक्ष (स्वतंत्र) होने से अत्यंत आत्माधीन है।' `अत्यंत आत्माधीन है (लेशमात्र पराधीन नहीं है)।'** आहाहा ! (अर्थात्) ज़रा भी पराधीन नहीं। **`यह प्रगट करते हैं।'** विशेष कहेंगे।

a a a

यदि तिर्यंचको भी सात तत्त्वोंका भान न हो तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता: क्योंकि यदि वह जीवकी जाति ही न जाने तो स्व-परको न पहचान पाए व फलस्वरूप परमें रागादिरूप कार्य किए बिना न रहे। लेकिन पशुको भी जीव-अजीवका श्रद्धान हो जाया करता है जिससे वह परमें रागादिके कार्य नहीं करता। कोई-कोई मेढ़क, चिडिया भी आत्मज्ञान पा लेते हैं - इन्हें जीव-तत्वका यथार्थ भान होता है। मेरा तो चैतन्यस्वभाव है; वैसा परमें नहीं है अतः पर सो मैं नहीं और पर मुझमें नहीं है - ऐसे परसे भिन्न `निज स्वरूपरको' (सम्यग्दृष्टि) पशु पूर्णतः जानता है, और उसे परमें एकत्वबुद्धि होकर रागादि नहीं होते।

(परमागमसार - ९६९)

दि. १७-१-१९७९ - प्रवचन नं. - ११

प्रवचनसार गाथा-१६ की टीका। अत्यंत स्वतंत्रता के ढिंढोरे की यह गाथा है।

टीका :- `**शुद्धउपयोग की भावना के प्रभाव से...**' शुद्धोपयोग अर्थात् निश्चय रत्नत्रय ऐसा जो मोक्ष के मार्ग का स्वरूप उसे यहाँ शुद्धोपयोग कहा है। उस शुद्धोपयोग की भावना के (यानी कि) उसकी एकाग्रता के प्रभाव से `**समस्त घातीकर्मों के नष्ट होने से जिसने शुद्ध अनंतशक्तिवान चैतन्य स्वभाव...**' आहाहा ! (प्रभाव से कर्म नष्ट हुये हैं ऐसा जो कहा है) वह निमित्त से कथन है। शुद्ध अनंत शक्तिवान चैतन्यस्वभाव पर्याय में `प्राप्त किया है।'

आहाहा ! पहले (तो) सामान्य बात की (कि) `**शुद्ध उपयोग की भावना के...**' भावना शब्द से (यहाँ) कल्पना (हैं), ऐसा नहीं। वैसा चिंतवन (भी) नहीं। (किन्तु) ज्ञायकस्वरूप प्रभु भगवान(आत्मा) के प्रति का जो निर्विकल्प उपयोग ऐसे शुद्धउपयोग के प्रभाव से `**समस्त घातीकर्मों**' (अर्थात्) चारों घातिकर्म `**नष्ट होने से...**' यह तो उसे समझाना है न ? इसलिये (ऐसा कहा है)। बाक़ी तो वह कर्म की पर्याय (है) - (जो) कर्म है - वह भी स्वयं के (कारण नष्ट होता है)। उस काल में पर्याय का व्यय होने का उसका काल है। कर्मरूप (जो) पर्याय है उसका अकर्मरूप होने का समय है। किन्तु उसमें भावना निमित्त है अत: यह बात कही है। किन्तु निमित्त उसे नष्ट करता है ऐसा कहना व्यवहार है। आहाहा ! कर्म की पर्यायरूप जो ज्ञानावरणादि हैं वे स्वयं ही जब अकर्मरूप परिणमित होते हैं (तब) उस समय की पर्याय का वह निजक्षण है। किन्तु उसे (भावना को) निमित्तरूप मानकर यहाँ (कहा है कि) `**शुद्ध उपयोग की भावना के प्रभाव से समस्त घातीकर्मों के नष्ट होने से...**' (यानी कि) भावघाती और द्रव्यघाती (नष्ट हुए हैं, ऐसा) दोनों आगे लेंगे।

(कहते हैं कि) `**शुद्ध अनंतशक्तिवान चैतन्य स्वभाव...**' जिसने वर्तमान पर्याय में शुद्ध अनंत स्वभाव की शक्ति के सामर्थ्यवान चैतन्यस्वभाव `**प्राप्त किया है, ऐसा यह** (**पूर्वोक्त**) **आत्मा,...**' बस इतनी बात। अब उसके षट्कारक उतारते हैं। आहाहा ! यह तो (चैतन्यस्वभाव) प्राप्त किया है इतनी बात कही। समझ में आया ?

(अब कहते हैं कि) `(**१**) **शुद्ध अनंतशक्तियुक्त ज्ञायक स्वभाव के कारण...**' शुद्ध अनंत शक्तियुक्त ज्ञायकस्वभाव है उसके कारण **`स्वतंत्र होने से...**' वह ज्ञायकस्वभाव स्वतंत्र होने से `जिसने कर्तृत्व के अधिकार को ग्रहण किया है...' आहाहा ! शुद्ध केवलज्ञान की पर्याय की प्राप्ति उसने - ज्ञायकभाव से - स्वतंत्ररूप से प्राप्त किया है इसलिये वह कर्ता है। (यानी कि) उस केवलज्ञान की पर्याय का ज्ञायकस्वभाव कर्ता है। निश्चय से तो केवलज्ञान की पर्याय पर्याय की कर्ता है। किन्तु यहाँ अभेद को समझाना है न ? (अत: ऐसा कहा है)।

(पंचास्तिकाय की) ६२वीं गाथा की - चर्चा १३की साल में बहुत हुई थी। (तब) कहा था कि भाई ! विकार जिस आत्मा में होता है वह (स्वयं के) षट्कारक का परिणमन होकर (होता है)। उसे परकारक की - निमित्त की (या) कर्म की भी अपेक्षा नहीं। (वहाँ जो कारक लिया है) उसी शैली में यहाँ शुद्धता को प्राप्त करने की शैली में लिया है। आहाहा ! अभिन्न लिया है। भाई ! (वैसे) यहाँ (भी) अभिन्न (लिया है)। श्री जयसेनाचार्य की (संस्कृत) टीका में है कि **`अभिन्न कारक'।**

आत्मा की पर्याय में जो राग, द्वेष और मिथ्यात्व होता है वह - विकारी पर्याय - स्वयं विकार का कर्ता (है), विकारी पर्याय उसका कार्य (है), विकारी पर्याय पर्याय का साधन-करण - (है), विकारी पर्याय स्वयं के लिये (है) यानी कि संप्रदान (है) विकारी - पर्यायमें से - विकारी पर्याय हुई (है) अत: वह अपादान (है) और विकारी पर्याय के आधार से (वह) पर्याय हुई है। ऐसे पर्याय के षट्कारक स्वतंत्र - पर की अपेक्षा रहित हैं। यद्यपि ६२वीं गाथा में पहले कर्म के षट्कारक लिये हैं। बाद में जीव के लिये हैं। आहाहा ! (तथापि) आत्मा की पर्याय में - जो विकार होता है (वह स्वतंत्र - पर की अपेक्षा रहित होता है) और पाठ में (टीका में) अभिन्नकारक लिये हैं। ऐसा जहाँ कहा वहाँ तो (सामने प्रश्न रखा कि), `वह तो अभिन्न कारक की बात है।' किन्तु (हमने कहा) अभिन्न का अर्थ क्या ? अन्य की अपेक्षा से रहित स्वयं से होता है उसका नाम अभिन्न (कारक है)। उस प्रकार यदि कर्म के - निमित्त के भाव (अपेक्षा) रहित विकार होगा जब तो विकार स्वभाव हो जायेगा ?

वह (विकार) स्वभाव ही है। - पर्याय का वह स्वभाव है। विकार जिस समय पर होता है उस समय उसके जन्मक्षण की उत्पत्ति का काल ही है। ऐसी बात (है)। आहाहा ! अत: वहाँ अभिन्न कारक कहा है (और) यहाँ भी अभिन्न (कारक) कहा है। श्री जयसेनाचार्य की संस्कृत टीका में (कहा) है कि **`अभिन्नकारकचिदानंदैक चैतन्यस्वभावेन स्वतन्त्रवात् कर्ता भवति।**' आहाहा ! क्या सिद्धांत ? आहाहा ! विकारी पर्याय जो होती है (वह स्वतंत्र होती

है)। किन्तु कई लोगों को ऐसा बैठ गया है कि कर्म के कारण विकार होता (है), कर्म के कारण विकार होता (है)। आहाहा! (किन्तु) यह बात तो ६४ बरस पहले १९७१ की साल में ज़ाहिर की थी, कि विकार स्वयं से होता है। उसे कर्म की कोई ज़रूरत - अपेक्षा नहीं। (यह सुनकर) कई (लोग) भड़क गये थे कि, हमारे गुरु ने कभी भी ऐसा कहा नहीं और ऐसा नवीन कहाँ से निकाला ? अब ऐसा जब निकालकर रखा है तो वह फैलकर कहाँ पहुँचेगा ? आहाहा ! बापू ! मार्ग तो यह है भाई !

राग को अपना मानना, शरीर की क्रिया (मैं) कर सकता हूँ, दूसरों (मैं) मार सकता हूँ, दूसरों की (मैं) दया पाल सकता हूँ ऐसा (मिथ्यात्वरूप जो) मिथ्यात्वभाव है वह भी जीव की पर्याय में, अपनी पर्याय से होता है। वह (मिथ्यात्व) आत्मा से होता है (ऐसा जो कहा है वह तो पर्याय में) संबंध है इतना बतलाने के लिये व्यवहार से बात की है। आहाहा ! ऐसा काम है। भाई ! मार्ग यह है बापू! छ: द्रव्य जो ज्ञेय हैं - परमेश्वर ने भगवान ने केवलज्ञान में जो छ: द्रव्य देखे् (हैं) - उन छ: द्रव्य की जो पर्याय उत्पन्न होती (हैं) वह उनका उस समय का जन्मक्षण है। और वह स्वयं के षट्कारक से उत्पन्न होती है। (भले ही) फिर वह निर्मल हो या मलिन (हो)। आहाहा ! वहाँ (पंचास्तिकाय में) तो मलिनता की बात (है)। अत: लोगों को (ऐसा लगा कि) मलिन भाव क्या कर्म की अपेक्षा से रहित (होता है) ? किन्तु देखिये! पाठ में क्या है ? देखिये ! (विकार) परकारक के कर्तापना की अपेक्षा से रहित है। पर - कर्म (या) निमित्त-कर्म (या) निमित्त कारण (है वह) उसमें है ही नहीं। आहाहा ! अब ऐसी बात है।

यहाँ तो कहते हैं (कि) तीनकाल - तीनलोक में जिस समय पर जो पर्याय जिस ज्ञेय की (होती है वह स्वयं से होती है)। भगवान ने छ: (द्रव्य) देखे हैं। अनंत आत्मा, अनंत परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय और आकाश (इस प्रकार) भगवान परमात्मा जिनेश्वर ने छ: द्रव्य देखे हैं। उन छ: द्रव्य की पर्याय, जिस समय पर उसका काल है उस काल पर और स्वयं के षट्कारक से (होती है)। आहाहा ! ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। ऐसा ही भगवान ने देखकर - जानकर कहा है। (किन्तु) इस समय लोगों को कठिन (लगता है) कि, विकार कर्म के बिना होता है।

प्रश्न :- कर्म के आश्रय के बिना विकार नहीं होता।

समाधान :- वह कर्म के आश्रय से भी नहीं होता। (क्योंकि) आश्रय स्वयं की पर्याय का (है)। (अर्थात्) आधार (भी) वहाँ स्वयं का है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है भाई ! आहाहा ! वह विकृत अवस्था (जो) होती है वह भी स्वयं की (पर्याय के कारण से होती है)। जो विकार है उसका कर्ता विकार (है)। अभिन्न से कर्म (कार्य) कहना (वह भी वही है)।

वह इस में (जयसेनाचार्य की टीका में) भी है कि घड़ा मिट्टी से अभिन्न होने से मिट्टी स्वयं ही कर्म है। है न भाई ? अंदर भावार्थ में भी `अभिन्न' शब्द है। आहाहा ! आयेगा, धीरे धीरे वह आयेगा। सूक्ष्म बात है। पूरा स्वतंत्र स्वरूप भगवान ने (जैसा) देखा वैसा उन्होंने सिद्ध कर के कहा है। आहाहा !

कहते हैं कि विकार की पर्याय भी स्वतंत्ररूप से उसी काल में - आगे पीछे नहीं (किन्तु) उसी समय पर स्वयं से होती (है)। आहाहा ! और वह विकार, पूर्व की पर्याय के कारण भी नहीं, निमित्त के कारण भी विकार नहीं और वास्तव में तो वह विकारी पर्याय द्रव्य-गुण के कारण भी नहीं। आहाहा ! ऐसी बात ! ऐसी स्वतंत्रता (जिसे) स्वीकार होती है उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है।

प्रश्न :- कर्म के प्रति लक्ष करने से विकार होता है।

समाधान :- लक्ष-बक्ष कुछ नहीं। वह पर्याय स्वतंत्र है।

प्रश्न :- कर्म के प्रति एकता कीया है।

समाधान :- एकता बिलकुल की नहीं। एकता की है (ऐसा कहना) वह निमित्त का कथन है। पर्याय स्वतंत्ररूप से इस प्रकार हुई है। भाषा (में) ऐसे कहा जाता है कि निमित्त के प्रति एकता (की है)। तथापि पर्याय का स्वयं का स्वतंत्ररूप से एकत्व हुआ (है, और) पर के प्रति लक्ष किया है। पर का आश्रय हुआ इसलिये यह विकार हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा ! कठिन कार्य। आहाहा ! घी उष्ण होता है वह उष्णता की पर्याय स्वयं उस काल पर होनेवाली (थी तो हुई है) और उसे भी अग्नि के निमित्त की अपेक्षा नहीं। आहाहा ! घी की वह उष्णता की पर्याय षट्कारकरूप से स्वयं से हुई है। आहाहा ! वही बात यहाँ पर (है)। मिट्टी का दृष्टांत देंगे। आहाहा ! सूक्ष्म बात है भाई ! यह तो मूल चीज है। बाद में उसका जो द्रव्य है उसकी दृष्टि करना। पर्याय उस काल पर वह होनेवाली (थी) वही (पर्याय) स्वयं के (षट्कारक से) स्वतंत्र होती है। (ऐसा जानकर) बाद में उसकी दृष्टि (को) द्रव्य पर ले जाना। द्रव्य पर दृष्टि ले जाने का करण-साधन भी पर्याय है। आहाहा ! बहुत बात (सूक्ष्म) है।

एक कलश (में) आता है न ! `परसंग एव।' परसंग स्वयं ने किया है। परसंग होने के कारण उसे यह (विकार) हुआ है (ऐसा नहीं)। (किन्तु) संग स्वयं ने कीया है। राग ने निमित्त का संग स्वयं किया (तो) वह कर्ता स्वयं है। आहाहा ! `पर एव' - उसके द्वारा (पर के द्वारा विकार) हुआ नहीं। (किन्तु) `परसंग एव' - (परसंग से विकार हुआ है)। (उसके) पर के कारण (विकार) हुआ, ऐसा नहीं। एक शब्द में बड़ा फर्क (है) भाई ! आहाहा ! यह रोटी की पर्याय (है) - वह आटे की जो रोटी की पर्याय है - वह पर्याय

वास्तव में तो, रोटी से पर्याय हुई है, आटे से नहीं, बेलन से नहीं, अग्नि से नहीं, तवा से नहीं, स्त्री के हाथ से नहीं, स्त्री को इच्छा हुई थी इसलिये उससे हुई (है) वैसा नहीं। आहाहा ! ऐसा स्वरूप है ! ऐसी स्वतंत्रता का ढिंढोरा भगवान ने पीटा है। किसी पर्याय को किसी पर्याय का आधार (नहीं)। आहाहा !

मुमुक्षु :- कर्तापना कहा तब भी स्वतंत्र है, ऐसा आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह स्वतंत्र कर्ता है। आहाहा ! कर्ता का अर्थ स्वतंत्ररूप से करे वह कर्ता (है)। वही आता है। देखिये ! वह आया -

**`शुद्ध अनंतशक्तियुक्त ज्ञायक स्वभाव के कारण स्वतंत्र होने से जिसने कर्तृत्वके अधिकार को ग्रहण किया है...'** केवलज्ञान की पर्याय पूर्व की पर्याय का नाश करके (हुई है ऐसा नहीं)। (यानी कि) वह (पूर्व पर्याय का) नाश हुआ ऐसा यहाँ नहीं। (किन्तु) अपादान में तो `उसका (पूर्व पर्याय का) नाश करके' ऐसा आयेगा। भाई ! स्वयं ने पूर्व की पर्याय का नाश करके ध्रुव का अवलंबन लिया है (ऐसा कहेंगे)। आहाहा ! सूक्ष्म बात बहुत बापू ! मार्ग - तत्त्वदृष्टि ऐसी सूक्ष्म है और उस दृष्टि को यथार्थरूप से प्रगट किये बिना सब फोगट हैं। सभी क्रिया करता है - व्रत और तप और भक्ति और पूजा - (तथापि) वे सब संसार में भटकने का रास्ता हैं। आहाहा !

(कहते हैं कि) **`शुद्ध अनंतशक्तियुक्त ज्ञायक स्वभाव के कारण...'** उसकी स्वयं की अनंत शक्ति इतनी है कि जिस कारण स्वतंत्र होने से जिसने केवलज्ञान की पर्याय के कर्तापने का अधिकार ग्रहण किया है। आहाहा ! एक (बात)। ऐसा आत्म है - वैसा ऊपर आया था न ? पहले आत्मा लिया था न ? (कि) **`ऐसा यह आत्मा...'** आहाहा !

(अब) दूसरा बोल **`(२) शुद्ध अनंतशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के...'** (अर्थात्) केवलज्ञान की पर्यायरुप होने के - परिणमित होने के **`स्वभाव के कारण स्वयं ही प्राप्य होने से (स्वयं ही प्राप्त होता होने से) कर्मत्व का अनुभव करता हुआ,...'** (यानी कि) स्वयं ही कार्यत्व को - व्याप्यत्व का अनुभव करता है। आहाहा ! सारा दिन बनिये कहते हैं कि यह किया और यह किया। इसमें उसे फुरसत नहीं मिलती। यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु ! तू सुन तो सही। एक अक्षर ऐसे लिखा जाता है न अक्षर ! अक्षर में, अक्षर की पर्याय जो उत्पन्न हुई है वह कलम के कारण (हुई) नहीं, वह पर्याय उसके द्रव्य-गुण के कारण (हुई) नहीं। आहाहा ! उस अक्षर की पर्याय के परमाणु में द्रव्य और गुण ध्रुवरूप से रहकर उस पर्याय का जो परिणमन अक्षर(रूप से) हुआ उस पर्याय का कर्ता वह पर्याय है। कलम नहीं, स्त्री नहीं (या) लिखनेवाला होशियार मनुष्य (भी) उस अक्षर का कर्ता नहीं। आहाहा ! वह अक्षर जो होता है (वह स्वयं से होता है किन्तु)

प्रभु ! तुझे ख़बर नहीं। अक्षर अनंत परमाणु का पिंड है। उस अक्षर की पर्याय में - एक एक परमाणु (भिन्न रहकर परिणमित होता है)। अक्षर तो स्कंध है। उसमें वह परमाणु भिन्न रहकर (परिणमित होता है)। अनंत परमाणु के स्कंध की - स्वयं की जो अक्षर की (पर्याय) हुई उसमें रहकर स्वयं की पर्याय का कर्ता पर्याय है। आहाहा ! प्रत्येक परमाणु की पर्याय, स्वयं से - पर्याय से हुई है। आहाहा ! वास्तव में तो उसका निजक्षण वह है, उस समय अक्षर के समूह में रहा परमाणु, उसे उस अक्षर की पर्याय के पिंड में रहकर, आहाहा ! स्वयं ही स्वयं की पर्यायरूप अक्षर के अंश में परिणमित हुआ है। आहाहा! यहाँ पर तो सभी कार्य - धंधे के और व्यापार को मैं करता हूँ... मैं करता हूँ... (ऐसा मानता है)। (किन्तु वह) भ्रमणा - बड़ी भ्रमणा है।

श्रोता :- होशियार मनुष्य हो तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- होशियार ? होशियारी की पर्याय का कर्ता (तो) होशियारी की पर्याय में रहा। होशियारी बाहर में कहाँ गई (है) ? उसकी पर्याय का जो ज्ञान का क्षयोपशम है उस पर्याय का कर्ता षट्कारकरूप से वह पर्याय स्वयं से परिणमित हुई है। वह होशियारी लिखने में या कार्य करने में जाती है ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु :- नौकर रखते वक्त सावधानी रखता है...

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन नौकर को रखता है ? वे तो बाहर की सब व्यवहार की बातें हैं। आहाहा ! यहाँ पर तो कहते हैं कि जब आत्मा में केवलज्ञान होता है तब उस ज्ञान की पर्याय का कर्ता वह आत्मा है उस (केवलज्ञान की) पर्याय को आत्मा मानकर आत्मा (कर्ता) है ऐसा कहा और वह स्वतंत्ररूप से हुई है। ज्ञानावरणी (कर्म का) क्षय हुआ - ऐसी अपेक्षा हुई है - इसलिये केवलज्ञान की पर्याय कर्तारूप से हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा !

`शुद्ध अनंतशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के...' देखा ? आहाहा ! यहाँ नीचे (छद्मस्थता में) भी यह शब्द जो सुनाई देता है वह शब्द कान का स्पर्श करता है ऐसा भी नहीं और वह शब्द सुनाई देने से वहाँ ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं। उस क्षण पर जीव को स्वयं को (उस) शब्द संबंधी ज्ञान स्वयं के षट्कारकरूप से परिणमित होती वह ज्ञान की पर्याय उस काल में वहाँ होती है। उसे शब्द की अपेक्षा नहीं। आहाहा ! उसे ज्ञानावरणी (कर्म के) क्षयोपशम की अपेक्षा नहीं। ऐसी बात है।

आता है न (एक जगह पर) ! कि, कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि, ज्ञान की हीनाधिकता अपने से होती है। ज्ञानावरणी कर्म से नहीं। (एक पुस्तक में) लिखा है न ! कानजीस्वामी

ऐसा कहते हैं कि, महाराज ! ज्ञानावरणी कर्म कुछ नहीं करते। अपनी योग्यता से ज्ञान में कमी-बेसी होती है। (यानी कि) ज्ञान की पर्याय हीन होती है वह भी स्वयं के कर्ता, कर्म से होती है। अधिक होती है वह भी स्वयं से होती है, अपनी योग्यता से होती है। कानजीस्वामी यह कहते हैं। ज्ञानावरणी कर्म कुछ नहीं करता। (अर्थात्) ज्ञान की हीनदशा में भी ज्ञानावरणी (कर्म की) कोई अपेक्षा नहीं और ज्ञान विशेष उत्पन्न होता है उसमें भी ज्ञानावरणी के क्षयोपशम की कोई अपेक्षा नहीं। (अज्ञानी ऐसा मानता है कि) ज्ञानावरणी कुछ करते नहीं, ऐसा नहीं। ज्ञान की हीनदशा को ज्ञानावरणीय का उदय होता है अत: हीनदशा होती है। उसे ज्ञान का क्षयोपशम विशेष होता है तब ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम होता है अत: विशेष होता (है)। वह (बात) यहाँ नहीं। आहाहा !

प्रश्न :- किन्तु न्याय के ग्रंथ में तो दोनों कारण से कार्य की सिद्धि कही है ?

समाधान :- वे दो कारण (हैं ऐसा), निमित्त को सिद्ध (करने के लिये) कहा है। निमित्त का ज्ञान कराया (है)। यहाँ तो, एक समय में उस ज्ञान की पर्याय जो प्रगट हुई उस पर्याय का कर्ता पर्याय (है), कार्य पर्याय (है), स्वयं से (पर्याय) हुई स्वयं (पर्याय को) रखी है वह संप्रदान (है), स्वयंमें से (पर्याय) हुई (वह अपादान), स्वयं के आधार से (पर्याय) हुई (है), आहाहा ! उस पर्याय को - (उस) षट्कारक के परिणमन को - किसी कर्म के निमित्त के अभाव की या (सद्भाव की) अपेक्षा नहीं। ऐसा है बापू !

मुमुक्षु :- समर्थ कारण में गोपालदासजी बरैया ने दोनों कारण लिये हैं - उपादान और निमित्त।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उपादानकारण और निमित्तकारण जो साथ कहे हैं वह तो व्यवहार का - निमित्त का ज्ञान कराया (है)। निमित्त का ज्ञान कराने के लिये ऐसा कहा है। वहाँ मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवें अध्याय में टोडरमलजी ने लिया है, व्यवहार से कहा है (वहाँ) निमित्त का ज्ञान कराया है। आहाहा ! अरेरे! ऐसा वस्तु का जो स्वरूप है (उसे) उस प्रकार माने नहीं और आगे-पीछे माने वह विपरीत दृष्टि है। आहाहा ! (यहाँ कहते हैं कि) **'शुद्ध अनंतशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव के कारण स्वयं ही प्राप्य होने से...'** (यानी कि) उस समय वही पर्याय होनेवाली थी। उस पर्याय को ध्रुव प्राप्त होता है। आहाहा ! केवलज्ञान की पर्याय उसका प्राप्य है। (समयसार में) प्राप्य - विकार्य और निर्वृत्य आया था न ? ७६, ७७, ७८ गाथा में बहुत (अच्छा) अधिकार आया है। उस समय पर उस पर्याय का (जो) प्राप्य है वह आत्मा को प्राप्त होता है। केवलज्ञान की पर्याय उस समय पर वही होनेवाली थी। आहाहा ! और वह भी केवलज्ञान की पर्याय (स्वयं के) षट्कारक से परिणमित होती हुई है। उसे यहाँ प्राप्य कहा न ?

कि `**स्वयं ही प्राप्य होने से** (**स्वयं ही प्राप्त होता होने से**)' कार्य है। कर्तृत्व के स्वभाव के कारण `**स्वयं ही प्राप्य होने से**' स्वयं ही प्राप्य को - `**कर्मत्व का अनुभव करता हुआ,...**' आहाहा! (यानी कि) केवलज्ञान की पर्यायरूपी कार्य का स्वयं अनुभव करता (है)। उसके कार्य के लिये पर के कार्य की कोई आवश्यकता नहीं। आहाहा !

(अज्ञानी) जब दो कारण की बात आती है तो पकड़ता है। वह तो निमित्त का ज्ञान कराके प्रमाण कराया (है) और निश्चय से तो वह प्रमाण पूज्य नहीं - ऐसा श्री देवसेनाचार्य कृत नयचक्र में लिया है। क्योंकि उसमें पर्याय का निषेध और निमित्त का निषेध होता नहीं। अत: वह पूज्य नहीं। निश्चय वह पूज्य है। यहाँ तो पर्याय की स्वतंत्रता बतानी है। किन्तु निश्चय में तो पर्याय का निषेध करके द्रव्यदृष्टि करानी है। आहाहा ! और वह सम्यग्दर्शन की पर्याय भी निश्चय से तो स्वयं के षट्कारक से परिणमित होती उत्पन्न हुई है। आहाहा ! उस काल में वही होनेवाली थी। आहाहा! सूक्ष्म बातें बहुत भाई ! वीतराग मार्ग भी लोगों को सुनने में आया नहीं। जिसने जिसमें जन्म लिया वे सब बाहर के संप्रदाय में पड़े हैं - स्थानकवासी में जन्म लिया तो स्थानकवासी में, देरावासी में जन्म लिया तो देरावासी में, दिगंबर में जन्म लिया तो दिगंबर के संप्रदाय का श्रद्धान (हो गया) (किन्तु) वस्तु क्या है (वह ख़बर नहीं)। आहाहा ! प्राप्य - कर्म कहा।

(अब) तीसरा बोल। `**(३) शुद्ध अनंतशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव से स्वयं ही साधकतम...**' (अर्थात्) स्वयं ही साधन है। आहाहा ! करण नाम साधन। केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होने में केवलज्ञान की पर्याय साधन है। आहाहा! अत: मोक्ष का मार्ग जो पूर्व में था - निश्चय साधन था - उससे मोक्षपर्याय (या) केवल(ज्ञान) हुआ है ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? `करणता को धारण करता हुआ...' आहाहा ! साधकतम कहा है न ? साधकतम (यानी) उत्कृष्ट साधन। निमित्त और व्यवहार साधन का उपचार आता है किन्तु वह असत् साधन है। (वही बात) अभी (भावार्थ में) कहेंगे कि व्यवहार कारक के जितने साधन कहलाते हैं वे सभी झूठे हैं। आहाहा ! उस पर्याय का वह (पर्याय) साधन है वह निश्चय है। आहाहा!

इस चश्मे की पर्याय जो है (वह) इस समय परिणमित होती पर्याय है। परमाणु - द्रव्य, गुण - तो नित्य रहते (हैं)। (किन्तु पर्याय) परिणमित होती है। जो यह (पर्याय) पहले समय में है वह दूसरे समय में नहीं। उस-उस समय में वह पर्याय उत्पन्न होकर नाक के आधार से रही है ऐसा नहीं। वह पर्याय अन्य परमाणु के आधार से हुई है ऐसा नहीं, (किन्तु) उस परमाणु की (पर्याय) उस काल में, उस क्षेत्र में उस प्रकार से स्वयं से परिणमनरूप होकर - कर्ता, कर्मरूप होकर - उत्पन्न हुई है। आहाहा ! यह

चर्चा लींबडी में हुई थी। एक साधु ने प्रश्न किया। हम चर्चा करेंगे ? मैंने कहा :- भाई ! हम किसी के साथ चर्चा नहीं करते। (उसने कहा) अरे ! आपकी इसमें महिमा क्या ? (हमने कहा) - महिमा-महिमा हमको कुछ नहीं। बापू ! उसे ऐसा था कि, हमारी इज्जत क़म हो जायेगी (और) आपको ज्ञान नहीं है ऐसा (कहा जायेगा)। चाहे जैसा मानो बापू ! बाद में अंत में (उसने कहा) `इस चश्मा के बिना कोई ज्ञान होता है ?' हमने कहा :- चर्चा आ गई लो ! चश्मा तो परचीज है। और ज्ञान करने की पर्याय स्व की है, वह स्व की ज्ञान करने की पर्याय, स्वयं से हुई है, चश्मा से नहीं। आहाहा! जो यहाँ पर (आत्मा में) ज्ञान की पर्याय होती है उसे चश्मा की अपेक्षा ही नहीं। उसे इस आँख के रजकण की (भी) अपेक्षा नहीं। आहाहा ! (वह साधु) अब (अखबार में) लिखता है कि, इनके साथ यह चर्चा हुई थी। लिखिये बापू ! भाई ! आहाहा ! (किन्तु वस्तुस्थिति तो यह है)।

यहाँ कहते हैं कि `**स्वयं ही साधकतम (उत्कृष्ट साधन) होने से करणता को धारण करता हुआ...**' साधकतम है न ? तम अर्थात् उत्कृष्ट लिया। साधक, साधकतर और साधकतम। उत्कृष्ट साधन ही वह (स्वयं पर्याय) है। केवलज्ञान की पर्याय का साधन पर्याय स्वयं ही है। अथवा (अभेद से) आत्मा साधन है। (किन्तु) कोई पूर्व की पर्याय, (या) निमित्त ज्ञानावरणी कर्म का क्षय हुआ इसलिये उसकी अपेक्षा से यहाँ (जीव में) केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई (या) उसका वह साधन है ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा स्वीकार करना कठिन पड़ता है। अत: वह प्रश्न कलकत्ता में (आया) था कि, विकार स्वयं से ही होता है और कर्म के कारण नहीं होता तो, विकार उसका स्वभाव हो जायेगा ? कर्म के बिना विकार होता हो तो, विकार जीव का स्वभाव (नहीं) हो जायेगा ? मैंने कहा, सब बात हो गई है।

विकार स्वयं से होता है। कर्म से नहीं। कर्म के कारक की - कर्ता, कर्म की अपेक्षा के बिना विकार की पर्याय, स्वयं के कर्ता, कर्म, साधन से होता है। कहिये समझ में आया ? आहाहा ! बहुत कठिन कार्य। (कोई ऐसा कहता है कि, कानजीस्वामी चाहे जो कहे किन्तु) ज्ञानावरणी कर्म कर्ता है (यानी कि उसका उदय) ज्ञान की हीन पर्याय का कर्ता है, उसका क्षयोपशम विशेष वृद्धि होने का कारण है, आहाहा ! बहुत कठिन पड़े ऐसी बात है। ऐसा मार्ग (है) बापू ! क्या हो सकता है भाई ? वस्तु की स्थिति तो जैसी है वैसी है। फिर भले ही बड़ा पंडित (नहीं) मानता हो या सब साधु विपरीत मानते हो। आहाहा ! क्या हो सकता है ? वे तीन बोल हुए।

(अब) चौथा (बोल)। `**(४) शुद्ध अनंतशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव**

के कारण स्वयं ही कर्म द्वारा समाश्रित होने से...' समाश्रित अर्थात् स्वयं ही स्वयं को दान करता होने से `(**अर्थात् कर्म स्वयं को ही देने में आता होने से**) **संप्रदानता को धारण...**' करता है। (अर्थात्) उस परिणमन का स्वयं स्वयं को दान करता है। (यानी कि स्वयं परिणमनरूप) होकर स्वयं को दान करता है। (किन्तु) वह परिणमन किसी अन्य को दान करता है या अन्य से देने में आया है ऐसा नहीं। आहाहा ! (भावार्थ में) मिट्टी का दृष्टांत देंगे। वह (केवलज्ञान की) पर्याय, (केवलज्ञान की) पर्याय के लिये परिणमित हुई थी। आहाहा ! वह पर्याय तीनकाल का ज्ञान करने के लिये परिणमित हुई थी ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? वह पर्याय स्वयं स्वयं से स्वयं के लिये परिणमित हुई थी। उसे यहाँ संप्रदान कहते हैं। (यानी कि) दान-दान दिया। लेने की योग्यतावाली पर्याय (भी) स्वयं और स्वयं ने स्वयं को दान दिया। एक समय में लेनेवाली भी स्वयं और देनेवाली भी स्वयं पर्याय (है)। आहाहा! ऐसी बातें (हैं)। आहाहा ! अन्य को आत्मा आहार दे सकता है वह तीनकाल में नहीं।

मुमुक्षु :- आहार देने से धर्म होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- (उसमें) धर्म तो कहाँ था ? (किन्तु) पुण्य होता है और वह भी आहार दे सकता तो ही नहीं न ? (क्योंकि) आहार के रजकण जो हैं उसका एक एक परमाणु स्वयं का परिणमन करके - इस प्रकार गति करके - वहाँ जाता है। उसे आत्मा कहे कि मैंने आहार दिया (तो) वह दृष्टि मिथ्या और अज्ञान और विपरीत श्रद्धा है। ऐसा कहाँ (सुनने मिलता है) ?

ऐसा है। आहार देने से धर्म होता है - वह प्रश्न हमें गोंडल में हुआ था। किसी ने कहा, देखो ! भगवती में ऐसा कहा है कि, भगवान को आहार देकर संसार का अभाव किया ! यह ७७वीं (साल की) बात है। (हमने) कहा, ऐसा नहीं। आहार देने से संसार सीमित हुआ है - अभाव हुआ (है), ऐसा नहीं। ए...वादविवाद शुरू हुआ! यह ७७ की साल की (बात है)। कितने बरस हुए ? ५८ बरस हुए। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि वह केवलज्ञान की पर्याय (प्रगट) करेके स्वयं ने स्वयं को दिया। आहाहा ! वह दान हुआ। स्वयं देनेवाला और स्वयं देनेवाला (है)। (अर्थात्) पर्याय स्वयं पात्र और पर्याय स्वयं दान देनेवाली। पर्याय स्वयं पात्र और जिसने पर्याय दिया वह भी स्वयं। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। - वे चार बोल हुए।

(अब) पाँचवां। `(**५**) **शुद्ध अनंतशक्तिमय ज्ञानरूप से परिणमित होने के समय...**' देखा ? `**परिणमित होने के समय**' यह अपादान लिया। `**पूर्व में प्रवर्तमान विकलज्ञानस्वभाव का...**' (पूर्व में) मति-श्रुत आदि अल्पज्ञान था न ? (अत: ऐसा कहा है)। किसी को पूर्व में चार

ज्ञान होता है और उसका नाश होकर केवलज्ञान होता है। किन्तु वह **`प्रवर्तमान विकलज्ञानस्वभाव का नाश होने पर भी सहज ज्ञानस्वभाव से स्वयं ही ध्रुवता का अवलंबन करने से...'** अपादान है। आहाहा ! अपादान की वह पर्याय स्वयं से हुई है। केवलज्ञान की पर्याय, पूर्व के चार ज्ञान की दशा का व्यय होने पर भी, वह ध्रुव का अवलंबन लेकर हुई है। आहाहा ! है (अंदर) ? **`पूर्व में प्रवर्तमान विकलज्ञानस्वभाव का...'** चार ज्ञान पूर्व में थे न ! पूर्व में होता है न ? उसका व्यय होकर केवल(ज्ञान) होता है न? उसका नाश होने पर भी **`सहजज्ञानस्वभाव से स्वयं ही ध्रुवता का अवलंबन करने से...'** अपादान है। आहाहा ! (विकलज्ञानस्वभाव का) नाश होने से (केवलज्ञान हुआ) ऐसा नहीं। आहाहा ! इस भगवानआत्मा ने केवलज्ञान की पर्याय को इस प्रकार से उत्पन्न किया है। पूर्व की पर्याय का व्यय होने पर भी ध्रुवता का अवलंबन है और पर्याय वहाँ उत्पन्न (हुई) है। आहाहा ! (ध्रुव का) अवलंबन लिया है पर्याय ने। आहाहा !

(अब छट्ठा बोल)। **`शुद्ध अनंतशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से...'** आहाहा ! केवलज्ञान की पर्याय का आधार केवलज्ञान है। किसी कर्म के अभाव के आधार से केवलज्ञान हुआ है ऐसा है नहीं। आहाहा! दूसरी रीति से कहे तो, देखिये ! यह पुस्तक है न ! उसकी पर्याय है वह इस (ठवणी) के आधार से रही नहीं। यह चश्मा है वह नाक के आधार से रहा नहीं। यह पैर जो नीचे रखता है वह जमीन के आधार से रहा नहीं। जमीन के आधार से चलता भी नहीं। अरेरे...! ऐसी बातें ! इस पैर का जमीन को स्पर्श भी नहीं हुआ। क्योंकि एक दूसरे में अभाव है तो स्पर्श कैसे करे ? आहाहा ! ऐसा वीतराग मार्ग सुनने को मिलता नहीं। (तो) उसे कब सत्य का स्वीकार हो ? ऐसे ही जिस संप्रदाय में पड़े (हो) उसकी मान्यता में रहकर चले जाते हैं। सब समाप्त हो जायेगा। जीवन पूर्ण करके चला जायेगा... आहाहा!

इस पुस्तक का अंदर का परमाणु है वह, यह नीचे के परमाणु के आधार से रहा नहीं। उस परमाणु की पर्याय का आधार, परमाणु की पर्याय है। वास्तव में तो उसका द्रव्य-गुण का भी आधार नहीं। आहाहा !

टोपी को मस्तक का आधार है या नहीं ? वह टोपी मस्तक के आधार से रही नहीं ऐसा कहते हैं। अरे ! किन्तु ऐसा ? ऐसा मार्ग है बापू ! बहुत सूक्ष्म भाई ! आहाहा ! यह टोपी तो बहुत से परमाणु का पिंड है। उस टोपी के एक एक परमाणु की पर्याय, स्वयं के आधार से वहाँ रही है। आहाहा ! मस्तक के आधार से नहीं। ऐसा स्वरूप है। आहाहा ! अब इस मकान की बात लेते हैं। इस मकान में जो ये अक्षर हैं और जिस समय में यह मकान बना है उस समय पर, उन उन परमाणु की वह वह पर्याय

उस काल में वहाँ उस प्रकार से होनेवाली थी। स्वयं के आधार से वह पर्याय हुई है। आहाहा ! उस कारीगर ने भी उत्पन्न किया नहीं। ऐसी बातें !

मुमुक्षु :- किन्तु बँबई से आदमियों को बुलाना पड़ा था न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन बुलाये ? और कौन करता है ? कहते हैं। ये ऐसी बातें ! बिना कारीगर के यह मकान हुआ है ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कारीगर के आने से मकान बना है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वही कहते हैं कि, कारीगर के आने से बना, ऐसी उसे अपेक्षा ही नहीं। उस समय उस परमाणु की उस प्रकार की पर्याय उत्पन्न होने का उसका काल है। उस प्रकार ऊपर के परमाणु का रहने का वह काल है अत: उसके कारण (वे रहे हैं)। नीचे के परमाणु के आधार से (वे रहे नहीं)। आहाहा! इस स्थंभ के आधार से ऊपर के रजकण रहे हैं ? तो कहते हैं कि नहीं। ऐसी बातें हैं। वीतराग मार्ग बहुत सूक्ष्म बापू ! सर्वज्ञ परमेश्वर जिराज ! (कि) जिसने तीनकाल - तीनलोक को देखा, उसमें छ: द्रव्य की पर्याय (को) अपने अपने काल में स्वयं से उत्पन्न होती देखी, और स्वतंत्रता का ढिंढोरा पीटा ! आहाहा ! उस समय की वह पर्याय उसके स्वयं के कारण से हुई है और वह उसका उत्पन्न होने का समय वह काल था, आहाहा ! अरेरे...! जगत को अभिमान का पार नहीं।

(यहाँ कहते हैं कि) **'शुद्ध अनंतशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से...'** आहाहा ! 'स्वयं ही आधार होने से अधिकरणता को आत्मसात् करता हुआ...' (यानी कि) स्वयं, स्वयं के आधार के कारण आत्मसात् (करता हुआ)। (अर्थात्) स्वयं का स्वरूप स्वयं के कारण से रहा (है)। आहाहा ! केवलज्ञान की पर्याय, पर्याय के आधार से स्वयं से वहाँ आत्मसात् - टीका है। आहाहा!

अब कोई ऐसा कहता है कि, ज्ञानावरणी (कर्म) कुछ करता नहीं ? (तो कहते हैं कि) नहीं। अब ऐसी सब बातें प्रभु ! क्या करे ? आहाहा ! उसे सुनने में भी नहीं आयी हो (तो क्या करे) ? सुना तो मगर स्वयं ने बहुत अभ्यास किया है अत: ऐसा लगता है कि हम जो मानते हैं, समझते हैं (वह ठीक है)। ये नये स्थानकवासीमें से निकलकर ऐसी बातें करते हैं ! अरे भाई ! ऐसा नहीं बापू ! उन स्थानकवासियों में हम थे ही नहीं। आहाहा ! भाई ! मार्ग तेरा न्यारा है नाथ !

आहाहा ! कहते हैं कि जीव पर की दया का पालन कर सकता नहीं। क्योंकि पर जीव का जो देह में रहना होता है उस पर्याय का कर्ता उसका आत्मा है (और) शरीर की पर्याय का कर्ता वह शरीर (है)। उसे अन्य जीव मानता है कि मैं इसकी

दया का पालन करता हूँ (तो) उसकी (पर की) पर्याय का कर्ता होता हुआ मिथ्यादृष्टि - अज्ञानी है।

मुमुक्षु : पानी में मक्खी पड़ गई हो तो निकालनी या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पानी में पड़ी हुई मक्खी को निकालने की क्रिया आत्मा तीनकाल में कर सकता नहीं। (किसी ने मकान का वारसा दिया हो तो कहते हैं कि) किसे सुप्रत करे और किसे दे ? - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा ! मकान के परमाणु की पर्याय स्वयं के कारण से वहाँ रही है। जीव को (कुछ) मिला तो ऐसा कहा जाता है कि उसे (जो) ममता हुई वह ममता का उत्पादकाल था तो ममता हुई है। उस ममता का कर्ता - कर्म वह मकान नहीं। आहाहा ! यह बात स्वीकार होना भारी कठिन है !

वे छ: बोल हुए हैं न ? `**(इस प्रकार) स्वयमेव...**' है ? `**स्वयमेव छ: कारकरूप होने से,...**' (यानी कि) छ: कारकरूप स्वयमेव परिणमित हुआ है।

अब एक अन्य अर्थ। `**अथवा उत्पत्ति - अपेक्षा से...**' किन्तु उत्पत्ति की अपेक्षा से लिया जाये तो, `**द्रव्य-भावभेद से भिन्न घातीकर्मों को दूर करके स्वयमेव आविर्भूत होने से...**' भगवान(आत्मा) स्वयं ही केवलज्ञान की पर्यायरूप प्रगट होने से `**-`स्वयंभू' कहलाता है।**' स्वयंभू पर्याय हुई। (अर्थात् पर्याय स्वयं =) स्वयं से (भू =) हुई है। (अत:) स्वयंभू कहलाती है। विशेष कहेंगे।

a a a

धारणा करके जो अनुभव तक नहीं पहुँच पाते तो उस धारणाका (बहुधा) **अभिमान हुए बिना नहीं रहता।** (**परमागमसार - ९८४**)

दि. १८-१-१९७९ - प्रवचन नं. - १२

(प्रवचनसार - १६वीं गाथा चलती है)। जो यह आत्मा है वह तो नित्यानंद प्रभु ध्रुव है। उसकी पर्याय में - परिणति में जो क्रिया होती है उस क्रिया के षट्कारक का यह वर्णन है। वस्तु त्रिकाली आनंद और ज्ञायक नित्यानंद प्रभु ! उसमें षट्कारक हैं वे शक्तिरूप हैं, स्वभावरूप हैं, सत् के सत्वरूप हैं। और यह जो मोक्ष के मार्ग की परिणति (है) उस परिणति की क्रिया में षट्कारक हैं। कहने में ऐसा आता है कि आत्मा कर्ता होकर परिणति को करता है। किन्तु वास्तव में तो, जो निर्मल परिणति है वही स्वयं अपनी पर्याय की कर्ता होती है। आहाहा ! और अन्य रीति से कहें (तो) `भूयत्थमस्सिदो खलु' (समयसार ११वीं गाथा)। -त्रिकाल के आश्रय से (निर्मल परिणति होती है)। वह पर्याय (स्वयं) कर्ता होकर स्व का लक्ष करती है।

`भूयत्थमस्सिदो खलु' है (यानी कि) त्रिकाल सच्चिदानंद प्रभु पूर्णानंद का और पूर्ण ज्ञान का पिंड जो भगवान(आत्मा) है वह तो ध्रुव है। किन्तु उसका लक्ष करनेवाली पर्याय है। वह पर्याय जिस (द्रव्य का) लक्ष करती है वह, द्रव्य के कारण नहीं (किन्तु) वह स्वयं कर्ता होकर लक्ष करती है। अत: पर्याय में जो षट्कारक हैं (उनके कारण लक्ष करती है)। उस शुद्ध परिणति की कर्ता परिणति है। आहाहा ! यह मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई ! उसे व्यवहार रत्नत्रय का कारण (ऐसे) राग के कर्तापने के संबंध की (ज़रूरत) है नहीं। आहाहा ! (अर्थात्) दया, दान, व्रतादि व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम - शुभराग - होते हैं तो उनके कारण शुद्ध परिणति होती है ऐसा स्वरूप नहीं।

आहाहा ! भगवान(आत्मा) पूर्णानंद का (नाथ), वीतरागमूर्ति प्रभु ! उसकी जो परिणति - शुद्ध वीतराग परिणति (वह) होती (तो है) उसके (द्रव्य के) आश्रय से। किन्तु वह आश्रय करनेवाली पर्याय स्वयं स्वतंत्र कर्ता होकर लक्ष - आश्रय करती है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है और उस शुद्ध परिणति में (षट्कारक हैं)। क्रिया का भाई ! कहा था न ? पंचास्तिकाय की ६२वीं गाथा में आता है। पुद्गल परिणाम की क्रिया-परिणाम ऐसा शब्द आता है और जीव के लिये (समयसार की) ७३वीं गाथा में `शुद्ध' के (बोल में वह) आता है।

जो पर्याय के षट्कारक हैं उनसे वह (ध्रुव) भिन्न है। अत: उसे (ध्रुव को) शुद्ध कहते हैं। आहाहा ! क्या आश्चर्यकारी वस्तु ! तत्त्व तो तत्त्व... बहुत गंभीर है। भगवान ! आहाहा ! उस निर्मल पर्याय में षट्कारक की परिणति जो यहाँ कहेंगे उस परिणति से पार ध्रुव(स्वरूप), उससे भिन्न है। आहाहा! तब उसे शुद्ध कहा है न ! आहाहा ! सूक्ष्म बात है प्रभु ! आहाहा !

वह स्वयं अनंत शक्तिवान पर्याय का तत्त्व है। स्वभाव तो है ही। किन्तु परिणति में भी अनंत शक्तिवान है वह कर्ता होकर शुद्ध परिणति को - धर्म को उत्पन्न करता है। (अर्थात्) धर्म की परिणति को धर्म की परिणति कर्ता होकर उत्पन्न करती है। वह धर्म की परिणति, उस परिणति को प्राप्त करती है - वह उसका कार्य है। आहाहा ! वह धर्म की परिणति साधन होने से उस पर्याय का वह साधन है। धर्म की परिणति (प्रगट) करके स्वयं रखती है वह स्वयं का संप्रदान - दान है। आहाहा! धर्म की परिणति (जो हुई) वह परिणति से हुई है - वह परिणति से ही परिणति हुई है - वह उसका अपादान है। सूक्ष्म बात है भाई ! और वह धर्म की परिणति, परिणति के आधार से हुई है। अत: उसका आधार परिणति है। आहाहा ! समझ में आया ? भाषा तो सरल है प्रभु ! किन्तु मार्ग तो बहुत सूक्ष्म (है)।

आहाहा ! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ ने जिस तत्त्व का ज्ञान किया आहाहा ! और उसकी (जो) पर्याय का ज्ञान किया आहाहा ! ऐसा ही भगवान(आत्मा) ज्ञान करनेवाला है। आहाहा ! वह शुद्ध षट्कारक की परिणति स्वयं से होती है। उसे परकारक की अपेक्षा नहीं। राग की मंदता हो तो यह धर्म की परिणति होती है (ऐसा नहीं)। कर्म कोई मार्ग देता है तो यह धर्म की परिणति होती है ऐसी कोई अपेक्षा नहीं। आहाहा! वहाँ तक आ गया है। उत्पत्ति का हम फिर से थोड़ा अधिक लेते हैं।

(यहाँ कहते हैं कि) `**शुद्ध अनंतशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से अधिकरणता को आत्मसात् करता हुआ - (इस प्रकार) स्वयमेव छ: कारकरूप होने से...**' लीजिये, है (अंदर) ? यहाँ तक आ गया है। भगवानआत्मा आनंद का नाथ प्रभु ! सच्चिदानंद ध्रुव प्रभु है। वह उसकी परिणति में षट्कारकरूप स्वयं परिणमित होता है। है ? `**छ: कारकरूप होने से**' वह स्वयंभू है। आहाहा ! कठिन कार्य बहुत। `**अथवा उत्पत्ति - अपेक्षा से...**' जो शुद्ध धर्म की (या) सर्वज्ञ आदि की पर्याय उत्पन्न होती है वह `**द्रव्य-भावभेद से भिन्न घातीकर्मों को दूर करके...**' वह भी निमित्त का कथन है। घाती(कर्म को) स्वयं (जीव) दूर करता है वह (निमित्त का कथन है)। (क्योंकि) वह घाती(कर्म का) दूर होने का पर्याय उसके काल में वहाँ होता है। मात्र

यह (जीव) निमित्त है अत: (ऐसा) कहने में आया (है)। अन्य रीति से कहे तो, जो भावघाती हैं उन्हें दूर करके (ऐसा जो कहा है) वह भी व्यवहार है। वह आता है न भाई ? (समयसार की) ३४वीं गाथा में आता है, (आत्मा) राग का नाश करनेवाला है वह भी नाममात्र है। आहाहा ! गज़ब बातें प्रभु ! कथन अनेक प्रकार के होते हैं। किन्तु उनमें से सार तत्त्व क्या है उसका ज्ञान करना चाहिये।

यहाँ पर कहते हैं कि प्रभु आनंद का कंद प्रभु (है)। अतीन्द्रिय आनंद की मूर्ति आत्मा है। वह अपनी पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद की पर्याय प्रगट करता है उस अतीन्द्रिय आनंद की पर्याय के षट्कारक से परिणति उत्पन्न होती है। आहाहा ! (पंचास्तिकाय की) ६२वीं गाथा में ऐसा कहा है कि दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध आदि जो विकार परिणाम पर्याय में होते हैं उन परिणाम का - पर्याय का षट्कारक परिणमन पर्याय में है। विकार के षट्कारक परिणमन में निमित्त की अपेक्षा नहीं (और) द्रव्य-गुण की (भी) अपेक्षा नहीं। ऐसा वह षट्कारक से परिणमित विकार पर के हेतु से रहित है। अहेतु सत् है। आहाहा ! भाई ! मार्ग सूक्ष्म है बापू ! धर्म कोई सामान्य बात नहीं भाई ! आहाहा !

जब आत्मा विकारी परिणति के मिथ्यात्व और राग-द्वेष की परिणति में भी षट्कारकरूप परिणति की क्रिया स्वयं (करता है तो फिर निर्मल परिणति की क्या बात) ? उस परिणति में षट्(कारक की) क्रिया है। ध्रुव में नहीं है। और उस परिणति की क्रिया को पर की अपेक्षा नहीं। विकार की क्रिया में भी उस क्रिया के कारक हैं। आहाहा ! उसे किसी निमित्त के (सद्भाव) (या) निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं। (तीनों) निरपेक्ष हैं। यहाँ पर तो, भगवानआत्मा ! आहाहा ! शुद्ध आनंद का कंद प्रभु ! अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर ! ऐसे उसके स्वभाव की परिणति स्वयं के लक्ष से जब होती है तब वह परिणति स्वयं कर्ता होकर लक्ष करती है। और (स्वयं) कर्ता होकर वह परिणति उत्पन्न होती है। वह कर्ता होकर (जो परिणति) उत्पन्न हुई वह कार्य उसका (है)। (अर्थात्) परिणति का कार्य परिणति (है)। परिणति का साधन परिणति, परिणति करके (स्वयं ने) रखी - परिणति के लिये परिणति हुई है यानी कि संप्रदान, परिणति से परिणति हुई है - द्रव्य से नहीं, निमित्त से (भी) नहीं। परिणति के आधार से परिणति हुई है। - ऐसे षट्कारक को भगवान कुंदकुंदाचार्य ने सिद्ध किया है। आहाहा ! यहाँ तक आया (था)।

(अब कहते हैं कि) **`अथवा उत्पत्ति - अपेक्षा से...'** (अर्थात्) आत्मा में षट्कारक की परिणति से सर्वज्ञता उत्पन्न होती है। सर्वज्ञ पर्याय भी षट्कारक की परिणति से उत्पन्न होती है। आहाहा ! `स्वयंभू' (अर्थात्) भगवानआत्मा वस्तु(रूप) से स्वयंभू है किन्तु उसकी

परिणति में भी स्वयंभू रीत से पर्याय को स्वयं उत्पन्न करता है। आहाहा! वह **'उत्पत्ति - अपेक्षा से द्रव्य-भावभेद से भिन्न घातीकर्मों को...'** आहाहा ! (एक) जड़कर्म है और एक भावघाती(कर्म है)। यानी कि हिन और विपरीत दशा (है)। उसे **'दूर करके...'** आहाहा ! वह भी व्यवहार का कथन है। भावघाती की पर्याय अर्थात् हीन और विपरीत (दशा को) दूर करके सर्वज्ञपर्याय उत्पन्न होती है। ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा ! इस समय तो यह देश की सेवा करो और यह करो, पर की मदद करो, दूसरे को आहार दो, पानी दो, मदद करो (ऐसा उपदेश दिया जाता है)। क्या है यह ? आहाहा ! भाई ! वह तेरे स्वभाव में नहीं। कहिये, समझ में आया ? एक दूसरे के साथ सहयोग करो और एक दूसरे को साथ में रखो, अरे प्रभु ! क्या करता है तू यह ? आहाहा ! तेरी और उनकी (पर की) परिणति भी स्वयं से स्वतंत्र होती (है)। और तू कहता है कि मैं इसको सुखी कर दूँ और धर्म की प्राप्ति करा दूँ ? आहाहा ! अब भगवान ! रहने दे। ये विद्यालय बनाये, शिबिर चलाये... अरे...! प्रभु ! क्या है भाई ! आहाहा ! सूक्ष्म बात है भाई ! सामनेवाले की जो ज्ञान की या उसकी समझने की परिणति होती है उस परिणति का कर्ता-कर्म तो उसकी परिणति है। उसे दूसरा समझाता है इसलिये वहाँ ज्ञान की पर्याय हुई है, ऐसा नहीं। उसकी समझाने की परिणति से - ज्ञान की परिणति के - षट्कारक को निमित्त (वक्ता) की अपेक्षा नहीं। आहाहा ! वैसे तो स्वयं के द्रव्य-गुण की भी उसे अपेक्षा नहीं। आहाहा ! यह कैसी बात है ? आहाहा ! उपदेशक ऐसा मानता है कि मैं उपदेश देता हूँ और इससे दुनिया धर्म प्राप्त करेगी और समझेगी... प्रभु! तुम यह क्या कर रहे हो ? कठिन बात है प्रभु ! ८वें अधिकार में तो कहा है, मोक्षमार्ग प्रकाशक में नहीं कहा कि भगवान ने उपकार किया है ? (ऐसा तो) मोक्षमार्ग प्रकाशक में आता है। वह निमित्त की बातें हैं बापू ! आहाहा ! किस पर कौन उपकार करे? आहाहा! जो पर की ज्ञान और समकित की पर्याय उत्पन्न होती है वह भी उसके षट्कारक के कारण उत्पन्न होती है। उसे दूसरा कराये या दूसरे से वह हो, ऐसी अपेक्षा नहीं। प्रभु! अरे भाई ! ऐसा मार्ग (है)। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि **'उत्पत्ति - अपेक्षा से द्रव्य-भावभेद से...'** नीचे (मूल शास्त्र में उसका अर्थ) है। 'द्रव्य-भावभेद से भिन्न घातीकर्म = द्रव्य और भाव के भेद से घातिकर्म दो प्रकार के हैं, द्रव्यघातीकर्म और भावघातीकर्म।' आहाहा ! इस षट्कारक के अपादान में आया न ? कि पूर्व पर्याय का नाश होनेपर भी ध्रुव के अवलंबन से स्वयं-परिणति रही है। पूर्व की पर्याय का अभाव होने पर भी द्रव्य के अवलंबन से स्वयं के कर्ता-कर्म के कारण परिणति रही है - वहाँ उत्पाद है। आहाहा ! भाई थोड़ा सूक्ष्म है हाँ !

यह तो प्रवचनसार है न ? (अर्थात्) तीनलोक के नाथ सर्वज्ञदेव की (जो) दिव्यध्वनि है उसका सार है प्रभु ! आहाहा ! भगवान तो रह गये बाहर - महाविदेह में उनको कुंदकुंदाचार्य ने स्वयं की परिणति से सुना। आहाहा ! वे यहाँ आकर संदेश देते हैं - भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं। वह प्रवचनसार है यह। प्र नाम विशेषरूप से वचन - दिव्यध्वनि का सार है। आहाहा !

(कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि) ऐसा भगवान वहाँ कहते थे और हमें भी ऐसा स्वीकार हुआ है और हम कहते हैं कि आत्मा जब सर्वज्ञ होता है (तब) उस सर्वज्ञ की पर्याय की उत्पत्ति से द्रव्यघाती कर्म का नाश होता है वह उस पर्याय का पलटने का काल है इसलिये (नाश होता है)। आहाहा ! और अशुद्धता का भी तब अभाव होने का काल है इसलिये अभाव होता है। आहाहा ! ऐसी अशुद्धता के अभाव की (अपेक्षा का) भी अभाव करके... किन्तु यहाँ तो (अशुद्धता को) दूर करके ऐसा कहा है न ? किन्तु उसका अर्थ वह (कि) भगवानआत्मा सर्वज्ञ स्वभावी प्रभु (है)। सर्वज्ञ स्वभाव के लक्ष से (स्वयं से) कर्ता-कर्मरूप से उत्पन्न होने पर उन भावघाती की पर्याय हीन और विपरीत (दशा की) - व्यय होती है और परमाणु की घातीकर्म की पर्याय भी उस काल में अकर्मरूप होनेवाली थी (तो) उस(रूप से) होती है। उसने (जीव ने) (जड़)घाती और भावघाती (कर्म का) नाश किया - ऐसा व्यवहार से कहने में आता (है)। आहाहा ! कथन शैली में वस्तु को लेना (वह) ग़ज़ब बात है ! ऐसी बात है। आहाहा! व्यय और उत्पाद पर्याय का अभाव है। (अत: वस्तु में उत्पाद-व्यय) स्वयं का स्वयं से होता है ऐसा सिद्ध करना है न ? ओहोहो !

यहाँ (अज्ञानी) तो दुनिया का ऐसा कर दे और दुनिया का वैसा कर दे, (ऐसा बोलता है इसलिये) सभा में ऐसे लोग इक्कट्ठा होते हैं और लोग खुश होते हैं, लीजिये ! एक दूसरे को मदद करना, इन दिनों में लोग (ऐसा) सूत्र बहुत लगाते हैं। चौदह राजुलोक का चित्र रखकर नीचे लिखते हैं - `परस्पर उपगहो जीवानाम्' - परस्पर उपकार करते हैं। सर्वार्थसिद्धि वचनीका में लिखा है, उस शब्द का अर्थ ऐसा है कि यहाँ (उपादान में कार्य) होता है तब एक निमित्त है उसका ज्ञान कराया है। आहाहा ! ऐसा है ! वह इन दिनों में बहुत चला है। चौदह राजुलोक का पुतला रखते हैं अत: लोगों को अच्छा लगता है। आहाहा ! हमारा दूसरे लोग उपकार करें तो हमे लाभ होता है न ? (और) हम दूसरे लोग पर उपकार करे तो उसे लाभ होता है (ऐसा मानते हैं)। आहाहा !

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि वस्तु का स्वरूप ऐसा है नहीं। आहाहा ! उस द्रव्यघातीकर्म के परमाणु का उस समय पर कर्म(रूप) पर्याय छूटकर अकर्मरूप होने का - (कर्मरूप पर्याय का) व्यय होकर अकर्म की पर्यायरूप उत्पन्न होने का - काल है और

अशुद्धता का भी उस समय में व्यय (होने का) ही काल (है)। आहाहा ! तब उत्पत्ति की अपेक्षा से द्रव्यघाती और भावघाती कर्मों का नाश किया और **`स्वयमेव आविर्भूत होने से'** आहाहा ! (अर्थात्) सर्वज्ञपर्याय स्वयं कर्ता-कर्म-करण(रूप) होकर अंदर से उत्पन्न हुई। वह सर्वज्ञ की पर्याय पर्याय की कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय साधन, पर्याय अपादान, पर्याय संप्रदान और पर्याय आधार (है)। आहाहा ! ऐसी बात स्वीकारनी होगी...

मुमुक्षु :- उसे ज्ञेय की भी अपेक्षा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- ज्ञेय की यहाँ बात ही कहाँ है ? वह ज्ञान स्वयं स्वयं से हुआ है (और) वह ज्ञेय को जानता है ऐसा भी नहीं (क्योंकि) वह तो ज्ञान की पर्याय का स्वयं का स्वपरप्रकाशक स्वभाव है। अत: वह स्वयं के कर्ता-कर्मरूप से उत्पन्न हुई है। आहाहा ! लोकालोक है अतः यहाँ सर्वज्ञ की पर्याय उत्पन्न हुई (है) ऐसा नहीं। आहाहा ! और पूर्व की मतिज्ञान आदि की (जो) चार अपूर्ण पर्याय थी उनका व्यय हुआ (अत: वह) उत्पन्न हुई, ऐसा भी नहीं। स्वयं ही उसका व्यय करके उत्पन्न हुई है। आहाहा ! (अपूर्ण पर्याय का) व्यय होने पर भी अपादान के आधार से वह ध्रुव है। (अर्थात्) उस ध्रुव का अपादान वहाँ रहा है। आहाहा ! ऐसा **`स्वयंभू कहलाता है।'**

(वह) स्वयमेव प्रगट होने पर भी... आहाहा ! (अज्ञानी) तो कहता है कि वज्रवृषनारायसंहनन हो तो केवलज्ञान होता है, मनुष्य भव हो तो (केवलज्ञान) होता है। यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु ! तू ऐसा रहने दे भाई ! आहाहा ! तुम्हारा सर्वज्ञपना जिस (काल में) प्रगट होगा उस काल में वह पर्याय स्वयं कर्ता-कर्म और साधन(रूप) होकर (-परिणमित होकर प्रगट) होगी। वह कोई निमित्त के साधन के कारण, मनुष्यता के साधन के कारण सर्वज्ञपर्याय हुई (ऐसा नहीं), मनुष्यभव में ही सर्वज्ञपर्याय होती है अत: (मनुष्य का) भव है इसलिये हुई है (ऐसा नहीं)। वज्रवृषनारायसंहनन होता है वहाँ पर ही सर्वज्ञ(ता) होती है अत: वज्रवृषनारायसंहनन के कारण केवलज्ञान हुआ है ऐसा नहीं। अरेरे...! ऐसी बातें ! आहाहा !

`यहाँ यह कहा गया है कि'** है (अंदर) ? यह कहा इसलिये ऐसा कहा कि **`निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारकता का संबंध नहीं।' आहाहा ! उस क्रिया के कारक जिस परिणति में उत्पन्न हुए हैं... उस क्रिया की परिणति के कारक हैं न ? ऐसे आत्मा को क्रिया के कारकता का संबंध अन्य के साथ नहीं। आहाहा! **`कि जिससे शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति के लिये...'** पूर्णानंद के नाथ को पूर्णानंद की पर्यायरूप प्राप्ति के लिये **`सामग्री (बाह्य साधन) ढूँढने की व्यग्रता...'** (अर्थात्) मनुष्यता हो, गुरु हो, केवली हो, वज्रवृषनारायसंहनन हो ऐसी बाह्य सामग्री **`ढूँढने की व्यग्रता से जीव (व्यर्थ ही) परतंत्र होते हैं।'** आहाहा !

कोई ऐसा माने कि) राग बहुत मंद करूं तो मुझे सर्वज्ञ(ता) होगी। यानी कि अत्यंत

कषाय (की मंदता करूं) - देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, उनकी पूजा, उन पंच परमेष्ठि का स्मरण (करूं) - तो मुझे सर्वज्ञ(ता) होगी। कहते हैं कि वे बाहर की सामग्री को एकत्र मत कर बापू ! आहाहा ! कहिये समझ में आया ? ऐसी बात है भाई ! किन्तु जगत से बहुत न्यारी (है)। आहाहा ! (कहते हैं कि) ऐसे **`बाह्य साधन ढूँढने की...'** (यानी कि) निमित्त अनुकूल मिले तो मुझे सर्वज्ञता होगी, देव-गुरु मिले तो सर्वज्ञ(ता) होगी, बहुत शास्त्र अभ्यास करूं जिससे ज्ञान होने पर मुझे सर्वज्ञ(ता) होगी - आहाहा ! ऐसी बाह्य सामग्री ढूँढने की व्यग्रता - आकुलता से जीव व्यर्थ ही परतंत्र होते हैं। उन्हें बाह्य सामग्री की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसी भारी कठिन बातें, भाई !

मुमुक्षु :- परंतु अब हमें क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह अंदर में आत्मा तरफ की परिणति करना। वह परिणति षट्कारकरूप परिणमित होती है। अत: (उस) परिणति से वह कार्य होता है। आहाहा! निश्चय से (तो) सर्वज्ञपर्याय भी पूर्व की छ: कारक की परिणति से भी नहीं होती। (अर्थात्) पूर्व की पर्याय में मोक्षमार्ग की षट्कारक की परिणति है इसलिये उसके बाद की (पर्याय में) सर्वज्ञ(ता) होती है ऐसा भी नहीं। (किन्तु) उस समय पर सर्वज्ञ(ता) की पर्याय का उत्पत्ति का वह काल है उस षट्कारक की परिणति से वह उत्पन्न होती है। ऐसा मार्ग है बापू ! अरे ! भाग्यवान को ही ऐसी बात मिलती है बापू! क्या कहे ? अरेरे...! भगवान का विरह हुआ...

मुमुक्षु :- आपकी कृपा से तो होता है न !

पूज्य गुरुदेवश्री :- किसी की कृपा काम नहीं आती भाई ! आहाहा ! भगवान वहाँ - महाविदेह में रह गये और ऐसी बातें यहाँ रह गई। आहाहा ! भगवान ऐसा कहते हैं कि तेरी सर्वज्ञ की पर्याय की प्राप्ति के लिये मेरी अपेक्षा की तुझे आवश्यकता नहीं। आहाहा ! मेरी तो (आवश्यकता) नहीं किन्तु तेरी पूर्व की जो मोक्षमार्ग की पर्याय है उसकी भी केवलज्ञान होने में अपेक्षा नहीं। आहाहा ! ऐसा है। भगवान! तेरा स्वरूप स्वतंत्र है प्रभु ! आहाहा ! यह तो एक मुमुक्षु को किसी ने कहा था न ! कि, तुम निमित्त से (कार्य होता है ऐसा) मानते नहीं तो वहाँ (सोनगढ) जाते हो किस लिये ? (तो इन्होंने कहा) निमित्त से होता नहीं ऐसा दृढ़ करने के लिये जाते हैं। कैसा स्वतंत्रता का ढिंढोरा !!! आहाहा !

भावार्थ :- `कर्ता', `कर्म' - कार्य, `करण' - साधन, `संप्रदान' - रखना (अर्थात्) जिसके लिये किया जाता है वह, `अपादान' - जिसमें से किया जाता है, `और अधिकरण' - जिसके आधार से (किया जाता है वह)। `नामक छ: कारक हैं।' किन्तु ये छ: कारक

पर्याय के हैं। द्रव्य के नहीं। (क्योंकि) द्रव्य के (कारक) तो ध्रुव(रूप से) रहे हैं। ये परिणमन के षट्कारक हैं। यानी कि जो परिणति का कर्ता है वह कर्ता भी वह परिणति है। द्रव्य को उसका कर्ता कहना वह तो निमित्त का कथन है। समझ में आया ? और अन्य जगह भी आता है न ? (कि) विकार के परिणाम में जीव निमित्त है। और निर्मल परिणति के - उपादान के षट्कारक स्वतंत्र हैं। जिस प्रकार विकारी परिणाम में भी (पर)द्रव्य मात्र निमित्त है यानी कि (पर)द्रव्य से (होते) नहीं। वैसे निर्मल परिणति को - सम्यग्दर्शन की पर्याय को (भी) प्रभु ! आहाहा ! (स्व)द्रव्य के निमित्त (की) अपेक्षा नहीं। (स्व)द्रव्य निमित्त है। (किन्तु) उपादान नहीं। आहाहा ! वह ध्रुव उपादान है।

मुमुक्षु :- निमित्त-नैमित्तिक संबंध तो पर्याय में होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय को ही संबंध होता है न ! अन्य किसे संबंध होता है ? द्रव्य को कोई संबंध है ही नहीं। द्रव्य तो है सो है - वैसा का वैसा ध्रुव (है)। किन्तु निमित्त-नैमित्तिक संबंध में भी, उस निमित्त के कारण नैमित्तिक(पर्याय) हुई है ऐसा नहीं। आहाहा ! सर्वज्ञता होती है वह लोकालोक के कारण सर्वज्ञता होती है ऐसा नहीं। आहाहा ! वह बड़ी चर्चा ८३की साल में दामनगर में हुई थी। एक भाई कहे कि लोकालोक के कारण ज्ञान नहीं, जबकि दूसरे भाई कहे कि लोकालोक के कारण ज्ञान है। - वह प्रश्न हुआ। वे लोग ऊपर बैठे थे मैं नीचे था। वह (प्रश्न) लेकर नीचे आये कि इसमें क्या है ? मैंने कहा कि, लोकालोक के कारण ज्ञान की पर्याय है ऐसा बिलकुल नहीं। ज्ञान की पर्याय, पर्याय के कारण स्वतंत्र उत्पन्न हुई है। आहाहा ! (किन्तु वह) लोकालोक को जानती है न ? लोकालोक को जानती है ऐसा कहना वह असद्भूत व्यवहार है। (वास्तव में तो) स्वयं से पर्याय स्वयं को जानती है। वह परिणति को जानना भाई ! पहले आ गया न ? कि ज्ञान की जो परिणति है वह स्वयं के द्रव्य-गुण को और पर के द्रव्य-गुण-पर्याय को स्वयं जानती है। किन्तु परद्रव्य-गुण-(पर्याय) है अत: परिणति पर को जानती है ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग सुनना कठिन पड़ता है। अरे...! मार्ग तो कोई मार्ग है ! आहाहा ! (किन्तु) लोग कहाँ-कहाँ मानकर बैठे हैं ? आहाहा ! ये क्रिया के कारक हैं। वह पहले एक बार बात हुई थी कि ये द्रव्य-गुण के कारक नहीं। ये परिणति के कारक हैं। द्रव्य-गुण के तो ध्रुवकारक हैं। (वे तो) ध्रुवरूप पडें हैं। उनका परिणमना या बदलना नहीं होता। समझ में आया ? आहाहा ! अरे प्रभु ! लोगों को यह कठिन लगता है और ऐसा लगता है कि यह तो निश्चयाभास जैसा है। अरे...! व्यवहार को तो उड़ा ही देते हैं। व्यवहार को तो रखते हैं, किन्तु उसका अर्थ यह है (कि) व्यवहार से होता है ऐसा नहीं। निमित्त को निमित्तरूप में स्वीकारते हैं। निमित्त की षट्कारक

परिणति निमित्त में है। इसकी (उपादान की) षट्कारक परिणति स्वयं में है। दोनों वस्तु हैं। आहाहा !

उन छः कारक की क्रिया अर्थात् परिणति - अवस्था। उनके छः कारक के (कर्ता, कर्म आदि) नाम हैं। अब उसका स्पष्टिकरण - आहाहा ! **`जो स्वतंत्रतया-स्वाधीनता से करता है वह कर्ता है;...'** (अर्थात्) पर्याय स्वयं स्वाधीनता से (करती है)। (यानी कि) स्वाधीनता से वह पर्याय की कर्ता पर्याय (है)। उसे द्रव्य का भी आश्रय नहीं अर्थात् अवलंबन नहीं। आहाहा ! (पर्याय) अवलंबन लेती है किन्तु वह अवलंबन स्वयं कर्ता होकर लेती है। द्रव्य के कारण (नहीं) अवलंबन स्वयं कर्ता होकर लेती है, द्रव्य के कारण अवलंबन लेना पड़ता है (ऐसा नहीं)। आहाहा ! वीतराग...वीतराग मार्ग बापू ! आहाहा ! जैन में जन्म लिया है उसे भी ख़बर नहीं तो अन्य के पास तो यह बात है ही कहाँ ? यह कहीं पर है ही कहाँ ? आहाहा !

`जो स्वतंत्रतया-स्वाधीनता से करता है वह कर्ता है'** स्व + आधीन (यानी कि) पर्याय (जो) होती है (वह) स्वाधीनता से होती है। अतः निर्मलपर्याय कर्ता (है)। **`कर्ता जिसे प्राप्त करता है वह कर्म है;...' स्वतंत्र(तया) करता है वह कर्ता (है) और कर्ता का इष्ट है वह कर्म (है)। जड़ को भले ही इष्ट - अनिष्टपना नहीं। तथापि उसकी परिणति का (जो) कार्य है वह परिणति का कर्म है। परमाणु की पर्याय में भी (षट्कारक हैं)। आहाहा ! यह अँगुली इस प्रकार हिलती है वह उसकी पर्याय है। वह पर्याय के षट्कारक के कारण होता है। आत्मा के कारण नहीं (और) उसके परमाणु के द्रव्य-गुण के कारण भी नहीं। आहाहा ! वह हिलनेवाली पर्याय स्वयं कर्ता और वह पर्याय (उसका) स्वयं का कार्य (है)। (इस प्रकार) एक समय में षट्कारक की परिणति जड़ में और चैतन्य में उत्पन्न होती हैं। आहाहा ! अतः प्रवचनसारजी की १०१ गाथा में कहा न ? (कि) उत्पाद को व्यय की अपेक्षा नहीं। उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहा ! यहाँ कहा कि उत्पत्ति (अपेक्षा से) द्रव्यकर्म का और भावकर्म का नाश करके (केवलज्ञान) उत्पन्न होता है। वह तो नाश होता है इसलिये (उपचार) करके (कहा है)। आहाहा ! जिस समय पर जो पर्याय उत्पन्न होती है उस उत्पाद को उसके ध्रुव की अपेक्षा नहीं, उसे व्यय की अपेक्षा नहीं। जो व्यय होता है उसे उत्पाद की (या) ध्रुव की अपेक्षा नहीं और ध्रुव का (जो) अस्तित्व (है) उसे उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं। वह तो स्वयं के कारण स्वतः रहती है। आहाहा ! ऐसी बातें कठिन पड़ती हैं। क्या करे ? बापू ! मार्ग तो यह है भाई ! लोगों ने अन्य-अन्य समझकर बिगाड़ दिया इसलिये सत्य कोई अन्यथा हो जाये ? आहाहा ! यह तो सत् है।

पर्याय भी सत् है। वह षट्कारक से परिणमित होती है वह पर के हेतु रहित परिणमित होती है। वह अहेतुक सत् है। आहाहा ! सामान्य मनुष्य को - अन्जान मनुष्य को तो ऐसा लगे कि, ये क्या कहते हैं ? कुछ समझ में आये नहीं अत: यह अन्य देश की भाषा - बात है ऐसा लगता है। आहाहा ! बापू ! तेरे घर की बात है भाई ! बात है तेरे घर की। तथापि बात, बात में है (और) परिणाम - परिणति, पर्याय में है। आहाहा ! (कहते हैं कि) **'कर्ता जिसे प्राप्त करता है वह कर्म है'** प्राप्य। यानी कि उस समय वही पर्याय है। उसे कर्ता प्राप्त करता है। आहाहा ! पर्याय हाँ ! पर्याय, पर्याय को प्राप्त करती है। आहाहा ! **'साधकतम अर्थात् उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं...'** वह पर्याय ही स्वयं साधन है। आहाहा ! एक समय की पर्याय में षट्भाग (षट्कारक) ? अरे...! एक समय की पर्याय में तो अनंत अविभागप्रतिच्छेद हैं। आहाहा !

मुमुक्षु :- उनमें फिर अनंत सप्तभंगी !

पूज्य गुरुदेवश्री :- अनंत अनंत है बापू ! आहाहा ! तीनकाल - तीनलोक, अनंत केवली को जाने ऐसी एक सर्वज्ञ की एक समय की पर्याय में कितनी ताक़त हुई? आहाहा ! उस पर्याय की कर्ता पर्याय, पर्याय का कार्य पर्याय, उस पर्याय का साधन पर्याय (है)। लोकालोक के कारण वह (सर्वज्ञता है) ऐसा नहीं। वज्रवृषनारायसंहनन के कारण (केवलज्ञान) हुआ है ऐसा नहीं, मनुष्यता के कारण सर्वज्ञता हुई है ऐसा नहीं। आहाहा ! यह तो अरिहंत की दशा क्या है उसकी बात है। आहाहा !

(कहते हैं कि) **'साधकतम (अर्थात्) उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं'** 'तम' है न 'तम' ! अर्थात् (उत्कृष्ट कहा है)। धर्म की निर्मल परिणति उत्पन्न होने में वह पर्याय स्वयं उत्कृष्ट साधन है। आहाहा ! भगवान की भक्ति की, बहुत स्तुति की और वज्रवृषनारायसंहनन मिला अत: वह परिणति हुई है ऐसा नहीं।

ऐसा उपदेश किस घर का है ? बापू ! तेरे घर की बात ऐसी है भाई! द्रव्य से तो तू त्रिकाल रहा है, किसी उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं। किन्तु (तेरे) उत्पाद-व्यय को ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहा ! वह (बात) तो आगे १०१ (गाथा में) आयेगी।

(यहाँ कहते हैं कि) 'उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं' सम्यग्दर्शन की पर्याय में भी साधन स्वयं-स्वयं की पर्याय है। वहाँ द्रव्य-गुण भी साधन नहीं। आहाहा ! वैसे केवलज्ञान की पर्याय में भी उत्कृष्ट साधन पर्याय है, द्रव्य-गुण भी नहीं। (क्योंकि) द्रव्य-गुण तो ध्रुव हैं, पर्याय से भिन्न हैं। पर्याय, द्रव्य से और गुण से भिन्न है न? (अत:) भिन्न को अपेक्षा भिन्न की नहीं। आहाहा ! ऐसा है भाई ! आहाहा ! कुछ नहीं समझ में आये (तो) रात्रि में पूछना। ये तो बहुत अलौकिक बातें हैं भाई !

मुमुक्षु :- रात्रि में पूछे जब तो आपको हमारी पोल का पता चल जाये !

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह थोड़ी सूक्ष्म बात है न बापू ! भगवान ! तेरी बात सूक्ष्म बहुत प्रभु ! न समझ में आता हो और समझने के लिये पूछने में कोई (छोटापन नहीं)। ऐसा सुनने का जिसे योग भी नहीं उसकी क्या दशा ? आहाहा !

अब (कहते हैं कि) **'कर्म जिसे दिया जाता है...'** वह पर्याय (वह) जिसके लिये हुई थी (यानी कि) वह जिसे देने के लिये हुई थी (अर्थात्) पर्याय, पर्याय को दी जाती है (वह संप्रदान है)। आहाहा ! **'अथवा जिसके लिये किया जाता है वह संप्रदान है;...'** है न स्पष्टीकरण ? **'कर्म जिसे दिया जाता है'** (अर्थात्) पर्याय, पर्याय को दी जाती है। **'अथवा जिसके लिये किया जाता है'** (अर्थात्) पर्याय के लिये पर्याय करने में आती है। आहाहा ! ये कोई सोनगढ के सूत्र नहीं। (कोई) कहता है कि सोनगढ के अर्थ ऐसे हैं ! किन्तु यह कहाँ सोनगढ का है ? अरे... भगवान ! आहाहा! सत्य मार्ग सुनने में नहीं आये तो वह कब विचार करे ? कब रुचि करे और कब परिणमन करे ? आहाहा! वस्तु दुर्लभ हो गई। तथापि स्वरूप है वह सुलभ है। आहाहा ! (क्योंकि) है उसकी परिणति प्रगट करना है न ? आहाहा ! संप्रदान में दो बात हुई। (१) 'कार्य (कर्म) जिसे दिया जाता है।' यानी कि पर्याय जिसे दी जाती है - पर्याय, पर्याय को दी जाती (है)। (२) 'अथवा जिसके लिये किया जाता है' - पर्याय के लिये पर्याय करने में आती (है)। आहाहा ! समझ में आया ? इसका नाम संप्रदान है। संप्रदान के दो अर्थ किये। (१) जिसे दिया जाता है - पर्याय, पर्याय को दी जाती (है)। इसलिये पर्याय संप्रदान (है)। (२) जिसके लिये किया जाता है - पर्याय के लिये पर्याय करने में आती है। आहाहा ! (अत: वह पर्याय) संप्रदान है।

(अब) कहते हैं कि) **'जिसमें से कर्म किया जाता है,...'** जिसमें से कार्य किया जाता है **'वह ध्रुव वस्तु अपादान है,...'** देखा ? ध्रुव से (पर्याय) होती है (ऐसा कहा)। उत्पादपर्याय होती है तो पर्याय से। किन्तु (वह) व्यय होकर होती है। ध्रुव के कारण होती है ऐसा कहना भी व्यवहार है। आहाहा ! **'ध्रुव वस्तु अपादान है'** यहाँ ध्रुव को अपादान कहा है। है तो क्रिया के - परिणति के षट्कारक। किन्तु परिणति बदलने पर (भी) ध्रुव का आश्रय है, बदलने पर भी - व्यय होने पर भी उसका (ध्रुव का) आश्रय है। अत: ध्रुव के कारण हुई ऐसा कहने में आता है। आहाहा !

मुमुक्षु : जो समय नियत है उस समय पर पर्याय हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह पर्याय निश्चित ही है। किन्तु बदलकर हुई (है)। (तो) बदलकर हुई तब रही किस प्रकार ? कि ध्रुव के कारण रही है। (निश्चय से) रही है तो स्वयं

के कारण। (पर्याय) चली गई और (वह) रही किस प्रकार ? एक (पर्याय) चली जाती है और दूसरी रहती है वह किस प्रकार ? कि ध्रुव वस्तु के लक्ष से वह रहती है - ऐसा कहते हैं। यहाँ लक्ष आत्मा का है अत: आत्मा की बात है। किन्तु जड़ में भी, ऐसा है। परिणति (जब) बदलती है वहाँ ध्रुवत्व है। अत: उत्पत्ति तो वहाँ अपादान के कारण रहती है। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म भाई ! ऐसा तो पूर्वजों ने भी कभी सुना नहीं था !

हमारे पिताजी सुबह में दातून करते थे और जयनारायण बोलते थे। जैन थे किन्तु कुछ ख़बर नहीं थी न ! वे भी बोलते थे `पारसनाथ परचो पूरे (कमी को पूरा करे),' क्या बोलते थे और ? `शांतिनाथ शाता करे' बाद में कोई दो-तीन बोलते थे सही ! छोटी उम्र में सुनते थे (हम), सीधे आदमी थे बेचारे !

अरेरे...! कोई सत्यनारायण की कथा बिठाते थे। स्थानकवासी जैन सत्यनारायण की कथा बिठाये ! वह ख़बर है हमको। तब पालेज में थे, आहाहा ! सत्यनारायण तो यह स्वयं भगवान(आत्मा) है। उसकी कथा की परिणति है वह सत्यनारायण की कथा है। (यह) वाणी नहीं। सत् चिदानंद प्रभु (आत्मा की) परिणति (होना) वह सत्य नारायण की कथा है। अब इसकी तो ख़बर नहीं और जो सुनने के लिये आये हो उन्हें ऐसा कहे कि, प्रसाद लिये बिना जायेगा उसे नुकशान होगा ! वह सत्यनारायण की कथा में आता है - अमुक प्रसाद लिये बिना गया इसलिये उसका जहाज डूब गया ! सुनो सब गप्पेमारी है ! ये बेचारे सीधे लोग उन्हें कोई ख़बर नहीं ! आहाहा! उसका अर्थ यह कि, कथा सुननेवाले आखिर तक बैठे रहे इसलिये यह झूठी शर्त लगा दी कि, प्रसाद लिये बिना जाये तो नुकशान हो जाये ! देखिये ! अमुक के जहाज को नुकशान हुआ ऐसा आता है। आता है न ! पता है। सुनी है न! आहाहा! यहाँ सच्चिदानंद प्रभु आत्मा सत्नारायण (है)। जो नर से नारायण हो सके ऐसी उसमें ताक़त है। आहाहा ! नर अर्थात् मनुष्यगति का उदय। आहाहा ! उसका अभाव करके नारायण नाम सर्वज्ञपर्याय उत्पन्न करे ऐसी शक्तिवान (वह) स्वत: तत्त्व है। आहाहा ! कहिये, समझ में आया ? ऐसी बात (है)। एक घेंटे में कितनी बातें (आये) ! आहाहा !

(अब कहते हैं कि) **`जिसमें अर्थात् जिसके आधार से कर्म किया जाता है वह अधिकरण है।'** कर्म अर्थात् कार्य। पर्याय में पर्याय का कार्य पर्याय के आधार से होता है। द्रव्य के आधार से नहीं, गुण के आधार से नहीं, (और) निमित्त के आधार से नहीं। आहाहा !

`यह छ: कारक व्यवहार और निश्चय के भेद से दो प्रकार के हैं।' अब छ: प्रकार के कारक व्यवहार से - झूठ से भी है और निश्चय से - सत्य से भी है (ऐसा कहते

हैं)। `**जहाँ पर के निमित्त से कार्य की सिद्धि कहलाती है वहाँ व्यवहार कारक हैं...**' घड़ा कुम्हार ने किया ऐसा कहने में आता है वह व्यवहार है - वह झूठ है। आहाहा ! `**और जहाँ अपने ही उपादान के कारण से कार्य की सिद्धि कही जाती है वहाँ निश्चय कारक हैं।**' आहाहा ! ऐसा स्पष्ट कथन (है)। किन्तु कौन सुनता है ? (लोगों) बाहर के क्रियाकांड में रुक गये हैं और हो गया... वस्तु वस्तुरूप से रह गई (और) जिंदगी चली (जाती है)। आहाहा !

अब व्यवहार के कारक बताते हैं। `**व्यवहार कारकों का दृष्टांत इस प्रकार है - कुम्हार कर्ता है; घड़ा कर्म है;...**' - वे व्यवहार के झूठे कारक हैं, असत्य कारक हैं। आहाहा ! `**कुम्हार कर्ता है; घड़ा कर्म है; दंड, चक्र, चीवर इत्यादि करण हैं;...**' वे झूठे साधन कहने में आते हैं। आहाहा ! `**कुम्हार जल भरनेवाले के लिये घड़ा बनाता है, इसलिये जल भरनेवाला संप्रदान है;...**' वह झूठ संप्रदान है। (क्योंकि) पर के लिये (करता है ऐसा) कहा न ? (अर्थात्) `**टोकरीमें से मिट्टी लेकर घड़ा बनाता है, इसलिये टोकरी अपादान है,...**' - आहाहा ! वह झूठ भी है। `पृथ्वी के आधार पर घड़ा बनाता है' - पृथ्वी नीचे है तो घड़ा बनता है। `**इसलिये पृथ्वी अधिकरण है।** - (वह भी झूठ है)। `**यहाँ सभी कारक भिन्न-भिन्न हैं।**' (यानी कि) भिन्न चीज कर्ता, भिन्न कार्य, आधार भिन्न, अपादान भिन्न। `**अन्य कर्ता है; अन्य कर्म है;...**' (अर्थात्) कुम्हार कर्ता है (और) घड़ा कर्म है। `**अन्य करण है;...**' साधन भिन्न है। `**अन्य संप्रदान:**' (है)। अन्य के लिये (वह करता है)। `**अन्य अपादान**' (है)। किसी अन्य से होना। `**अन्य अधिकरण है।**' किसी अन्य के आधार से (करता है)। `**परमार्थत: कोई द्रव्य किसी का कर्ता - हर्ता नहीं हो सकता,...**' आहाहा ! पर की पर्याय को अन्य द्रव्य कर सकता नहीं। सामनेवाले को (श्रोता को) जो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, उसमें शब्द और वाणी - उपदेश के कारण वहाँ (ज्ञान) होता है ऐसा नहीं। आहाहा! किन्तु पहले ऐसा ज्ञान नहीं था और बाद में (ज्ञान) हुआ तो इन शब्द से हुआ या नहीं ? (तो कहते हैं) वह ज्ञान जो हुआ उस पर्याय का कर्ता पर्याय है। शब्द से वह नवीन ज्ञान हुआ ऐसा नहीं। आहाहा ! बहुत गूढ़ बात भाई ! (बाहर के) अभ्यास से ये सब अन्य प्रकार हैं। आहाहा ! ऐसा है।

(अब कहते हैं कि) `**कोई द्रव्य किसीका कर्ता-हर्ता नहीं हो सकता।**' (अन्य की) पर्याय का हाँ ! (अन्य) द्रव्य का ऐसा नहीं। कोई द्रव्य की पर्याय, किसी द्रव्य की पर्याय की कर्ता-हर्ता है नहीं। (तब) द्रव्य को तो क्या करे ? द्रव्य तो है। किसी द्रव्य की पर्याय किसी द्रव्य की (पर्याय का) कर्ता-हर्ता हो सकती नहीं। घड़े को कुम्हार बना सकता

नहीं। रोटी को स्त्री पका सकती नहीं। आहाहा ! बढई लकड़ीमें से बरतन बना सकता नहीं। आहाहा ! स्त्री घड़े में पानी भर सकती नहीं। घड़े को स्त्री उठा सकती नहीं।

मुमुक्षु :- पूरा व्यवहार झूठ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- अरे ! सभी व्यवहार गप-झूठ हैं। आहाहा ! (यहाँ कहते हैं कि) परमार्थत: किसी द्रव्य की पर्याय किसी द्रव्य की (पर्याय की) कर्ता-हर्ता हो सकती नहीं। करना-होना तो पर्याय में है या नहीं ? **`इसलिये यह छ: व्यवहार कारक असत्य हैं।'** झूठ हैं। झूठ हैं (यानी कि) झूठ भाषा से कहने में आते हैं। आहाहा! इसके पिता ने इस लड़के को पढाकर बड़ा किया (ऐसा कहना) वह झूठ है ऐसा कहते हैं। आहाहा ! शिक्षक ने उसे पढाया (वह) झूठ है। रोटी बनाते वक्त (स्त्री) आटे को गूंथती है वह बात झूठ है ऐसा कहते हैं। बिना आटा गूंथे कोई रोटी नहीं बनती। (आटे को) ठीकरूप से गूंथने पर रोटी होती है न ? तो कहते हैं कि आटे की पर्याय को स्त्री गूंथ सकती नहीं। आहाहा ! बढई बाँस को उठाकर बाँस को छील सकता नहीं, उठा (भी) सकता नहीं। आहाहा ! ऐसा है।

(कहते हैं कि), (यह व्यवहार छ:) कारक झूठ हैं। `वे मात्र उपचरित असद्‌भूत व्यवहारनय से कहे जाते हैं।' देखा ? आहाहा ! वह तो उपचार कहिये या व्यवहार कहिये - (एक ही है)। आरोप करके असद्‌भूत व्यवहार है। (अर्थात्) झूठ व्यवहार है। **`निश्चय से किसी द्रव्य का अन्य द्रव्य के साथ कारणता का संबंध है ही नहीं।'** विशेष कहेंगे।

a a a

स्वभावकी सामर्थ्य, विकारकी विपरीतता तथा संयोगोकी भिन्नताका निर्णय करे तो सम्यग्दर्शन हो। स्वयं समझपूर्वक दिशा-बदले तो कार्यकारी हो। निमित्त, राग व पर्यायकी रुचि छोड़कर, स्वभावकी रुचि करे - तो सभी पुरुषार्थ सच्चा है। (परमागमसार - ९६०)

दि. १९-१-१९७९ - प्रवचन नं. - १३

(प्रवचनसार) १६वीं गाथा। निश्चयकारक (अब कहेंगे)। कारक अर्थात् क्रिया के कारण। पर्याय में जो क्रिया होती है (उसके कारण)। किसी भी परमाणु या आत्मा में जो पर्याय - अवस्था - क्रिया होती है, उसके ये कारक हैं। यहाँ तो पर (वस्तु पर्याय की) कर्ता नहीं - परिणाम का परद्रव्य कर्ता नहीं, ऐसा सिद्ध करने के लिये ऐसा कहते हैं कि, द्रव्य (पर्याय का) कर्ता (है)। ऐसा लेंगे। है न ?

`निश्चय कारकों का दृष्टांत इस प्रकार है :- मिट्टी स्वतंत्रतया...'** मिट्टी द्रव्य - वस्तु है। यहाँ पर द्रव्य अर्थात् परमाणु का पिंड है न, उसे द्रव्य कहना है। वरना द्रव्य तो एक परमाणु है (और) मिट्टी तो परमाणु की पर्याय है। किन्तु यहाँ पर मिट्टी को द्रव्य (कहते हैं)। आहाहा ! कितनी अपेक्षा ? **`स्वतंत्रतया' (अर्थात्) वह मिट्टी का द्रव्य स्वतंत्रतया **`घटरूप कार्य को प्राप्त होती है...'** यानी कि घड़े की अवस्था उस काल में होनेवाली थी उसे मिट्टी प्राप्त होती है। प्राप्य है न ? आहाहा ! अब यह मनुष्य को स्वीकार होना (बहुत कठिन पड़ता है)। चिद्विलास में निश्चय-व्यवहार का अधिकार आता है न वहाँ पर लिखा है कि, जिस समय पर जो पर्याय होती है वह उसका निश्चय है। - चिद्विलास के निश्चय अधिकार में आता है। आहाहा ! लोगों को (ऐसा लगता है कि यह तो) नियत हो जाता है ? पाँच समवाय सहित नियत ही है। ये चार समवाय साथ में हैं उनमें नियत (साथ में) है। आहाहा !

(यहाँ कहते हैं कि) **`मिट्टी स्वतंत्रतया'** कर्ता है न ? अर्थात् स्वतंत्रतया करता है वह कर्ता ऐसा सिद्ध करके (कहते हैं कि) **`मिट्टी स्वतंत्रतया घटरूप कार्य को प्राप्त होती है।'** कर्ता मिट्टी और उसका कार्य जो घड़ा - उस कार्य को मिट्टी प्राप्त होती है। कुम्हार नहीं। - कुम्हार के हाथ से घड़ा हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा! **`मिट्टी स्वतंत्रतया घटरूप कार्य को प्राप्त होती है।'** यानी ? कि `प्राप्त होती है।' (अर्थात्) मिट्टी स्वयं ही उस काल में घड़े की जो पर्याय होनेवाली है उसे प्राप्त होती है। आहाहा ! घड़े को कार्य कहा। उसे (मिट्टी) प्राप्त करती है - प्राप्त होती है। घड़ा पर्याय है उसे मिट्टी प्राप्त होती है -

मिट्टी उसे करती है - मिट्टी उसे प्राप्त होती है। आहाहा ! समझ में आया ? यह अभिन्न की अपेक्षा से कथन है। वरना तो घड़े की पर्याय का कार्य (वह) पर्याय स्वयं करती है। आहाहा ! ऐसी बातें (हैं)। किन्तु यहाँ तो अभिन्न दृष्टि से कथन है। पर्याय मिट्टी की है ऐसा मानकर उसकी (पर्याय की) मिट्टी कर्ता है ऐसा कहने में आता है। **`इसलिये मिट्टी कर्ता है और घड़ा कर्म है।'** आहाहा ! लीजिये ! यह घड़ा उसका कार्य है (ऐसा कहा)। कुम्हार के बिना कोई घड़ा होता है ? कुम्हार के बिना ही घड़ा होता है। आहाहा! यह तो दृष्टांत है। वैसे प्रत्येक द्रव्य के लिये - प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक के लिये यह सिद्धांत है। यह सिद्धांत तो तीनोंकाल का (है)। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेश्वर ने कहा (है) कि, भाई ! घड़े की पर्याय का काल है - उस समय (वह) प्राप्य है अत: उस पर्याय को मिट्टी प्राप्त होती है, मिट्टी उसे प्राप्त करती है। आहाहा! वह भी अभिन्न की अपेक्षा से कथन है।

`अथवा, घड़ा मिट्टी से अभिन्न है इसलिये...'** देखा ? फिर से अभिन्न कहा न? (क्योंकि) सिद्ध वह करना है न ? **`घड़ा मिट्टी से अभिन्न है इसलिये मिट्टी स्वयं ही कर्म है;...' आहाहा ! मिट्टी स्वयं कर्ता और मिट्टी स्वयं कर्म (है)। सूक्ष्म बात है भाई ! यह तो मूल सिद्धांत - मूल तत्त्व की बात है। इस समय तो विपरीतता बहुत हो गई है। आहाहा ! ऐसी बात को निश्चय... निश्चय... निश्चय (है ऐसा) कहके उड़ा देते हैं और व्यवहार को स्थापित करते हैं। आहाहा ! पर्याय, द्रव्य से अभिन्न होने से - घटरूप कार्य - पर्याय - कर्म, मिट्टी द्रव्य से अभिन्न होने से मिट्टी स्वयं ही कार्य है, कर्म है ऐसा कहने में आता है। कहो, इसमें समझ में आया?

ग्राहक को सँभालता है, ग्राहक को माल देता है, ग्राहक के पास से पैसा लेता है, उधार दे तो हिसाब लिखता है (आदि) ये सब दुकान के-व्यापार के कार्य सारे दिन करता है (ऐसा मानता है)। आत्मा का वह कार्य है ही नहीं ऐसा (यहाँ तो) कहते हैं। आहाहा ! अधिक से अधिक तो आत्मा इच्छा करता है और उसका अज्ञानभाव से कर्ता होता है और उस इच्छा के कार्य को प्राप्त होता है। अत: वह इच्छा का कार्य है वह कर्म (है)। घड़े के कर्म को मिट्टी से अभिन्न मानकर मिट्टी स्वयं कर्म है। कार्य है। आहाहा ! यह सामान्य बात नहीं। इस बात में सिद्धांत का मूल तत्त्व है। आहाहा !

(कहते हैं कि) **`अपने परिणमन स्वभाव से मिट्टी ने घड़ा बनाया...'** अब करण-साधन (कहते हैं)। ऊपर कहा था - दंड, चक्र आदि (घड़े के) साधन (हैं)। वे तो असत्य-झूठे (साधन कहे थे)। अब घड़े का साधन क्या ? (कि) मिट्टी ने अपने परिणमनस्वभाव से (घड़ा बनाया है)। - ऐसा माना न ? यहाँ अपना (द्रव्य का) परिणमनस्वभाव माना।

अभिन्न परिणमन माना न ! मिट्टी ने घड़ा बनाया अत: मिट्टी स्वयं ही साधन है। करण नाम साधन। आहाहा ! घड़ा होने का साधन मिट्टी स्वयं है। जड़ को ख़बर नहीं कि मैं साधन (हूँ)। ख़बर का यहाँ क्या काम है ? (यदि) ख़बर हो तो वह जीव द्रव्य ही सिद्ध होता है। अन्य पाँच द्रव्य सिद्ध होते ही नहीं। उसका स्वभाव ही इस प्रकार है। आहाहा ! पर से भिन्न कराना है अत:, वह मिट्टी उसका (घड़े का) साधन है। कुम्हार साधन नहीं, चक्र साधन नहीं ऐसा सिद्ध करके अनेकान्त सिद्ध करना है। यह अनेकान्त है।

दूसरे कलश में कहा न भाई ! कि वस्तु द्रव्य-गुणात्मक है। वस्तु है वह द्रव्य-गुणात्मक है - द्रव्य-गुणस्वरूप है। वस्तु - कोई भी आत्मा और परमाणु - द्रव्य-गुणस्वरूप है। उसमें वह सत्ता को द्रव्य कहना वह अभिन्न (अभेद) है और सत्ता को गुण कहना वह भिन्न (भेद) है। - इस प्रकार अनेकान्त है। आहाहा ! समझ में आया ? कोई भी वस्तु - परमाणु या आत्मा... धर्मास्तिकाय आदि चार अरूपी को तो एकतरफ रखो। अशुद्धि तो इन दोनों में ही हैं न ? आहाहा ! कोई भी वस्तु द्रव्य और गुणस्वरूप है। वस्तु द्रव्य और गुणस्वरूप है। उसमें गुण को द्रव्य कहना वह अभिन्न (अभेद) है - द्रव्यदृष्टि है और गुण को गुण कहना वह भेददृष्टि है - पर्यायदृष्टि है। आहाहा ! यह समझ में आया ?

इस प्रकार यहाँ पर (घड़ा) मिट्टी का कर्म है ऐसा कहना वह अभिन्न है और जो कार्य हुआ वह, कार्य का कार्य है वह भिन्न (भेदरूप कथन) है। आहाहा ! वह पर्याय पर्याय की है - घड़े की पर्याय, पर्याय की है, घड़े की पर्याय का साधन पर्याय है वह भिन्न से कथन है। द्रव्य से भिन्न (वह कथन है। तथापि) वह निश्चय है और मिट्टी साधन है (ऐसा जो कहा) वह, पर्याय उसकी (मिट्टी की) है ऐसा मानकर, अभिन्न साधन कहकर मिट्टी साधन है (और) घड़ा उसका कार्य है (ऐसा कहा है)। आहाहा! ऐसी बात (है)। (यह तो) महा सिद्धांत है। बापू ! आहाहा ! (वह) करण कहा। कर्ता, कर्म-कार्य और तीसरा करण - (इस प्रकार) तीन बोल हुये।

(अब कहते हैं कि) **'मिट्टी ने घड़ारूप कर्म अपने को ही दिया...'** यानी कि मिट्टी ने घड़े के लिये घड़ा बनाया। मिट्टी ने घड़े के लिये घड़ा बनाया। अब ऐसी बात (है)। कोई व्रत का पालन करना, भक्ति करना, स्तुति करना, मंदिर बनाना (यह बात तो आती नहीं)। अरे बापू ! वे सब बातें (तो व्यवहार की हैं)। पर का कर सकता नहीं भाई ! आहाहा ! यह आँख की पलक हिलती है न उस पलक के परमाणु (को) उस पर्याय का कर्ता अभिन्न से कहते हैं। भिन्न से तो वह पर्याय पर्याय की कर्ता है। आहाहा !

आत्मा तो वह पलक हिला सकता ही नहीं। निमित्त उसे कहते हैं कि (जो) पर में कोई कार्य कर सकता नहीं। इस समय ये एतराज (जताते हैं कि) निमित्त से यहाँ (उपादान में) कार्य होता है। शास्त्र में भी कोई कोई बार आता है कि दोनों मिलने से कार्य होता है। किन्तु वह तो दूसरी (चीज) निमित्त है उसका ज्ञान कराने के लिये - व्यवहार का ज्ञान कराने के लिये वह बात कही है। किन्तु निमित्त से उसमें (उपादान में) कुछ होता है वह ज़रा भी बात (सत्य) नहीं। निमित्त, निमित्त की क्रिया करता है और निमित्त, पर की - उपादान की (भी क्रिया) करता है (ऐसा मानता है) तो वह दो क्रियावाली मिथ्यादृष्टि है। वह तो सुबह में आया था न ? सुबह में वह द्विक्रियावादी आया था। आहाहा ! अरे ! भाई ! ऐसा मार्ग (है)।

(यहाँ कहते हैं कि) मिट्टी ने स्वयं घटरूप (कर्म) अपने को दिया **`इसलिये मिट्टी स्वयं संप्रदान है;...'** (घटरूप कर्म) दिया वह (मिट्टी को) ख़बर है ? ख़बर का यहाँ काम नहीं। मिट्टी ने घड़े को बनाकर अपने में रखा। घड़ा बनाकर घड़ेरूप रखा वह उसका संप्रदान (है)।

मुमुक्षु : मिट्टी ने घड़ा बनाया, ऐसा कोई मानेगा नहीं !

पूज्य गुरुदेवश्री :- सच बात भाई ! मानेगा नहीं। कठिन पड़ता है। वस्तु ऐसी है बापू ! क्या करे ! भाई ! अनंत द्रव्य कहना और एक द्रव्य दूसरे (द्रव्य का) करता है ऐसा कहना तब तो अनंत द्रव्य स्वतंत्र रहते नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है भाई ! मिट्टी स्वयं ही संप्रदान है।

अब `से-के द्वारा' अपादान (कहते हैं)। **`मिट्टी ने अपने में से पिंडरूप अवस्था नष्ट करके...'** आहाहा ! मिट्टी ने अपनेमें से पिंडरूप दशा का नाश करके घटरूप अवस्था करी **`और स्वयं ध्रुव बनी रही...'** इसलिये वह अपादान कहने में आता है। यह तो अभिन्न की अपेक्षा से (बात) है। बाक़ी तो घड़ा की पर्याय स्वयं पर्याय की कर्ता, पर्याय उसका कार्य (है)। एक समय में छः कारक एकसाथ हैं। आहाहा! यह घड़े की पर्याय, पर्याय का कर्ता, पर्याय (पर्याय का) कार्य, पर्याय पर्याय का साधन, पर्याय पर्याय के लिये की और (अपने में) रखी, पर्यायमें से पर्याय बनी और पर्याय के आधार से पर्याय हुई (है)।- वह भिन्न साधन की स्वतंत्रता (है)। किन्तु यहाँ तो यह द्रव्य के कारक हैं ऐसा अभिन्न से सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा ! इसमें कुछ अधिक ज्ञान हो तब ही समझ में आये ऐसा कुछ नहीं। उसकी यथार्थ रुचि चाहिये। आहाहा !

मिट्टी ने अपनेमें से पिंड़रूप अवस्था नष्ट करके घटरूप कार्य किया और स्वयं तो ध्रुव रही। बाद में आत्मा के- शुद्ध उपादान में घटायेंगे। (पिंड़रूप अवस्था) बदलने पर

स्वयं का अभाव हो गया, (ऐसा नहीं)। पिंड़ के बदलने पर मिट्टी का अभाव हो गया, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! वह अपादान है। **`स्वयं ही अपादान है;...**' मिट्टी से घड़ा बना, मिट्टी से घड़ा बना। (किन्तु) कुम्हार से घड़ा बना ऐसा नहीं।

यहाँ कहते हैं कि **`मिट्टी ने अपने ही आधार से घड़ा बनाया...**' है ? `मिट्टी ने अपने ही आधार से घड़ा बनाया।' आहाहा ! पैर अपने आधार से चलते हैं, पृथ्वी के आधार से नहीं। ऐसी बात ! पैर चलते हैं वे अपने आधार से चलते हैं, आत्मा के आधार से नहीं (और) पृथ्वी के आधार से (भी) नहीं। ऐसी बातें हैं। अरे भाई! तेरे तत्त्व की स्थिति (मर्यादा) ऐसी है। तत्त्व की मर्यादा पर्याय का उलंघन करके कहीं भी बाहर में जाती नहीं। आहाहा ! तत्त्व द्रव्यरूप है, द्रव्य गुणात्मक है। वही (गुण) पर्यायरूप है। अत:, उस पर्याय का कर्ता अभिन्नता से (द्रव्य को) मानकर (सभी को) द्रव्य माना (है)। आहाहा ! है ?

**`मिट्टी ने अपने ही...**' और पर के आधार से भी ऐसा कथंचित् नहीं। सम्यक् एकान्त यह ही है। आहाहा ! `मिट्टी ने अपने ही आधार से घड़ा बनाया इसलिये स्वयं ही अधिकरण है।' आहाहा ! `इसप्रकार निश्चय से...' वास्तव में सत्य से देखने में आये तो `छ:हों कारक एक ही द्रव्य में हैं।' स्वयं के एक द्रव्य में हैं। अभिन्न से वर्णन करना है न ? (अत: ऐसा कहा)। है न ?

`परमार्थत: एक द्रव्य**' (अर्थात्) वास्तव में एक परमाणु या एक आत्मा **`दूसरे की सहायता नहीं कर सकता...' आहाहा ! पहले नास्ति से (बात कही)। अब (कहते हैं कि) **`और द्रव्य स्वयं ही**' - वह कर्ता (है)। प्रत्येक परमाणु (या) प्रत्येक आत्मा (स्वयं कर्ता है)। वह **`अपने को**' - वह कार्य, कर्म (है)। द्रव्य **`अपने को**' अर्थात् कर्म (है)। **`अपने से**' - वह करण (है)। (**`अपने को**') वह कर्म है। यह करण (है)। **`अपने से**' वह करण (है)। **`अपने लिए**' - वह संप्रदान (है)। **`अपनेमें से**' - वह अपादान (है)। **`अपने में करता**' वह आधार (है)। आहाहा ! ऐसा है यह। आहाहा! **`अपने में करता है इसलिये निश्चय छ: कारक ही परम सत्य हैं।**' ये छ: कारक ही - एकान्त परम सत्य हैं। अन्य कारक असत्य हैं। - इस प्रकार अनेकान्त है। किन्तु अन्य कारक भी सत्य हैं और ये भी सत्य हैं (वह अनेकान्त नहीं)। आहाहा!

`उपरोक्त प्रकार से द्रव्य स्वयं ही अपनी अनंत शक्तिरूप संपदा से...**' आहाहा! उन छ: कारक की अपनी शक्तिरूप संपदा से आहाहा ! **`परिपूर्ण है इसलिये स्वयं ही छ: कारकरूप होकर...' आहाहा ! अभेद से वर्णन है न ? (अत: कहते हैं कि) **`द्रव्य स्वयं ही अपनी अनंत शक्तिरूप संपदा से परिपूर्ण है इसलिये स्वयं ही छ: कारकरूप होकर...**'

अर्थात् द्रव्य स्वयं ही छ: कारकरूप होकर **`अपना कार्य करने के लिए समर्थ है,...'** आहाहा ! भारी (बात) भाई ! यह पथ्थर से मग-चना की दाल पीसते हैं न ? अब यहाँ कहते हैं कि जो क्रिया होती है वह इस (पथ्थर के कारण) नहीं होती। (क्योंकि) वह जो पथ्थर है वह दाल को स्पर्श भी करता नहीं। (अत:) उससे चूरा हुआ नहीं। दाल के जो परमाणु हैं वे स्वयं ही वहाँ भिन्न-भिन्न होकर स्वयं ही अपना कार्य करते हैं। आहाहा ! यह तो लोगों को एकान्त लगता है। एक तो गरीब आलसी (हो) और उसे ऐसा कहे कि भगवान से तुझे लाभ होगा, गुरु से तुझे लाभ होगा, शास्त्र से तुझे लाभ होगा तो, आलसी है इसलिये वह विपरीत बात स्वीकार हो जाती है। भगवान कहते हैं कि मेरे से भी तुझे लाभ नहीं होगा। लो ! मैं भिन्न हूँ और तुम भिन्न हो !

मुमुक्षु :- बड़े आदमी तो ऐसा ही कहे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- अंतिम कलश में लिखा है कि अमृतचंद्राचार्य महापुरुष हैं इसलिये ऐसा कहते हैं कि (मैंने इस शास्त्र की टीका बनायी नहीं)। वे नम्र हैं इसलिये इस प्रकार बात कही है। अन्य अभिमानी होता तो नहीं कहता ऐसा इसका अर्थ (है)। (बाक़ी) टीका कर सकते नहीं - कर सके ही नहीं। मैंने शब्द लिखे हैं, मैंने टीका बनायी है - उस बात में कोई तथ्य नहीं। आहाहा ! विकल्प आया था उसका भी मैं कर्ता नहीं। तो टीका के अक्षर बने हैं उनका कर्ता मुझे मानना नहीं हाँ। अरे भोले जीवों, मैंने टीका बनायी है ऐसी भ्रमणा मत करना ! आहाहा ! उन अक्षर की शक्ति से वह टीका बन गयी है प्रभु ! - ऐसा कहा है। उन अक्षर में उस प्रकार से - टीका की पर्याय का कर्तृत्व, कर्मत्व (उसके कारण है)। अभिन्न से कहा जाये तो ऐसा है। बाक़ी तो उस अक्षर की जो पर्याय बनी वह पर्याय स्वयं कर्ता-कर्म-करण आदि छ: कारकरूप होकर परिणमित हुई है। आहाहा ! जिसे परमाणु के द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं। ऐसा स्वरूप है भाई ! अरेरे...! कोई मजाक करता था - `मोटर में मनुष्य बैठा हो और मोटर चलती हो तो, मनुष्य के कारण मोटर नहीं चलती। पेट्रोल से मोटर नहीं चलती। सोनगढ की मोटर पेट्रोल से नहीं चलती' इस प्रकार मजाक करता है। बापू ! ऐसा नहीं भाई ! अंदर जो शरीर पड़ा है उस शरीर के परमाणु की इस प्रकार खिसकने की पर्याय हुई उस पर्याय का कर्ता वह शरीर है। वह मोटर नहीं। आहाहा ! ऐसा बात (है)। सोनगढ की मोटर पेट्रोल से नहीं चलती। अपनी मोटर तो पेट्रोल से चलती है। प्रभु ! क्या कहता है तू यह ? प्रभु ! यह मजाक क्यों करते हो तुम ? भाई ! ऐसा नहीं। मोटर के एक-एक परमाणु को उसकी पर्याय का कर्ता कहना वह अभिन्नता से है। बाक़ी तो मोटर के परमाणु की पर्याय स्वयं ही कारकरूप परिणमित होकर स्वयं गति करती है। अरेरे...!

बड़ी सभा में यह बात स्वीकार होना कठिन पड़ता है। यह तो पुण्य साथ में है इसलिये (कई लोगों को स्वीकार होता है)। आहाहा ! है ?

`**अपना कार्य करने के लिये समर्थ है, उसे बाह्य सामग्री कोई सहायता नहीं कर सकती।**' घड़ा होने में कुम्हार की कोई सहायता नहीं। आहाहा ! जीव गति करता है उसमें धर्मास्ति(काय) की कोई सहायता नहीं। जीव गति करके स्थिर होता है उसमें अधर्मद्रव्य की कुछ मदद नहीं, तथापि उसे सहायक कहना, निमित्त कहना वह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है। शास्त्र में तो ऐसा आता है कि, धर्मास्तिकाय के अभाव से जीव ऊपर जा सकता नहीं। (सिद्ध) लोक में रह जाते हैं। अलोकाकाश में धर्मास्तिकाय नहीं। अत: वहाँ नहीं गये। शास्त्र में ऐसा आता है - `धर्मास्तिकाय अभावात्' सिद्ध ऊपर जाते नहीं। भाई ! उस आत्मा की पर्याय की - दशा की - कार्य की उस क्षेत्र में उस प्रकार रहने की स्थिति है, अत: वहाँ रही है। किन्तु धर्मास्तिकाय का अभाव है इसलिये आगे नहीं जा सकते ऐसा नहीं। आगे जाने का उनकी पर्याय का काम ही नहीं। आहाहा ! अत: जाते नहीं।

(यहाँ कहते हैं कि) `**बाह्य सामग्री कोई सहायता नहीं कर सकती।**' मोटर (में) शरीर बैठा (है), उस शरीर को वह मोटर कोई साधन (सहायता) कर सकती नहीं। आहाहा ! उपादान-निमित्त का विवाद भारी ! यद्यपि अब तो विद्वान स्वीकारते हैं कि, सोनगढवाले निमित्त को मानते नहीं ऐसा नहीं। निमित्त को मानते हैं किन्तु निमित्त से पर में (कार्य) होता है ऐसा मानते नहीं। १३वीं साल में दो बात का विरोध था। (एक) क्रमबद्ध (के लिये था)। जिस समय पर जो पर्याय होती है उसी समय पर (वह) होती है। दूसरे समय पर जो होनेवाली हो वह होती है, इसमें विरोध था कि, नहीं ! क्रमबद्ध सही किन्तु एक समय पर यह पर्याय और दूसरे समय पर जो होनेवाली है वही आती है, ऐसा नहीं। इस प्रकार (विरोध) था। यहाँ कहते हैं कि जिस समय पर जो पर्याय होनेवाली है उस समय पर (वही होती है)। दूसरे समय जो होनेवाली है (वही होती है) - वही वहाँ आती है। - एक बात और (दूसरी बात) निमित्त से पर में कुछ होता नहीं तो कहते हैं कि, निमित्त से किसी समय होता भी है, सर्वथा निमित्त से नहीं होता, ऐसा नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि निमित्त से पर में कुछ होता नहीं। बाह्य सामग्री से पर में कुछ होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

`**इसलिये...**' ऐसा कहकर अब कहना क्या है (वह) कहते हैं। `**केवलज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आत्मा को...**' आहाहा ! भगवानआत्मा की सर्वज्ञपर्याय प्रगट करने की भावनावाले को... आहाहा ! यहाँ तो वह (भावना) है न ? केवलज्ञान पर्याय है। (उसकी) प्राप्ति के

इच्छुक आत्मा को `**बाह्य सामग्री की अपेक्षा रखकर परतंत्र होना निरर्थक है।**' आहाहा ! गुरू का निमित्त मिले, देव का निमित्त मिले, वज़्रवृषनारायसंहनन का अनुकूल निमित्त मिले और महाविदेह का क्षेत्र हो तो वहाँ पर केवलज्ञान होने का निमित्त है ऐसा है कि नहीं (ऐसा) कहते हैं, आहाहा ! (यानी कि) निमित्त के कारण उसमें (उपादान में) कुछ होगा ऐसा (मानकर) परतंत्र होना निरर्थक है। (ऐसा मान्यता) कार्य के लिये निरर्थक है। (बंध के लिये) सार्थक है। (क्योंकि) बंध का कारण है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इन बहन-बेटियों को यह सब समझ में आता है ? ऐसी बातें हैं। भगवान है न अंदर तो ! बहन-बेटियाँ हैं कौन ? अंदर भगवानआत्मा है। तीनलोक का नाथ ! सच्चिदानंद प्रभु ! अनंत-अनंत संपदा का स्वामी शक्तिवान (आत्मा) है। ऐसा कहा नहीं ? `**अपनी संपदा**' नहीं कहा अंदर ? देखिये ! `**अपनी अनंत शक्तिरूप संपदा से परिपूर्ण**' है न ? `**उपरोक्त प्रकार से द्रव्य स्वयं ही अपनी अनंत शक्तिरूप संपदा से परिपूर्ण है इसलिये...**' परमाणु भी ऐसा (है) और आत्मा भी ऐसा (है)। आहाहा! श्रद्धा में फरक हो तो सही न कही उसकी उल्टी बात आये बिना नहीं रहे। यह बात तो बापू ! बहुत न्यारी है। आहाहा !

कहते हैं कि, बाहर की सामग्री की अपेक्षा रखकर परतंत्र होना निरर्थक है। आहाहा ! अब (कहते हैं कि) `**शुद्धोपयोग में लीन आत्मा...**' यह वस्तु (है)। उस काल में केवलज्ञान की प्राप्ति के कारणरूप `**शुद्धोपयोग में लीन आत्मा स्वयं ही छः कारकरूप होकर केवलज्ञान प्राप्त करता है।**' आहाहा ! (यहाँ) द्रव्य लेना है न ? (इसलिये आत्मा केवलज्ञान को प्राप्त होता है ऐसा कहा है)। वास्तव में तो केवलज्ञान की पर्याय स्वयं कर्ता, स्वयं कर्म, स्वयं करण, स्वयं संप्रदान, स्वयं अपादान और स्वयं आधार है। किन्तु यहाँ तो अन्य से (पर्याय) होती नहीं ऐसा सिद्ध करके उस द्रव्य से (पर्याय) होती है ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा ! (इसलिये कहते हैं कि) `**शुद्धोपयोग में लीन आत्मा स्वयं ही छः कारकरूप होकर...**' शुद्धोपयोग में लीन है और उसके कारण केवलज्ञान हुआ है (ऐसा कहना) वह भी अपेक्षित कथन है। समझ में आया? (पहले के) बाद की पर्याय (में) केवलज्ञान हुआ (ऐसा जो कहा है) वह तो उसका अभिन्न(ता) बतलाने (के लिये) कहा है। आहाहा ! शुद्धोपयोग में लीन हैं उन्हें केवलज्ञान होता हैं ऐसा कहना वह भी (व्यवहार है), शुद्धोपयोग कारण है और केवलज्ञान कार्य है वह भी व्यवहार है। आहाहा ! द्रव्य स्वयं ही केवलज्ञान का कारण है। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :- केवलज्ञान केवलज्ञान का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अभी तो शुद्धोपयोग से केवलज्ञान होता है इतना सिद्ध करने के लिये द्रव्य से केवलज्ञान होता है इतना (सिद्ध किया है)। बाक़ी तो, केवलज्ञान केवलज्ञान

से होता है। आहाहा ! अरे ! प्रभु का मार्ग यह है। भाई ! प्रभु अर्थात् तुम ! तेरा मार्ग स्वतंत्र है। प्रभु ! आहाहा ! तुम्हारे कार्य के लिये, पर की अपेक्षा की बिलकुल आवश्यकता नहीं। आहाहा ! तेरे धर्मकार्य के लिये शुभराग की अपेक्षा नहीं। आहाहा ! धर्मकार्य के लिये निश्चय से तो द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं। किन्तु यहाँ पर तो पर से भिन्न बतलाकर (स्व से) अभिन्न बतलाकर बात करना है। आहाहा! समझ में आया? यह शुद्धोपयोग शुभभाव से नहीं होता इतना सिद्ध करने के लिये (ऐसा कहते हैं)। शुभभाव कारण और केवलज्ञान कार्य नहीं होता इतना बतलाने के लिये यहाँ पर प्रभु (आत्मा) शुद्धोपयोग में लीन है - अपनी निर्मलपर्याय में लीन है। आहाहा ! (ऐसा कहते हैं)।

`स्वयं ही छ: कारकरूप होकर...'** (यानी कि) द्रव्य... ऐसा लिया न ? **`शुद्धोपयोग में लीन आत्मा' है न ? (अर्थात्) वहाँ द्रव्य लेना है। **`आत्मा'** कहा न ? अभिन्न कहना है न ? **`शुद्धोपयोग में लीन आत्मा स्वयं ही छ: कारकरूप होकर' अर्थात् आत्मा स्वयं ही छ: कारकरूप होकर `केवलज्ञान प्राप्त करता है।'** आहाहा ! अरेरे! ऐसी बात सुनाई नहीं देती इसलिये लोग ऐसा कहते हैं कि यह सोनगढ का एकान्त है। यह सोनगढ का नहीं, यह तो भगवान का है। आहाहा ! क्या हो ?

(कहते हैं कि) शुद्धोपयोग में लीन आत्मा स्वयं ही छ: कारकरूप होकर प्राप्त करता है। किसे ? केवलज्ञान को। द्रव्य स्वयं ही शुद्धोपयोग की परिणति करके केवलज्ञान का कार्य प्राप्त करता है। आहाहा ! **`वह आत्मा स्वयं अनंतशक्तिवान ज्ञायकस्वभाव से...'** अब कारक उतारते हैं। **`आत्मा स्वयं अनंत शक्तिवान ज्ञायकस्वभाव से स्वतंत्र है इसलिये स्वयं ही कर्ता है;...'** अज्ञानी तो कहता है कि, वज्रवृषनारायसंहनन के बिना केवलज्ञान होता नहीं। आहाहा ! (जैसे कि) पंखी उड़ना चाहता हो और सख्त ज़मीन हो तो पैर से ज़ोर कर के उड़ता है। किन्तु मूँग का ढेर हो और उसमें पंखी बैठा हो और वह उड़ना चाहता हो तो फिसल जायेगा। अत: सख्त ज़मीन उसे उड़ने में कारण है। (किन्तु) ऐसा नहीं। यहाँ तो वज्रवृषनारायसंहनन को बताना है इसलिये दृष्टांत दिया था कि वह होता है। आहाहा ! किन्तु वज्रवृषनारायसंहनन के कारण केवलज्ञान होता है ऐसा नहीं। आहाहा ! क्योंकि वज्रवृषनारायसंहनन तो तंदुलमच्छ कि जो सातवीं नरक में जाता है उसे भी होता है। अंगुल के असंख्यवें भाग जितने मच्छ को तंदुलमच्छ कहने में आता है। उसे वज्रवृषनारायसंहनन होता है। किन्तु परिणाम ऐसे तीव्र हैं कि सातवीं नरक का आयुष्य बाँधे ऐसे उसके परिणाम (होते हैं)। वह आयुष्य भी उसकी (परमाणुओं की) पर्याय (की योग्यता)से बँधता है। यहाँ पर (जीव के) ऐसे परिणाम करने से बँधता है ऐसा नहीं। आहाहा ! यहाँ पर कई साल पहले एक स्थानकवासी साधु आये थे। वे ऐसा कहते

थे कि, तंदुलमच्छ ने मुँह इस प्रकार खोला इसलिये वह नरक में गया। उसे तो क्रिया बताना है न! अतः (ऐसा) कहा कि, क्रिया के बिना (नरक में जाता नहीं)। हमने कहा, नहीं। नहीं। ऐसा नहीं। उसके परिणाम ही ऐसे सा़ातवीं नरक के योग्य हुये थे। (एक) हजार योजन का मच्छ था। (उसके मुँह में) पानी आता था उसमें छोटी मछलीयाँ आती थी और बहुत सी बाहर निकल जाती थी और (तंदुल)मच्छ उसके कान में बैठा था। (उसके ऐसे परिणाम हुये कि) यह (मछली को) जाने देता है किन्तु मैं होता तो नहीं छोड़ता ! वह मुँह खोलने की क्रिया से (नरक में गया) ऐसा (वह साधु का) मानना था। मुँह खोलने की क्रिया स्वतंत्र परिणमन है और ये सातवीं नरक में जाने के परिणाम भी स्वतंत्र हैं। (जीव) द्रव्य ने स्वयं किये हैं। हुये हैं पर्याय में) किन्तु यहाँ पर द्रव्य को (कर्ता) कहना है न ? आहाहा ! मुँह इस प्रकार खोला है इसलिये उसे (मच्छ को) ऐसे (सातवीं नरक में जाने के) परिणाम हुये हैं (ऐसा नहीं)। मुँह की पर्याय का कर्ता तो उसके परमाणु हैं। आहाहा !

(अन्य) श्वतांबर साधु आये थे। वे भी ऐसा कहते थे कि, निमित्त के बिना होता है ? फलाना के बिना होता है ? ९४ की (साल के) पहले की बात है। आहाहा! इसके बिना नहीं होता... इसके बिना नहीं होता...(ऐसा कहते हैं)। क्या कहे बापू ! भाई ! क्या करना उसमें ? बड़े पंडितों ने अभ्यास बहुत किया किन्तु ज्ञान शून्य रहे। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि - आत्मा स्वयं अनंत शक्तिवान ज्ञायकस्वभाव से स्वतंत्र होने से स्वयं ही उस पर्याय का - केवलज्ञान का कर्ता है। - आत्मा (अभिन्न) बताया है। आहाहा ! पूर्व की पर्याय भी उसे सहायक नहीं। चार ज्ञान की पर्याय का व्यय हुआ (इसलिये) केवलज्ञान की (पर्याय) हुई, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। वह तो केवलज्ञान की पर्याय का कर्ता ज्ञायकस्वभाव स्वतंत्र है। आहाहा ! अब ऐसी बात (लोगों को) रसहीन लगती है। भाई ! यह समझना पड़ेगा बापू ! सत्य का स्वरूप ऐसा है। आहाहा ! जिस प्रकार सत्य है उस प्रकार समझे उसका असत्य मिटेगा। आहाहा !

(कहते हैं कि) '**केवलज्ञान का कर्ता है।**' है न ? स्वतंत्र होने से कर्ता (है)। कर्ता की व्याख्या वह है न ? स्वतंत्ररूप से करे वह कर्ता है। पर की सहायता के बिना स्वतंत्ररूप से करे वह कर्ता है। आहाहा ! केवलज्ञान उत्पन्न होने में (निज) द्रव्य की सहायता के बिना अन्य किसी परद्रव्य की सहायता नहीं। अभिन्न से वर्णन है न ? (इसलिये द्रव्य की सहायता कही है)। आहाहा ! उसे किसी पूर्व की पर्याय का भी साधन नहीं। आहाहा ! उसे वज्रवृषनारायसंहनन (और) मनुष्यगति में केवल(ज्ञान) होता है अतः मनुष्यगति - वहाँ साधन है ऐसा भी नहीं। आहाहा ! केवलज्ञान मनुष्यगति के बिना नहीं होता वह

बात सत्य है, किन्तु केवलज्ञान मनुष्यगति के कारण हुआ है ऐसा नहीं। वह (तो) ज्ञायकभाव की सामर्थ्य से स्वयं केवलज्ञानरूप परिणमित हुआ है - कर्ता हुआ है और इस कारण से केवलज्ञान उसका कार्य है। आहाहा! भारी व्याख्या भाई ! इस समय तो सुबह में भी ऐसा आता है। और दोपहर में भी ऐसा आता है। सुबह में वह आया था न ! (समयसार - ८५ गाथा)। क्रियावादी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! पर की और मेरी - दोनों की क्रिया से (एक) कार्य होता है, (ऐसा माननेवाला) वीतराग के अभिप्राय से भिन्न है। आहाहा ! एक साधु आये थे वे ऐसा कहते थे कि, कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि, दया, दान, व्रत और भक्ति के परिणाम से धर्म - मोक्ष नहीं तो ये लोग बेचारे बिगड़ जायेंगे ! हमने तो कहा, देखिये ! भाई ! हम किसी के साथ चर्चा करते नहीं। बाक़ी वस्तु तो यह है। वह हमारी स्वतंत्र है। जगत मानता है वह सब झूठा-गलत है। तुमको मानना हो तो मानो। शुभभाव की क्रिया से आत्मा को धर्म होता है - ऐसी मान्यता बिलकुल अज्ञानी मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा ! हम किसी के साथ चर्चा करते नहीं। हम किसी के साथ विवाद में पड़ते नहीं। और तुम जो सोचकर आये हो तो हम कहते हैं कि वे सब (मान्यता) तुम्हारी कल्पित हैं। आहाहा ! बापू! यह मार्ग है।

(यहाँ कहते हैं कि) **`स्वयं अनंत शक्तिवाले केवलज्ञान को प्राप्त करने से...'** आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय को आत्मा - जीव स्वयं प्राप्त करता है। आहाहा ! पूर्व की पर्याय से वह प्राप्त होता है ऐसा नहीं। आहाहा ! (अर्थात्) मोक्ष के मार्ग से केवलज्ञान - मोक्ष होता है ऐसा नहीं। आहाहा ! स्वयं अनंत शक्तिवान होने से केवलज्ञान को प्राप्त करने से केवलज्ञान उसका कार्य है। आहाहा ! वह द्रव्य अनंत शक्तिवान होने से उसका केवलज्ञान कार्य है। पूर्व की मोक्षमार्ग की पर्याय का वह (केवलज्ञान) कार्य है ऐसा नहीं। आहाहा ! **`अथवा केवलज्ञान से स्वयं अभिन्न होने से आत्मा स्वयं ही कर्म है;...'** कर्म के दो अर्थ किये (हैं)। आत्मा केवलज्ञान से अभिन्न होने से... देखा ? यहाँ पर अभिन्न की व्याख्या है न ? अभिन्न कारक की बात है। किन्तु अभिन्न कारक का अर्थ क्या ? (पर्याय) स्वयं ही अपने कारक से (होती) है। उसे अभिन्न से द्रव्य करता है (ऐसा कहने में आता है)। वह अभिन्न (कारक) है। अरे...! भगवान ! क्या कहें ? पहले (कर्म के कारक में) तो ऐसा कहा कि स्वयं आत्मा अनंत शक्तिवान केवलज्ञान को प्राप्त करने से केवलज्ञान उसका कार्य है। (और अब कहते हैं कि) **`अथवा केवलज्ञान से स्वयं अभिन्न होने से...'** (आत्मा) स्वयं ही अभिन्न होने से वह आत्मा ही स्वयं कार्य है। है ? आत्मा स्वयं ही कार्य है। पर्याय कार्य है ऐसा कहने पर भेद (पड़ता) है और आत्मा स्वयं कार्य है वह अभेद है। आहाहा ! बहुत अच्छा अधिकार है। सुबह-दोपहर को बहुत अच्छा अधिकार आता है।

वह अधिकार आये तब - आये न ? शास्त्र का आधार हो (तब आये न) ? आहाहा ! तथापि उस वाणी को उसका (शास्त्र का) आधार नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा !

यहाँ (छः कारक की) अभिन्न(पना) सिद्ध करना है न ! अतः आत्मा स्वयं ही केवलज्ञान है। बस ! आत्मा स्वयं ही केवलज्ञान है (ऐसा कहते हैं)। आत्मा केवलज्ञान को प्राप्त करता है ऐसा (भेद से) कहने की अपेक्षा, आत्मा स्वयं ही केवलज्ञान है ऐसा अभिन्न से कहते हैं। आहाहा !

(अब कहते हैं कि) **`अपने अनंत शक्तिवाले परिणमन स्वभावरूप उत्कृष्ट साधन से...'** देखो! यह साधन (है)। **`अपने अनंत शक्तिवाले परिणमन स्वभावरूप उत्कृष्ट साधन से केवलज्ञान को प्रगट करता है, इसलिये आत्मा स्वयं ही करण है;...'** आत्मा स्वयं ही साधन है। आहाहा ! केवलज्ञान की पर्याय, केवलज्ञान का साधन है। - साधन है वह भिन्न की बात है और यह अभिन्न की बात है। आहाहा ! भगवान! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें हैं बापू ! उत्कृष्ट साधन भी स्वयं है। वज्रवृषभनारायसंहनन साधन है या पूर्व का मोक्षमार्ग साधन है ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! व्यवहार (मोक्षमार्ग) साधन तो नहीं किन्तु निश्चय मोक्षमार्ग की पर्याय (भी) साधन नहीं। आत्मा स्वयं ही साधन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? आत्मा स्वयं ही करण है। और **`अपने को ही केवलज्ञान देता है, इसलिये आत्मा स्वयं ही संप्रदान है;...'** आत्मा अपने को ही केवलज्ञान देता है इसलिये अथवा केवलज्ञान के लिये केवलज्ञान करने से स्वयं संप्रदान है। आहाहा ! वह उसके लिये करता है। (अर्थात्) केवलज्ञान के लिये आत्मा केवलज्ञान करता है। आहाहा ! सूक्ष्म लगे ऐसा है। किन्तु बापू ! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। - वह संप्रदान (हुआ)।

`अपनेमें से मति श्रुतादि अपूर्ण ज्ञान दूर करके केवलज्ञान प्रगट करता है इसलिये और स्वयं सहज ज्ञान स्वभाव के द्वारा ध्रुव रहता है इसलिये स्वयं ही अपादान है,...'** अपनेमें से केवलज्ञान हुआ है। पूर्व के चार ज्ञान जो थे उनमें से केवलज्ञान हुआ नहीं ऐसा कहते हैं। है न ? **`मति-श्रुतादि अपूर्ण ज्ञान...' अर्थात् मोक्षमार्ग उसे **`दूर करके केवलज्ञान प्रगट करता है इसलिये और स्वयं सजह ज्ञान स्वभाव के द्वारा ध्रुव रहता है इसलिये स्वयं ही अपादान है,...'** आहाहा !

`अपने में ही अर्थात् अपने ही आधार से केवलज्ञान प्रगट करता है, इसलिये स्वयं ही अधिकरण है।' लो! केवलज्ञान का आधार आत्मा है। आहाहा ! पूर्व की पर्याय की पर्याय नहीं, निमित्त नहीं। अभिन्न कारक मानकर केवलज्ञान का आधार द्रव्य स्वयं है (ऐसा कहा है)।

मुमुक्षु :- ज्ञानगुण को आधार क्यों नही लिया ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- ज्ञानगुण त्रिकाल है न ? ज्ञानगुण कहो या द्रव्य कहो (एक ही है)। स्वयं सत् ज्ञानस्वभावी होने से (इस प्रकार) द्रव्य के साथ लिया न ? उसका ज्ञानस्वभाव है न ? (उसके) आधार से केवलज्ञान करता है इसलिये.... देखा ? अपने में ही - अपने आधार से केवलज्ञान प्रगट करता है इसलिये स्वयं ही अधिकरण है ऐसा कहा। (अर्थात्) आत्मा ही आधार है। (क्योंकि) गुण और द्रव्य का भेद कहाँ है ? जहाँ पर्याय को भी अभिन्न कहनी है वहाँ गुण और द्रव्य तो अभिन्न है ही। आहाहा !

`इसप्रकार स्वयं छः कारकरूप होता है, इसलिये वह `स्वयंभू' कहलाता है।' लो! उसे स्वयंभू (कहते हैं)। स्वयं ही छः कारक से परिणमित होने से स्वयंभू कहलाता है। अब उत्तपत्ति का एक बोल है, बाद में वह विशेष लेंगे।

a a a

आत्माका हित तो मोक्ष ही है। संसार-अवस्थामें दुःख है; वहाँ दुःख चाहे अल्प हो या अधिक, किन्तु सुख बिल्कुल भी नहीं है। चारों गतियों में दुःख है। आकुलता ही दुःख है। स्वर्गकी इच्छा-वश पुण्य करे अथवा नरक-तिर्यंचके दुःखोंके भयसे पाप न करे - तो उससे कल्याण नहीं है; उसमें तो आकुलता है, शान्ति नहीं। "आकुलता सो दुःख है व निराकुलता सो सुख है" ऐसा निर्णय किए बिना, मोक्षमार्गमें प्रवेश ही नहीं हो सकता।

(परमागमसार - ९५८)

दि. २०-१-१९७९ - प्रवचन नं. - १४

(प्रवचनसार - १६वीं) गाथा। अंतिम है न थोड़ा ? **`स्वयंभू कहलाता है।'** भावार्थ का अंतिम (वाक्य है)। (कहते हैं) **`अथवा अनादिकाल से अति दृढ़ बँधे हुए (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतरायरूप)...'** चार (घातीकर्म)। मूल चार की बात है न इस समय ! **`द्रव्य तथा भाव घातीकर्मों को नष्ट करके...'** जो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ आहाहा ! उन चार जड़ घातीकर्मों का नाश कर के, अर्थात् निमित्त से (कथन है)। पाँच (भाव) घाती - अशुद्धता और अपूर्णता के जो भाव थे उनका नाश करके और **`स्वयमेव आविर्भूत हुआ...'** आहाहा ! भगवान स्वयं ज्ञान की पर्याय में केवलज्ञानरूप प्रगट हुआ। आहाहा ! (केवलज्ञान) निरपेक्ष है न ! (अर्थात्) किसी की सहायता बिना (प्रगट हुआ)।

प्रत्येक ज्ञेय की प्रत्येक समय में जो पर्याय होती है उसी समय पर वह पर्याय होती है, किन्तु उसका अर्थ यह कि, जिस समय पर जो पर्याय उस द्रव्य की (होनेवाली होती है) वही होती है। (किसी को ऐसा लगता है कि) यह तो नियत हो गया ! किन्तु उसका तात्पर्य (क्या) ? कि, जो पर्याय है उसको अंतर में झुकाया है वह उसका तात्पर्य है। आहाहा ! जिस समय जो पर्याय जीव की होनेवाली है (वही होगी)। जड़ की होनेवाली पर्याय जड़ में इसे तो एकतरफ रखो। आहाहा! जीव की भी जिस समय जो पर्याय होनेवाली है वही होगी (और वह उसके) षट्कारक के परिणमन से (होगी)। किन्तु उसका तात्पर्य क्या ? (ऐसा मानना) इसमें लाभ क्या ? आहाहा ! कि, उस पर्याय का द्रव्य के प्रति झुकाव हुआ है (वह उसका लाभ है)। जिस समय पर जो पर्याय हुई उसका (यथार्थ) निर्णय (कब कहा जाता है ?) (कि), उस पर्याय का द्रव्य के प्रति झुकाव हुआ है, तब उसे जिस समय जो (पर्याय) होती उसका यथार्थ निर्णय होता है। सूक्ष्म बात है, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

इस प्रकार तो जिस समय पर जो होगा सो होगा, अब उसमें (पुरुषार्थ) क्या? आहाहा !

मुमुक्षु :- एक समय की पर्याय को (अंतर में) झुकाना किस प्रकार ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यही बात चलती है, बापू ! आहाहा !

मुमुक्षु :- उपयोग तो असंख्य समय का है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उपयोग भले ही असंख्य समय का हो ! किन्तु उस पर्याय (में) समयांतर में ही फर्क पड़ जाता है। आहाहा ! सम्यग्दर्शन होते ही समयांतर में ज्ञान भिन्न हो जाता है। थोड़ी सूक्ष्म बात है।

यहाँ तो ऐसा कहा (प्रत्येक पर्याय) बिलकुल नियत ही (है)। जिस समय पर जो पर्याय होगी वह षट्कारक परिणमन से होनेवाली है। अब उसे (ऐसा मानकर) क्या करना? समझ में आया ? रात्रि में कहा था। उसे निर्णय कब होता है ? (जिस समय पर जो पर्याय) होनेवाली (होती है वह) होती है, वह पर्याय तो अपने काल में होगी। किन्तु जीव को अपने निर्णय में वह बात कब आती है ? कि, जिस समय पर (जो पर्याय होनेवाली हो वह) होती है उसका तात्पर्य तो वीतरागता है। तात्पर्य तो वीतरागता प्रगट हो। वह यहाँ पर उसका तात्पर्य है। चारों अनुयोग का तात्पर्य तो वीतरागता है। आहाहा !

जिस समय जो पर्याय (होनेवाली हो वह) होती है उसका तात्पर्य क्या ? कि, उसका तात्पर्य (यह) कि, वह पर्याय द्रव्य के प्रति झुके। तब उस पर्याय (का) षट्कारकरूप परिणमन हुआ ऐसा निर्णय होता है। यह बात है, भाई ! सूक्ष्म बात है किन्तु क्या करे ? आहाहा ! जो इस प्रकार बाहर लक्ष जाता (है) उसमें, जिस समय पर जो पर्याय (होनेवाली हो वह होती है) ऐसा जीव को निर्णय नहीं। आहाहा! जिस समय पर जो पर्याय होती वह षट्कारक के परिणमन से होगी। केवलज्ञान भी उसकी (एक) समय की पर्याय (के) षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न हुआ है।

आगे टीका में '**उत्पत्ति अपेक्षा से...**' ऐसा कहा न ! आहाहा ! यह केवलज्ञान की पर्याय उस समय की उत्पत्ति की अपेक्षा से पूर्व के (घाती)कर्म का व्यय करके यानी कि घाती(कर्म) का व्यय तो निमित्त से कथन है, किन्तु उसकी जो अशुद्ध पर्याय है उसका व्यय कर के, और जो पर्याय केवलज्ञानरूप उत्पन्न हुई, वह अपने षट्कारकरूप परिणमन होकर (उत्पन्न) हुई है। आहाहा ! किन्तु उस पर्याय का लक्ष - आश्रय कहाँ था ? (तो कहते हैं कि) ध्रुव(स्वरूप में) ऐसा है ! सूक्ष्म बहुत भाई! ऐसा निश्चय (है)। निश्चय (है)... (ऐसा) कहकर लोग (उड़ा देते हैं)। भाई ! (जो पर्याय होनेवाली होगी) वह तो अपने समय पर होगी, किन्तु तुम उसका निर्णय कब करेगा? तुझे वह निःसंदेह स्वीकार होगा कब ? भाई ! वह बात निःसंदेह स्वीकार होती है कब ? कि, (जो) पर्याय षट्कारकरूप परिणमित होती है, वह पर्याय स्वयं स्वतंत्र कारणरूप होकर द्रव्य के प्रति झुकती है। (तब वह बात निःसंदेह संमत होती है)। आहाहा! ऐसी बात है, बापू ! आहाहा !

आठ बरस का बालक हो और केवलज्ञान होता है ! आहाहा ! किन्तु उसकी वह

अथ स्वायम्भुवस्यास्य शुद्धात्मस्वभावलाभस्यात्यन्तमनपायित्वं कथंचिदुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तत्वं चालोचयति -

भंगविहूणो य भवो संभवपरिवज्जिदो विणासो हि।
विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवाओ।।१७।।

भङ्गविहीनश्च भवः संभवपरिवर्जितो विनाशो हि।
विद्यते तस्यैव पुनः स्थितिसंभवनाशसमवायः।।१७।।

अस्य खल्वात्मनः शुद्धोपयोगप्रसादात् शुद्धात्मस्वभावेन यो भवः स पुनस्तेन रूपेण प्रलयाभावाद्भङ्गविहीनः। यस्त्वशुद्धात्मस्वभावेन विनाशः स पुनरुत्पादाभावत्संभवपरिवर्जितः। अतोऽस्य सिद्धत्वेनानपायित्वम्। एवमपि स्थितिसंभवनाशसमवायोऽस्य न विप्रतिषिध्यते, भङ्गरहितोत्पादेन संभववर्जितविनाशेन तद्द्वयाधारभूतद्रव्येण च समवेतत्वात्।।१७।।

एवं सर्वज्ञमुख्यत्वेन प्रथमगाथा। स्वयंभूमुख्यत्वेन द्वितीया चेति प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतम्। अथास्य भगवतो द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि पर्यायार्थिकनयेनानित्यत्वमुपदिशति - **भंगविहीणो य भवो** भङ्गविहीनश्च भवः जीवितमरणादिसमताभावलक्षणपरमोपेक्षासंयमरूपशुद्धोपयोगेनोत्पन्नो योऽसौ भवः केवलज्ञानोत्पादः। स **किं विशिष्टः।** भङ्गविहीनो विनाशरहितः। **संभवपरिवज्जिदो विणासो त्ति संभवपरिवर्जितो** विनाश इति। योऽसौ मिथ्यात्वरागादिसंसरणरूपसंसारपर्यायस्य विनाशः। स किंविशिष्टः। संभवविहीनः निर्विकारात्मतत्त्वविलक्षणरागादिपरिणामाभावादुत्पत्तिरहितः। तस्माज्ज्ञायते तस्यैव भगवतः सिद्धस्वरूपतो द्रव्यार्थिकनयेन विनाशो नास्ति। **विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवायो** विद्यते तस्यैव पुनः स्थितिसंभवनाशसमवायः। तस्यैव भगवतः पर्यायार्थिकनयेन शुद्धव्यञ्जनपर्यायापेक्षया सिद्धपर्यायेणोत्पादः, संसारपर्यायेण विनाशः, केवलज्ञानादिगुणाधारद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति। ततः स्थितं द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयं संभवतीति ।।१७।।

पर्याय उस काल में होनेवाली हुई, उसका निर्णय किस प्रकार हुआ ? निर्णय इस प्रकार हुआ कि, उस समय की पर्याय को ध्रुव के प्रति झुकायी है। वह भी अपनी पर्याय के कर्तृत्व के (कारक से) स्वतंत्ररूप से झुकी है, आहाहा ! समझ में आया ?

अतः, जिस काल में सम्यग्दर्शन की पर्याय षट्कारकरूप से परिणमित होती है, वह पर्याय उस काल में होनेवाली थी (वह हुई) उसका निर्णय स्वभाव के प्रति झुका तब हुआ। ऐसी बातें हैं !

मुमुक्षु :- पर्याय को झुकाने में पर्यायबुद्धि नहीं हो जायेगी ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऐसे कथन का वहाँ कोई काम नहीं, बापू ! वहाँ तो विकल्प भी काम नहीं आता, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

कर्ता(कारक) आया न ! पर्याय (स्वयं) कर्ता होकर झुकी, वह कर्ता। वह कल कहा

अब इस स्वयंभूके शुद्धात्मस्वभावकी प्राप्तिके अत्यन्त अविनाशीपना और कथंचित् (कोई प्रकारसे) **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तताका विचार करते हैं :-**

गाथा-१७

व्ययहीन छे उत्पाद न उत्पाद हीन विनाश छे।
तेने ज वली उत्पाद ध्रौव्य विनाशनो समवाय छे।।१७।।

अन्वयार्थ :- [भङ्गविहीनः च भवः] उसके (शुद्धात्मस्वभावको प्राप्त आत्माके) विनाश रहित उत्पाद है, और **[संभवपरिवर्जितः विनाशः हि]** उत्पाद रहित विनाश है। **[तस्य एव पुनः]** उसके ही फिर **[स्थितिसंभवनाशसमवायः विद्यते]** स्थिति, उत्पाद और विनाशका समवाय मिलाप, एकत्रपना विद्यमान है।

टीका :- वास्तवमें इस (शुद्धात्मस्वभावको प्राप्त) आत्माके शुद्धपयोगके प्रसादसे हुआ जो शुद्धात्मस्वभावसे (शुद्धात्मस्वभावरूपसे) उत्पाद है वह, पुनः उसरूपसे प्रलयका अभाव होनेसे विनाश रहित है; और (उस आत्माके शुद्धोपयोगके प्रसादसे हुआ) जो अशुद्धात्मस्वभावसे विनाश है वह पुनः उत्पत्तिका अभाव होनेसे, उत्पाद रहित है। इससे (यह कहा है कि) उस आत्माके सिद्धरूपसे अविनाशीपन है। ऐसा होनेपर भी उस आत्माके उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यका समवाय विरोधको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह विनाश रहति उत्पादके साथ, उत्पाद रहित विनाशके साथ और उन दोनोंके आधारभूत द्रव्यके साथ समवेत (तन्मयतासे युक्त एकमेक) है।

भावार्थ :- स्वयंभू सर्वज्ञ भगवानके जो शुद्धात्म स्वभाव उत्पन्न हुआ वह कभी नष्ट

था न ! पर्याय का कर्तृत्व पर्याय में है। किन्तु उस पर्याय के कर्तापने का निर्णय कब होता है ? कि, वह पर्याय द्रव्य के प्रति ढलती है तब कर्तृत्व का (निर्णय होता है)। (और वह पर्याय) स्वतंत्ररूप से झुकती है। द्रव्य के आश्रय से (झुकती है) ऐसा नहीं। किन्तु उस पर्याय का कर्तव्य (है इसलिये झुकती है)। द्रव्य के प्रति झुकती है वह स्वतंत्ररूप से झुकती है। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं कि, **`स्वयमेव आविर्भूत हुआ...'** आहाहा ! **`अर्थात् किसीकी सहायता के बिना अपने आप ही प्रगट हुआ इसलिये `स्वयंभू' कहलाता है।'** आहाहा! वह तो केवलज्ञान की बात हुई। अब, यहाँ पर नीचे उस केवलज्ञान की बात करते-(करते) दूसरी बात साथ में कहेंगे। अंदर क्या है (वह कहेंगे)।

नहीं होता, इसलिये उनके विनाशरहित उत्पाद है; और अनादि अविद्या जनित विभाव परिणाम एक बार सर्वथा नाशको प्राप्त होनेके बाद फिर कभी उत्पन्न नहीं होते, इसलिए उनके उत्पाद रहित विनाश है। इसप्रकार यहाँ यह कहा है कि वे सिद्धरूपसे अविनाशी हैं। इसप्रकार अविनाशी होनेपर भी वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त हैं; क्योंकि शुद्ध पर्यायकी अपेक्षासे उनके उत्पाद है, अशुद्ध पर्यायकी अपेक्षासे व्यय है और उन दोनोंके आधारभूत आत्मत्वकी अपेक्षासे ध्रौव्य है।।१७।।

'अब इस स्वयंभू के शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति के अत्यंत अविनाशीपना और कथंचित् (**कोई प्रकार से**) **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तता का विचार करते हैं :-'**

'भगविहूणो य भवो संभवपरिवज्जिदो विणासो हि।
विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवाओ।।१७।।'

'व्ययहीन छे उत्पाद ने उत्पाद हीन विनाश छे।
तेने ज वली उत्पाद ध्रौव्य विनाशनो समवाय छे।।१७।।'

भाई ! यह तो भगवान की कथा है। भाई ! यह कोई साधारण बात नहीं। प्रत्येक शब्द के अंदर बहुत भाव हैं। वाच्य बहुत सूक्ष्म है, भाई ! आहाहा ! यह केवली की, संतों की वाणी है ! संत तो अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के अनुभव में पड़े (हैं)। उनको यह विकल्प आया और यह टीका हो गई है। आहाहा ! वह बात बहुत गंभीर है ! क्या कहते हैं ?

टीका :- **'वास्तव में इस** (**शुद्धात्मस्वभाव को प्राप्त**) **आत्मा के शुद्धोपयोग के प्रसाद से हुआ...'** **'शुद्धोपयोग के प्रसाद से हुआ...'** (ऐसा कहा है)। आहाहा ! सुबह में छ: ढाला में आया था। **'द्विविध संगबिन शुद्धउपयोगी मुनि उत्तम निजध्यानी'** (तीसरी ढाल-गाथा-४) मुनि को द्विविध संग विनष्ट होकर शुद्ध उपयोग प्रगट हुआ है। आहाहा! बापू ! शुद्ध उपयोग हुआ है। द्रव्य और भाव संग का त्याग करके (शुद्धोपयोग हुआ है)। अंदर के - अभ्यंतर के विकल्प के - परिग्रह का त्याग करके (शुद्धोपयोग हुआ है)। बाह्य में संयोगी अवस्था का त्याग करके - वह निमित्त से कथन है। जिस प्रकार घातीकर्म का नाश करके (केवलज्ञान हुआ) (उस प्रकार) कहा - वह निमित्त से कथन है। उस समय उस परमाणु की पर्याय अकर्मरूप होनेवाली थी उसका यहाँ निमित्त से कथन है। आहाहा !

आत्मा अपने ज्ञायकभाव को प्राप्त करता है, वह शुद्धोपयोगरूप हुये (आत्मा) के द्वारा पाया जाता है। शुद्ध उपयोग है वह मुनिपना है। आहाहा ! अरेरे...! इस समय कहते

हैं कि, शुभजोग ही होता है ! तो मुनिपना नहीं होता। शुभजोग ही हो तो सम्यग्दर्शन भी नहीं होता, इसका (यह) अर्थ हुआ।

यहाँ तो कहते हैं कि, **`वास्तव में इस (शुद्धात्मस्वभाव को प्राप्त) आत्मा के शुद्धोपयोग के प्रसाद से हुआ जो शुद्धात्मस्वभाव से (शुद्धात्मस्वभावरूप से) उत्पाद है...'** (अर्थात्) केवलज्ञान की पर्याय का जो उत्पाद है। **`वह, पुनः उसरूप से प्रलय का अभाव होने से...'** (नष्ट होगी ऐसा नहीं)। आहाहा ! जो सर्वज्ञ पर्याय - केवलज्ञान की (पर्याय) उत्पन्न हुई उस उत्पाद का अब पुनः नाश हो जाये, ऐसा नहीं। आहाहा! **`पुनः उसरूप से प्रलय का अभाव होने से...'** वह उत्पाद **`विनाश रहित है;...'** केवलज्ञान का जो उत्पाद है वह विनाश रहित है, आहाहा!

`और (उस आत्मा के शुद्धोपयोग के प्रसाद से हुआ) जो अशुद्धात्मस्वभाव से विनाश...'** आहाहा ! **`वह पुनः उत्पत्ति का अभाव होने से,...' (उत्पादहीन व्यय है)। उत्पन्न हुआ उसका अभाव नहीं और विनाश हुआ उसका अब पुनः उत्पाद नहीं। आहाहा ! फिर से...

`शुद्धोपयोग के प्रसाद से हुआ) जो अशुद्धात्मस्वभाव से विनाश है वह पुनः उत्पत्ति का अभाव होने से,...' (अर्थात्) व्यय हुआ सो व्यय हुआ, अब उसका उत्पाद नहीं होगा। केवलज्ञान का उत्पाद हुआ सो हुआ, अब उसका विनाश नहीं होगा। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई ! आहाहा !

इस प्रकार यहाँ पर तो सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में भी ऐसा वर्णन किया (समयसार-३८ गाथा और प्रवचनसार-९२ गाथा में) भाई ! आहाहा !

जिस काल में जो पर्याय होती है उसका निर्णय स्व प्रति झुकने से होता है और स्व प्रति झुकने से जो सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई अब उसका नाश होगा ऐसा नहीं, आहाहा ! केवलज्ञान की जिस पर्याय का उत्पाद हुआ वह व्ययरहित उत्पाद है। अब उसका कभी भी नाश होगा नहीं। आहाहा ! ऐसा भगवानआत्मा ! ओहोहो...! क्या शैली...! क्या वस्तु स्थिति...! जिस समय पर जो पर्याय षट्कारकरूप से (परिणमित होनेवाली हो वह) परिणमित होती है, ऐसा निर्णय जब होता है, तब उसकी पर्याय का झुकाव द्रव्य प्रति होता है। उस काल में जीव को मिथ्यात्व का नाश और समकित की उत्पत्ति होती है और जो समकित की उत्पत्ति हुई उसका अब नाश नहीं होगा और मिथ्यात्व का नाश हुआ उसकी अब उत्पत्ति नहीं होगी। भाई ! (३८ गाथा और ९२ गाथा) के साथ मिलान किया। आहाहा ! समझ में आया ? बहुत मार्ग मूक्ष्म, बापू ! आहाहा !

मुमुक्षु :- जोणनी क्षायिक कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह जोणनी क्षायिक नाम नहीं कहा ! बहिन को (चंपाबहिन को)

जोणनी क्षायिक (स्मरण में) आया था वह भी स्थिति इस प्रकार है। आहाहा!

भगवानआत्मा ! पूर्ण ज्ञान आनंद की पर्याय के लिये जब स्व प्रति झुककर पूर्ण आश्रय किया अर्थात् पूर्ण पर्याय (प्रगट) हुई, उस पूर्ण पर्याय का अब नाश नहीं (होगा)। वह केवलज्ञान की पर्याय सादि-अनंत (काल) वैसी की वैसी रहेगी। भले ही वही की वही नहीं, ऐसा कहेंगे। आहाहा ! बाद में उत्पाद-व्यय-ध्रुव को सिद्ध करेंगे। आहाहा!

ज्ञानस्वरूप भगवानआत्मा ! सर्वज्ञ स्वभावी प्रभु ! उसका आश्रय (लेकर) षट्(कारक की) परिणति-पर्याय हुई, ऐसा होने पर जब अंतर्मुख हुआ तब उसे पूर्ण (स्वरूप का) आश्रय हुआ, वह स्वतंत्र कर्तारूप आश्रय हुआ (और) तब उसे केवलज्ञान की कर्ता-कर्म आदि (कारकों से पर्याय) उत्पन्न हुई। आहाहा ! वह केवलज्ञान उत्पन्न हुआ वह अब नाश नहीं होगा। यद्यपि पर्याय एक समय की है अत: दूसरे समय नाश (तो) होगा किन्तु उस समय नाश होकर अब राग की, मिथ्यात्व की या अशुद्धता की (पर्याय) उत्पन्न नहीं होगी, ऐसा कहना है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो बापू ! प्रभु का मार्ग (है), भाई ! आहाहा !

आत्मा अंदर अनंत गुण के प्रभु(त्व) से भरा भगवान है। आहाहा ! जिसने अंतर में स्वभाव (के प्रति) पर्याय (को) - वर्तमानदशा (को) झुकायी, उसे जो कुछ दर्शन होता है, (अर्थात्) सम्यक्दर्शन उत्पन्न हुआ वह अब मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं होगा। आहाहा ! `शुद्धनयच्युता' ऐसा आश्रव (अधिकार में) आता है। किन्तु वह तो एक ज्ञान करने की बात है। आहाहा ! समझ में आया ?

भगवानआत्मा ! अनंत आनंद और अनंत ज्ञान का भंडार (है)। पर्याय के षट्कारक के परिणाम का जब निर्णय करता है तब वह पर्याय द्रव्य के प्रति झुकती है। स्वतंत्र कर्ता होकर (झुकती है) हाँ ! आहाहा ! बापू ! मार्ग कोई न्यारा है ! यह तो दुनिया में इस समय कहीं भी सुनने को नहीं मिले ऐसा है। ऐसी चीज हो गई है कि इस समय कहीं भी सुनाई नहीं देती। ऐसी चीज हो गई है इस समय, आहाहा!

जब पर्याय (का) अंतर में लक्ष गया तब वह परिणति - पर्याय (अपने) षट्कारक से स्वतंत्र कारणरूप होकर - स्वतंत्र होकर अंदर गई है। आहाहा ! तब सम्यग्दर्शन हुआ। पूर्णानंद का नाथ परमात्मा स्वयं स्वभाव से वस्तु है, उसकी प्रतीति के साथ सम्यक्ज्ञान और आनंद का जो स्वाद आया, आहाहा ! वह पर्याय उत्पन्न हुई सो हुई, उसका अब नाश नहीं होगा। आहाहा ! और जो मिथ्यात्व पर्याय का नाश हुआ वह अब उत्पन्न नहीं होगी। मुनियों संतों की पुकार यह है। आहाहा !

भगवान तुम्हारा द्रव्य और गुण तो त्रिकाल है वह नाश कैसे हो ? ऐसी जिसे द्रव्य

और गुण की अभेद दृष्टि हुयी, आहाहा ! सम्यग्दर्शन हुआ, धर्म का प्रथम सोपान हाँ ! (वह अब नाश नहीं होगा)। आहाहा ! यह द्रव्यस्वभाव भगवानआत्मा पूर्नणानंद का नाथ प्रभु, उसकी जहाँ दृष्टि हुयी वह दृष्टि अब हुयी सो हुयी, अब नाश नहीं होगी। आहाहा ! उसे जो मिथ्यात्व का, अशुद्धता का नाश हुआ, वह अब पुनः मिथ्यात्व उत्पन्न नहीं होगा। आहाहा !

यहाँ पर कहते हैं कि भगवानआत्मा ! अनंत आनंद और ज्ञान का समुद्र - सागर है प्रभु ! तुझे तेरी ख़बर नहीं, आहाहा ! तेरे में तो प्रभु ! अनंत ज्ञान... अनंत आनंद... अनंत शांति... अनंत स्वच्छता... अनंत ईश्वरता... अनंत... अनंत भरी है !! अरेरे...! उसे कहाँ स्वीकार होता है ? दीन होकर बैठा था उसे प्रभुता का भान हुआ। आहाहा ! उसे यहाँ पर सम्यग्दर्शन - धर्म की पहली सीढ़ी कहने में आता है। आहाहा ! और वह सीढी प्रगट हुई सो हुई, वह अब मिथ्यात्वपने को प्राप्त नहीं होगा। आहाहा ! और जो मिथ्यात्व का नाश हुआ अब वह पुन: मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं होगा। आहाहा!

यह ऐसा द्रव्य और वस्तु अप्रतिहत है। भगवान(आत्मा) ! नित्यानंद प्रभु ! (है)। अंदर नित्य द्रव्य और नित्य गुण जो है वह कभी भी नाश होता है ? ऐसा जिसको इसके आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ (वह नाश नहीं होगा)। आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा से सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा ! भाई ! कठिन बातें (हैं)। बापू ! अंदर में स्वभाव भरा है उसका जब स्वीकार होता है आहाहा ! तब जीव को अंतर में निर्मल सम्यक्दृष्टि होती है। वह निर्मलता हुई सो हुई, अब वह मलिन होनेवाली नहीं, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा !

यहाँ पर (चलते अधिकार में) केवलज्ञान की बात करते हैं कि, जो शुद्धोपयोग के प्रसाद से केवलज्ञान का उत्पाद हुआ और शुद्धोपयोग के प्रसाद से अशुद्ध अवस्था का विनाश हुआ (उसका) **`पुन; उत्पत्ति का अभाव होने से, उत्पाद रहित है।'** आहाहा! उस संसार अवस्था का नाश (हुआ) और केवलज्ञान - मोक्षदशा - परमानंद की प्राप्ति का उत्पाद (हुआ), (उसका अब नाश नहीं होगा)। संसार का जो नाश हुआ वह अब उसे उत्पन्न होगा नहीं। मोक्ष अर्थात् परम आनंद का लाभ। भगवानआत्मा में अतीन्द्रिय आनंद है, उसकी पर्याय के अंदर में अतीन्द्रिय आनंद के पूर्ण लाभ का नाम मोक्ष (है)। वह मोक्ष हुआ सो हुआ, उसे संसार अब होगा नहीं। आहाहा !

ऐसा कहकर क्या कहते हैं ? कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि, परमात्मा होते हैं किन्तु लोक में जब राक्षसों का ज़ोर बढ़ जाता है, भक्तों को प्रतिकूलता आती है तब अवतार धारण करते हैं ! वह बात बिलकुल अज्ञान है। समझ में आया ? आहाहा!

यहाँ पर वह सिद्ध करना है कि, जिसके अंदर में भगवानआत्मा ! पूर्णानंद का नाथ प्रभु ! आहाहा ! आबाल-गोपाल के अंदर में प्रभु पूर्ण पड़ा है। और वहाँ तो (समयसार-१७ गाथा में) ऐसा भी कहा न ! आहाहा ! प्रभु ! तेरी वर्तमान पर्याय में वह ज्ञान और आनंद का कंद प्रभु तुझे जानने में आ रहा है ! आहाहा ! क्या शैली !! क्या शैली...!! आहाहा ! तेरी ज्ञान की जो वर्तमान प्रगट दशा है न उस प्रगट दशा की ताक़त इतनी है कि वह द्रव्य को जानती है किन्तु तेरा लक्ष नहीं अत: जानने पर भी जानता नहीं, आहाहा ! अरे...! ऐसी बातें !

संप्रदाय में तो दया का पालन करना, सेवा करना, भक्ति करना, पूजा करना, व्रत का पालन करना (इसमें धर्म होता है ऐसा मानते हैं) अरे भगवान ! सुन तो सही ! वे तो सब राग की क्रियाएं हैं। वे तो जड़ की क्रियाएं हैं। आत्मा की क्रिया नहीं। आहाहा ! जड़ अर्थात् राग अचेतन है, (अत:) ऐसा (कहा)। आहाहा !

यहाँ तो भगवानआत्मा ! सच्चिदानंद स्वरूप ! पूर्णानंद प्रभु (है)। (उसमें) जिसने अंतर में पर्याय को स्वतंत्ररूप से झुकाया है, आहाहा ! और जो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, (वह) परमात्मपद जो शक्तिरूप था वह पर्याय में - दशा में प्रगट हुआ (है)। आहाहा ! जैसे लींडी पीपर में चौंसठपहरी तीखापन का रस पूरा भरा है। यह लींडी पीपर - छोटी पिपर उसमें चौंसठपहरी रस भरा है कि, जिससे उसे घोंटने से चौंसठपहरी व्यक्तता बाहर आती है। अंदर है वह बाहर आता है। कोई ऊपर से बाहर आता है, ऐसा नहीं। इसकी तो अज्ञानी को ख़बर पड़ती है। आहाहा ! किन्तु यहाँ पर कहते हैं, प्रभु ! तेरे स्वभाव में चौंसठपहरी अर्थात् रुपिया। रुपिया-सोलह आने (अर्थात्) पूर्ण आनंद, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शांति अंदर भरी है। आहाहा ! इसका जिसने अंदर में आश्रय लिया (उसे पर्याय में आनंद प्रगट हुआ)। आहाहा ! कठिन कार्य बहुत ! सारी दुनिया को खुश रखना, व्यापार में सारा दिन बेचारा पापी पाप में पड़ा है, यह व्यापार (करूं) और यह करु... यह करूं... यह करूं... स्त्री-पुत्र की देखभाल करूं, सारा दिन पाप (में पड़ा हो), अब उसे यह बात करना ! आहाहा! भाई तेरा रूप तो राग से निवृत्तस्वरूप है। आहाहा ! ऐसा जो भगवानआत्मा ! अपनी सम्यग्दर्शन की पर्याय को स्वतंत्ररूप से कर्ता होकर अंदर झुकाता है। आहाहा ! ऐसी सम्यग्दर्शन की पर्याय (जिसे प्रगट हुई हो वह) भले ही गृहस्थाश्रम में हो, तथापि वह पर्याय हुई सो हुई, अब उत्पन्न हुई तो उसका विनाश नहीं (होगा) और उसे जो मिथ्यात्व का नाश हुआ उसका पुन: उत्पाद नहीं (होगा)। आहाहा ! इस प्रकार जिसे केवलज्ञान-परमात्मदशा (प्रगट हुई) - स्वरूप में जो सोलह आने - चौंसठपहरी अर्थात् पूर्ण शक्ति थी, (वह प्रगट हुई, उसका अब नाश नहीं होगा)। लींडी पीपर की (बात) उसे

स्वीकार होती है। क्योंकि वैद (देते हैं, उसमें) तीखापन दिखता है। घोंटने से चौंसठपहर तीखापन (बाहर) आता है और हरा रंग (दिखाई देता है)। अंदर हरा रंग है वह बाहर आता है। बाक़ी वैसे तो बाहर से काली है। आहाहा ! इस प्रकार अंदर है वह घोंटने से बाहर आता है। ऐसा भगवानआत्मा ! अरेरे...! किस प्रकार स्वीकार हो ? भिखारी होकर फिरता है उसे परमात्मा हूँ यह बात किस प्रकार स्वीकार हो? आहाहा !

परमात्मा = परम+आत्मा। परम स्वरूप बिराजमान भगवानआत्मा है। आहाहा ! उसका भरोसा-विश्वास आया और उसमें लीनता - स्थिरता शुद्ध उपयोग से हुई (तब केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है), आहाहा ! शुद्ध उपयोग अर्थात् ? (स्वरूप के आश्रय से प्रगट हुये उपयोग को शुद्ध कहते हैं)। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव तो राग है। वह कोई शुद्धउपयोग नहीं। वह तो अशुद्ध उपयोग है। आहाहा! भारी कठिन कार्य, भाई !

मुमुक्षु :- फिर तो सब 'एकान्त है' ऐसा कहेंगे न !

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहें, कहें, दूसरा क्या कहें ? भले ही कहें, उसमें कोई एतराज नहीं, बापू ! 'जामे जितनी बुद्धि है, इतनो देय बताय, ताको बुरो न मानिये, और कहाँ से लाय ?' वह कहाँ से लाये बेचारा ? आहाहा ! अरेरे...!

यहाँ कहते हैं प्रभु ! जो अंदर में - स्वभाव में पूर्ण ज्ञान और आनंद भरा है, उसका जिसने अंतर में आश्रय लेकर शुद्ध उपयोग के परिणमन से (केवलज्ञान प्रगट किया, उसका अब नाश नहीं होगा)। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोगवासना, व्यापार-धंधे के परिणाम - वे सब तो पाप हैं और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव पुण्य हैं। दोनों अशुद्ध हैं। आहाहा ! उस अशुद्धता का नाश करके जिसने, शुद्ध स्वभाव के सन्मुख होकर, शुद्ध परिणमन - शुद्ध उपयोग प्रगट किया है, उससे उसे केवलज्ञान हुआ, वह उत्पाद विनाश रहित है और **'जो अशुद्धात्मस्वभाव से विनाश है वह पुन: उत्पत्ति का अभाव होने से, उत्पाद रहित है।'** आहाहा ! ऐसी बातें ! नये अन्जान मनुष्य को ऐसा लगता है कि, यह क्या (कहते) हैं ? घर में मिलता नहीं, (बाहर) धर्म सुनने जाता है वहाँ कहीं मिलता नहीं। आहाहा ! भाई ! तेरे घर की बात है, प्रभु ! आहाहा !

'इससे (यह कहा है कि) उस आत्मा के सिद्धरूप से अविनाशीपन है।' (अर्थात्) वह परमात्मदशा है वह शक्तिरूप थी, अंदर में स्वभावरूप सामर्थ्य था, ऐसा जिसे पर्याय में - अवस्था में प्रगट किया, वह सिद्धरूप से अविनाशी है। वह पर्याय प्रगट हुई सो हुई, वह अविनाशी है। समझ में आया ? आहाहा !

इस मनुष्यगति में २५-५०-६० करोड़ कमाया (बाद में) गति बदल जायेगी। (और) कहीं अन्य जगह पशु में जायेगा। (स्वरूप का तो) भान नहीं। (कभी) पाप करता है और

पुण्य करता है। फिर पाप करके जाता है पशु में ! आहाहा ! भले ही क्रोड़ाधिपति हो, अरबपति हो ! आहाहा ! जिसने केवल पाप ही किये हैं, धर्म तो है नहीं किन्तु पुण्य का भी जिसे ठिकाना नहीं। उसकी गति बदल जायेगी। यह सिद्धगति बदलेगी नहीं, आहाहा ! यहाँ अरबपति (होता हो), दस-दस लाख की महीने की आमदनी हो, बहुत मान-सन्मान मिलता हो, वह मरकर बकरी का बच्चा होता है ! आहाहा ! वह छिपकली का बच्चा होता है ! अररर...! वह गति पलट जाती है, बापू ! यह (सिद्धगति) पलटती नहीं। चारगति पलट जाती है किन्तु सिद्धगति पलटती नहीं। आहाहा ! ऐसा क्या है यह ? आहाहा ! ऐसा है। प्रभु !

(यहाँ पर कहते हैं) `**अविनाशीपन है।**' (अर्थात्) आत्मा की जो परमात्मदशा प्रगट हुई, (वह अविनाशी है)। जिस प्रकार लींडी पीपर में चौंसठपहरी तीखापन और हरा रंग था वह बाहर आया है, वह हरा रंग अब काला होनेवाला नहीं और चौसठपहरी तीखापन है वह अब कम होनेवाला नहीं। आहाहा ! अब पंद्रह आने और तेरह आने तीखापन नहीं होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

समझ में आया अर्थात् (क्या) ? समझे जब तो ठीक ! किन्तु किस पद्धति से कहा जाता है - वह समझ में आता है ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं, `**उस आत्मा के सिद्धरूप से अविनाशीपन है। ऐसा होने पर भी...**' अर्थात् क्या ? कि, परमात्मदशा प्रगट हुई, (वह अविनाशी है)। स्वभाव में शक्तिरूप से तो आत्मा परमात्मास्वरूप ही है। समभाव से भरा भगवान है। अरे...! अरे...! यह किस प्रकार (स्वीकार हो) ? `समभाव' - जीव को प्रगट पर्याय में जब समभाव प्रगट होता है, तब कहते हैं कि, वह वीतरागता अविनाशी होती (है)। वह समभाव अब नाश होगा नहीं। आहाहा !

(अब कहते हैं) `**ऐसा होने पर भी आत्मा के उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का समवाय विरोध को प्राप्त नहीं होता...**' आहाहा ! क्या कहते हैं ? भाई ! बापू ! ये तो अलौकिक बातें हैं। ये तो अंतर में मंत्र जैसी बातें हैं, भाई ! यह कोई कथा-वार्ता नहीं। दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो, तुम्हारा कल्याण (हो जायेगा)। वह तो राग है। भाई ! वहाँ कल्याण कैसा ? वे तो राग हैं। आहाहा!

`**ऐसा होने पर भी...**' अर्थात् (क्या) ? कि, भगवानआत्मा अंदर सिद्धस्वभावी है। उसकी अंतर के अनुभव में शुद्ध उपयोग से दशा प्रगट हुई, वह अब अविनाशी है। उसका अब नाश होगा नहीं। उसे संसार (में) पुन: अवतार धारण करना नहीं पड़ेगा। आहाहा ! वह तो (पूर्ण दशारूप) हुआ सो हुआ - उत्पन्न हुआ सो हुआ, (अब उसका नाश नहीं होगा)।

ऐसा कहते हैं।

`ऐसा होने पर भी उस आत्मा के उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का समवाय विरोध को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह विनाश रहित उत्पाद के साथ, उत्पाद रहित विनाश के साथ और उन दोनों के आधारभूत द्रव्य के साथ समवेत (तन्मयता से युक्त एकमेक) है।' अरेरे...! यह क्या कहते हैं ? कहते हैं प्रभु ! एकबार सुन तो सही ! यहाँ तो प्रभु कहकर ही उसे बुलाते हैं, आत्मा अंदर प्रभु है ! इसकी उसे ख़बर नहीं, आहाहा ! एकबार सुन ! तुझे हमने ऐसा कहा कि, जो आत्मा अंदर (पूर्ण) स्वभावरूप है ऐसा सिद्धदशा - परमात्मा दशा(रूप) प्रगट हुआ। तो उसे हमने अविनाशीपन (प्रगट हुआ ऐसा) कहा। अविनाशीरूप से वह रहेगा, ऐसा कहा। तथापि उत्पाद (भी) हुआ है और व्यय भी (हुआ) था। संसार का व्यय, सिद्ध की उत्पत्ति और द्रव्य-ध्रुव का अंदर नित्य रहना। आहाहा !

अरेरे...! ऐसा मनुष्यभव मिला उसमें पशु की तरह सारा दिन मज़दूरी करता है।

मुमुक्षु :- पैसा इकट्ठा करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह कहीं पैसा इकट्ठा नहीं करता। ममता करता है। पैसा तो पूर्व का पुण्य हो तो आता है। क़म बुद्धिवान देखे नहीं ? हमने तो बहुत देखे हैं। बारदान, समझ में आया ? बोरा। महिने के पाँच-पाँच लाख कमाते हैं। उसमें क्या है ? देखे हैं बँबई में।

एक मुसलमान को देखा था। '६८ की साल की बात है। संवत-६८। दुकान का माल लेने गये थे। पालेज में हमारी दुकान थी न ! भरुच और बडौदा के बीच पालेज (आता है)। वहाँ दुकान है इस समय। बड़ी दुकान है। उस दिन आखरी बार माल लेने (बँबई) गये थे। शायद आखरी बार ही गये थे। उस मुसलमान की दुकान पर गया। वह मुसलमान जड़ जैसा सामने होटल में बैठा था और हमारे उमराला गाँव का नौकर था। अत: बाद में मैंने कहा `तेरा सेठ कहाँ है ?' दो-चार पेटी माल लेना था। हमारा व्यापार बड़ा था न ! अत: उस नौकर ने हमें कहा कि, `एक-दो पेटी मेरे लिये ले लेना और खानगी में मुझे पैसे दे देना !' यह बड़ा व्यापारी था। बड़ा गोडाउन भरा था। मैंने कहा, `भाई ! हम ऐसा नहीं करते।' यह तो २२ बरस की उम्र की बात है। आहाहा ! ६८ बरस पहले की बात है। इस जड़ देह को तो इस समय ८९ बरस हुये। तब कहा था कि, `हम ऐसा नहीं करते। तेरा सेठ कहाँ है ?' सामनेवाली होटल में बैठा था। जड़ जैसा लगता था। यह तो ६८ (बरस पहले की) बात (है)। उस समय में एक बरस की ५०,००० की आमदनी (थी)। उस समय में अर्थात् ? उस समय के ५०,००० अर्थात् इस समय में ३० गुना - ३५ गुना होता है ! उस समय का

एक लाख और इस समय के २५ लाख समान हैं। आहाहा ! स्थूल बुद्धि का (सेठ) बैठा था और नौकर हमारे गाँव का था। आहाहा ! वह तो स्थूल बुद्धि का है, किन्तु पूर्व का पुण्य है न अत: इतनी ५०,००० की आमदनी है ! उस समय में ५०,००० की आमदनी अर्थात् इस समय की ३० गुना मानो ! (इस समय के) पँद्रह लाख होते हैं ! आहाहा ! क़म बुद्धिवाले (को) भी पूर्व के पुण्य हो तो (पैसा) आता है और बड़ा बुद्धिमान हो किन्तु महीने में पाँच हजार कमाना हो तो भी कठिन पड़ता है! बुद्धि से कहाँ (पैसा) मिलता है !

यहाँ तो कहते हैं कि, वह सब कमाने का (भाव) रागभाव (है)। आहाहा ! (और) कदाचित् धर्म के नाम पर खर्च करने का भाव (आये) तथापि वह राग है, आहाहा! ऐसे राग से रहित प्रभु अंदर (बिराजमान है)। आहाहा ! जिसे अंदर शुद्धउपयोग की दशा हुई है (और) उसके फल स्वरूप सिद्धपद को प्राप्त हुये वे अविनाशी हैं। आहाहा! वे तथापि उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त हैं। समझ में आया ? Logic से - न्याय से समझा है कि नहीं ?

क्यों (तीनपने से युक्त हैं) ? कि, अविनाशी उत्पाद हुआ ऐसा हमने कहा तथापि (साथ में) पूर्व की पर्याय का व्यय (भी) हुआ (है)। वर्तमान पर्याय का उत्पाद है और ध्रुवरूप (स्थिर) है। ऐसा तीनपने से युक्त वह अविनाशी है। आहाहा ! भगवान प्रत्येक वस्तु ! एक-एक अवस्था से उत्पन्न होती है, पूर्व की अवस्था का अभाव होता है और ध्रुवरूप स्थिर रहती है। तीनों एक समय में होते हैं। आहाहा ! `उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' (आता है न) ! आत्मा या परमाणु सत् है। यह मिट्टी भी परमाणु है और जड़ है। यह कोई एकरूप नहीं। इसके टुकड़े करने पर आखिरी टुकड़ा रहता है उसे परमाणु कहते हैं। परम+अणु - उसमें भी उत्पाद, व्यय और ध्रुव हैं।

यह देखिये ! इस समय इस परमाणु की पर्याय खून की है। पूर्व में रोटी की थी। रोटी की पर्याय व्यय होकर इस (खून की) हुई और परमाणु तो अंदर नित्य रहनेवाले हैं। समझ में आया ? अरे...! ऐसा है। प्रभु ! क्या करे ? आहाहा!

इस प्रकार भगवानआत्मा में जो राग है उसका व्यय होता है और अरागी सिद्ध की अवस्था उत्पन्न होती है और ध्रुव वस्तु (नित्य रहती है)। केवल उत्पाद-व्यय-पर्याय जितना आत्मा नहीं। यह तो त्रिकाली अविनाशी है। जिसकी आदि नहीं, अंत नहीं ऐसा त्रिकाली नित्यानंद प्रभु है। द्रव्य अपेक्षा वस्तु तो नित्यानंद(स्वरूप) है। आहाहा! `द्रव्ये नित्य छे, पर्याये पलटाय' आता है न श्रीमद् में (आत्मसिद्धि में) - **`आत्मा द्रव्ये नित्य छे, पर्याये पलटाय, बालादि वय त्रणनुं ज्ञान एकने थाय।'** आहाहा ! तीनों का ज्ञान एक आत्मा

को है, आहाहा ! `बालादि वय त्रणनुं' (अर्थात्) शरीर की बालक अवस्था का व्यय होना, युवान अवस्था की उत्पत्ति हो, परमाणु तो नित्य रहनेवाले हैं। आहाहा ! ऐसा मार्ग ! इस प्रकार भगवानआत्मा में अशुद्ध अवस्थारूप संसार का नाश होता है, और केवलज्ञान की सिद्धदशा उत्पन्न होती है तथापि वस्तुरूप से - ध्रुवरूप से तो त्रिकाल है। आहाहा !

जिस प्रकार सोने में कुंडल, कड़े की पर्याय उत्पन्न होती है और पूर्व की कोई कड़ा की पर्याय हो उसका व्यय होता है और सोनापना, पीलापन, स्निग्धता नित्य रहती है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा यह कहाँ से निकाला ? कोई ऐसा कहता था। भाई ! मार्ग तो यह है, बापू ! तेरी चीज की तुझे ख़बर नहीं। आहाहा! अनादि से अँध होकर भटकता है ! आहाहा !

अंदर चैतन्य हीरा सर्वज्ञस्वभाव से भरा भगवान पड़ा है। भाई ! तुझे (ख़बर नहीं)। उसकी प्रथम दृष्टि होती है यानी कि अंदर में सर्वज्ञस्वभाव की पर्याय में - अवस्था में जानने से प्रतीति होती है। सर्वज्ञस्वभाव ज्ञान में आया (और) जानने से प्रतीति होती है कि, यह आत्मा सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु है। प्रतीति की पर्याय हुयी, यह वहाँ अब मिथ्यात्व की पर्याय नहीं होगी। आहाहा ! और जो भ्रमणा थी कि मैं राग हूँ, पुण्य हूँ - ऐसा जो मिथ्यात्वभाव था उसका नाश हुआ, वह अब उत्पन्न नहीं होगा। उसकी अपेक्षा से तो सम्यग्दर्शन की पर्याय अविनाशी हो गयी, आहाहा ! भले ही पलटती (पर्याय) है किन्तु रहेगी नित्य, आहाहा ! इस प्रकार जो केवलज्ञान हुआ वह भले ही पलटता है किन्तु वह केवलज्ञान की पर्याय है पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... सादि-अनंत रहेगी। आहाहा ! ऐसी कथा और ऐसा उपदेश !

ये सब बड़े ५०-५० लाख के और करोड़ के कारखाने करते हैं और नौकर रखते हैं और सब करते हैं... ! वे मानते हैं कि हम करते हैं। बिलकुल करता नहीं... राग - अज्ञान करता है। आहाहा ! वह अज्ञान की उत्पत्ति करता है। वह अज्ञान की उत्पत्ति समय-समय पर, नयी-नयी करता है। आहाहा !

मुमुक्षु :- वह पैसा कमाता है न !

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह पैसा कौन कमाता है ? बिलकुल नहीं कमाता। पैसा तो जड़ है मिट्टी-धूल है। धूल किसके पास आती है ? आई है किसी के पास अंदर (आत्मा में) ? आत्मा तो अरूपी (है)। कोई कमाता नहीं। लोग कहते हैं न कि, यह करोड़पति है ! बिलकुल नहीं है। ऐसे करोड़पति तो कितने ही (चले गये)। करोड़पति!! करोड़ अर्थात् जड़-धूल, उसका स्वामी अर्थात् जड़ का स्वामी। `भैंस का स्वामी पाडा' - इस प्रकार करोड़ रुपया जड़ - पैसा। उसका पति जड़-धूल है !! ऐसी बात है, बापू! आहाहा !

मुमुक्षु :- पैसावाला सेठ कहलाता है !

पूज्य गुरुदेवश्री :- सेठ सब मर जानेवाले हैं...! सेठ (सब) मर गये! हमारे फूफा के लड़के कुंवरजीभाई हिस्सेदार थे न ! उनसे किसी ने पूछा होगा कि, तुमको हजार बार कोई सेठ कहे ? (तब उसने कहा) नहीं, नहीं, पाँचसो बार कहे !! हमारी वहाँ पालेज में दुकान है न ! है न इस समय (भी) दुकान है - कुंवरजी जाधवजी की बड़ी दुकान है। अभी जाकर आये, आठ दिन रहे थे। मागसर सुद-११ से मागसर वद-३, आठ दिन रहे थे। आहाहा ! आठ दिन सुना। अरे...! बापू ! तेरे लाख और दो लाख रुपये धूल है। मूर्ख है बड़ा ! आहाहा !

यहाँ तो भगवान की कमाई - जो अंतर्मुख करे वह उसकी कमाई है। आहाहा! कहिये ! ऐसा क्या होगा यह ? सारी दुनिया से न्यारी जात (है)।

विश्व में जाइये तो ऐसा कहते हैं कि, ईश्वर कर्ता है, बापू ! ईश्वर के बिना पत्ता भी नहीं हिलता ! स्थानकवासी में जाइये तो ऐसा कहते हैं कि, दया पालो, व्रत पालो ! श्वेतांबर में जाइये तो ऐसा कहते हैं कि, भक्ति करो, शत्रुंजय की यात्रा करो ! दिगंबर में जाइये तो कहते हैं कि, वस्त्र का त्याग करके प्रतिमा ले लो ! भगवान ! सभी बातों का ज्ञान है, बापू ! ज्ञान नहीं (ऐसा नहीं)। आहाहा!

यहाँ पर प्रभु ऐसा कहते हैं कि, आत्मा जैसा वस्तु(रूप) से अविनाशी है - ऐसी जिसकी दशा (प्रगट हुई), परमात्मा की सिद्धदशा - मोक्षदशा प्रगट हुई, वह भी अविनाशी रहेगी। अविनाशी होने पर भी वह उत्पाद-व्यय-ध्रोव्ययुक्त है। आहाहा ! किस प्रकार है? कि, पूर्व की संसारदशा थी उसका नाश हुआ, परमात्मादशा उत्पन्न हुई और उस पर्याय में ध्रुव वस्तु है वह तो नित्य कायम (रहती) है। आहाहा ! समझ में आया? आहाहा ! ऐसी बात !

`उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का समवाय विरोध को प्राप्त नहीं होता।'** है ? परमात्मदशा हुई और अविनाशी रही, अब उसे अवतार होनेवाला नहीं (यानी कि) संसारदशा होनेवाली नहीं। **`ऐसा होने पर भी उस आत्मा के उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य(ता)...' (है)। (अर्थात्) आत्मा ध्रुव है वह तो अनादि-अनंत ध्रुव है। और अवस्था जो नवीन उत्पन्न होती है वह तो उत्पाद है। पूर्व की अवस्था का नाश होता है (वह व्यय है)। उन तीनों का समवाय - तीनों का संबंध एक समय में **`विरोध को प्राप्त नहीं होता।'** अरे...! ऐसी बातें !

सिद्ध हुये (उनको) अविनाशी पर्याय हुयी, आत्मा की परमात्मदशा हुयी, आत्मा नरमें से नारायण हुआ। आहाहा ! अब कहते हैं कि, (उस) परमात्मदशा जो हुयी उसका नाश होता नहीं अत: (उसे) अविनाशी कहते हैं। तथापि वह अविनाशी पर्याय तीनों से युक्त

है। वर्तमान उत्पन्न पर्याय की अपेक्षा से उत्पाद (हुआ), पूर्व की संसार अवस्था का नाश हुआ उसका नाम व्यय और वस्तुरूप ध्रुव तो नित्य रहती है। आहाहा ! वस्तु जो ध्रुव है उसका तो उत्पाद या व्यय होता नहीं। उसकी पर्याय में उत्पाद-व्यय होता है। अवस्था में - हालत में - दशा में (उत्पाद-व्यय होता है)। दशावान जो वस्तु है वह तो त्रिकाली ध्रुव है। आहाहा ! समझ में आया ?

पानी में तरंग उठती है और वह तरंग विलय को प्राप्त होती है किन्तु (पानी) पानीरूप तो नित्य है। आहाहा ! वैसे आत्मा में सिद्धदशा उत्पन्न होती है, और संसारदशा - दुःख की दशा का नाश होता है, आहाहा ! आनंद की दशा उत्पन्न होती है, दुःख की दशा का नाश होता है तथापि उन दोनों का आधार ध्रुव तो नित्य रहनेवाला है। समझ में आया ? यहाँ तो (ऐसा कहते हैं) (केवलज्ञान) अविनाशी होने पर भी, उसमें विनाश, उत्पाद और ध्रुव(ता) है - ऐसा सिद्ध करना है। वैसी की वैसी पर्याय नित्य रहनेवाली है इसलिये पर्याय से अविनाशी कहा। किन्तु उस पर्याय को एक अविनाशीपन ही है, ऐसा नहीं। वह उत्पन्न (हुई) उस अपेक्षा से उत्पाद है, पूर्व की अवस्था का नाश हुआ, उस अपेक्षा से व्यय है और जिसका आधार त्रिकाल भगवान ध्रुव है, उस अपेक्षा से वह नित्य है। वे अविनाशी सिद्ध भी उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त हैं।

भाषा तो सरल है, प्रभु ! किन्तु उसे दिमाग में (बैठनी चाहिये न) ! दिमाग जड़ (और) अंदर भगवान चैतन्य ! आहाहा ! ऐसी बात जीव को समझनी (पड़ेगी)।

`उन दोनों के आधारभूत द्रव्य के साथ समवेत (तन्मयता से युक्त एकमेक) है। आहाहा ! (अर्थात्) उत्पाद किसी अन्य चीज में है, व्यय किसी अन्य चीज में है और ध्रुव किसी अन्य चीज में है, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। उसी चीज में नवीन अवस्था उत्पन्न होता है उस अपेक्षा से उत्पाद है, आहाहा !

जिस प्रकार लोह की - छुरी (तेज) कराने पर, जो जंग है उसका व्यय होता है, उज्वलता का उत्पाद होता है (और) लोहरूप नित्य रहता है। इस प्रकार इस आत्मा में अज्ञान की - अशुद्धता की जंग है उसका नाश होता है, शुद्धता की पर्याय प्रगट होती है और उसका आधार ध्रुव वस्तु है, (वह) नित्य रहती है। वैसे तो समझ में आये ऐसा है, बापू ! आहाहा !

अरेरे...! दुनिया दुःखी होकर भटक रही है। आहाहा ! उसे यह तत्त्व क्या है, इसकी ख़बर नहीं, आहाहा ! लो, यह कहा, अब भावार्थ आयेगा।

a a a

दि. २१-१-१९७९ - प्रवचन नं. - १५

(प्रवचनसार) १७वीं गाथा का भावार्थ : **`स्वयंभू'**। अर्थात् स्वयंभू आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। उसकी पर्याय में स्वयंभू (अर्थात्) अपने से सर्वज्ञपना प्रगट किया। वह स्वयंभू दो प्रकार से आया था। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अंतराय, मोहनीय (कर्म का) नाश करके (स्वयमेव आविर्भूत हुआ)। अथवा उत्पत्ति अपेक्षा से अपना जो शुद्ध चैतन्य स्वभाव है उसे शक्तिमें से व्यक्त - प्रगट किया। स्वयं स्वयं को पर की अपेक्षा से रहित (प्रगट किया)। पर की सहायता से रहित, पर की अपेक्षा से रहित, पर के आश्रय से रहित, जो आत्मा सर्वज्ञस्वरूपी है। उसका आश्रय लेकर जिसने सर्वज्ञ प्रभु के (आश्रय से) सर्वज्ञपना प्रगट किया।

उसने **`स्वयंभू सर्वज्ञ भगवान के जो शुद्धात्म स्वभाव उत्पन्न हुआ...'** (यानी कि) जो शुद्ध स्वभाव शक्ति में स्वभावरूप तो था, उस स्वभाव के सन्मुख होकर स्वयं जो परमात्मदशा - सर्वज्ञदशा प्रगट हुई, वह कभी भी नाश को प्राप्त होती नहीं। **`शुद्धात्म स्वभाव उत्पन्न हुआ वह कभी नष्ट नहीं होता,...'** आहाहा ! समझ में आया? भले ही एक समय की पर्याय हो, बाद में दूसरे समय पर उसका नाश होता है परंतु उस पर्याय के जैसी की जैसी सादिअनंत (काल) रहेगी। सर्वज्ञपना प्रगट हुआ - उत्पन्न हुआ वह अब नाश को प्राप्त नहीं होगा। आहाहा ! **`इसलिये उनके विनाश रहित उत्पाद है;...'** (अर्थात्) उत्पाद हुआ वह विनाश रहित उत्पाद (हुआ) है। अब वह विनाश को प्राप्त होगा नहीं। आहाहा ! इस प्रकार एक-एक समय में (पर्याय) नष्ट होती है इसलिये वह अनित्य है, किन्तु वह पर्याय वैसी की वैसी सदा रहेगी - उस अपेक्षा से उत्पन्न का नाश होगा नहीं (ऐसा कहना है)। आहाहा !

`और अनादि अविद्या जनित...'** (अर्थात्) अनादि अज्ञान से उत्पन्न **`विभाव परिणाम...' विकारी दशा **`एक बार सर्वथा नाश को प्राप्त होने के बाद फिर कभी उत्पन्न नहीं होते,...'** अज्ञान से उत्पन्न अशुद्धता का व्यय हुआ वह अब उत्पन्न नहीं होगा। उत्पन्न हुआ अब नाश नहीं होगा। नाश हुआ उसका अब उत्पाद नहीं होगा। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा स्वरूप है ! ऐसा स्वरूप जिसकी दृष्टि में ग्रहण होता है (उसकी दृष्टि सर्वज्ञस्वभाव

के प्रति जाती है)। सर्वज्ञस्वभाव भगवान को (प्रगट) हुआ है वह उसकी दृष्टि में कब आती है ? कि, सर्वज्ञ की प्रतीति करने जाता है तब सर्वज्ञ स्वभाव मेरा है, ऐसी प्रतीति होती (है)। तब उसने सर्वज्ञ को माना और जाना कहलाता है। आहाहा !

वह **`अविद्या जनित विभाव परिणाम एक बार सर्वथा नाश को प्राप्त होने के बाद...'** सर्वथा नाश को प्राप्त हुये (ऐसा कहा) न ? **`फिर कभी उत्पन्न नहीं होते, इसलिये उनके उत्पाद रहित विनाश है।'** उत्पाद रहित विनाश है (यानी कि) विनाश हुआ अब उसका उत्पाद नहीं होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

कल तो हम सभी ने इससे अधिक मिलान किया था। कल न ? ३८वीं गाथा और ९२वीं गाथा - ३८वीं समयसार की और ९२वीं प्रवचनसार की। आहाहा ! आत्मा सर्वज्ञ स्वरूपी पूर्ण आनंद(स्वरूप) है, ऐसा जिसे अंतर स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन हुआ, वह ३८ और ९२(गाथा) में ऐसा कहते हैं कि, (वह सम्यग्दर्शन) हुआ सो हुआ, अब वह नाश को प्राप्त नहीं होगा। यहाँ (कहते हैं कि) सर्वज्ञपने का जो स्वभाव था उसके सन्मुख होकर पर्याय की योग्यता में (सर्वज्ञपना प्रगट हुआ है)। एक समय की पर्याय स्वतंत्र है, वह कर्ता होकर सर्वज्ञस्वभाव के प्रति झुकी (है)। एक समय की जो ज्ञान की पर्याय है। उसका स्वभाव स्वरूप का ज्ञान करने का (है)। (स्वरूप का) ज्ञान करने का स्वभाव है। (समयसार) १७-(१८)गाथा। अब, वह पर्याय जो है। वह जब स्वतंत्ररूप से कर्ता होकर स्व सर्वज्ञस्वभाव के प्रति झुकती है, वह (स्वयं) कर्ता होकर झुकती है। (क्योंकि) उस पर्याय में षट्कारकरूप का परिणमन है। समझ में आया ? आहाहा ! पर्याय में षट्कारक का (परिणमन अर्थात्) पर्याय कर्ता है, कर्म है, करण है, संप्रदान है - पर्याय स्वयं के लिये हुई है, स्वयं से हुई है, स्वयं के आधार से हुई है। ऐसी सर्वज्ञ की पर्याय (अपने षट्कारक से हुई है)। वर्तमान पर्याय भले ही सर्वज्ञ की नहीं हो, किन्तु उस पर्याय में स्वतंत्ररूप से षट्कारक के परिणमनरूप होने की ताक़त है। अत: वह पर्याय जब कर्ता होकर द्रव्यस्वभाव के प्रति झुकी (तब सर्वज्ञस्वभाव प्रतीति में आया)। सूक्ष्म बात है। क्योंकि उस समय की ज्ञान की पर्याय भले ही अल्पज्ञ हो, किन्तु उस अल्पज्ञ (पर्याय में) वह ज्ञान सर्वज्ञस्वभावी (स्वरूप को) जानता है। जानता है (ऐसा कहा)। किन्तु वह जानता है फिर भी जानता क्यों नहीं ? कि, पर्याय में स्वतंत्र कर्ता होकर, पर्याय कर्ता (होकर अर्थात्) अपनी पर्याय की वह स्वतंत्र कर्ता होकर द्रव्य के प्रति झुकती नहीं। अत: वह जानता होने पर भी जानता नहीं। क्या कहा वह ? आहाहा !

एक समय की ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्वपर प्रकाशक ही है। ऐसा पर्याय का स्वभाव स्व को जानता (है) - द्रव्य को जानता ही है। तथापि वह पर्याय स्वतंत्र होकर -

कर्ता होकर सर्वज्ञ स्वभाव के प्रति झुकती नहीं। अत: वह जानने का स्वभाव होने पर भी जानता नहीं। (जो) कहा (वह) समझ में आया ? आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! वीतराग मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा !

वह ज्ञान की पर्याय जो प्रगट है, उसका स्वभाव स्वतंत्ररूप से जानने का है। यह बात आ गई है, इसलिये कोई कोई लोग को सुनने की कोई अधिक आवश्यकता नहीं लगती - अत: कितने ही ध्यान नहीं रखते (वह हमारे) ख्याल में है। समझ में आया ? आहाहा! एक समय की ज्ञान की पर्याय चाहे तो अल्प हो। (तथापि सर्वज्ञ स्वभाव को जानती है)। पहले (बात) आ गई है इसलिये अब अधिक सुनने से क्या प्रयोजन है? (ऐसा जिसे भाव रहता है) उसने सुनी नहीं। आहाहा ! एक समय की ज्ञान की पर्याय का स्वपर प्रकाशक स्वभाव होने से स्व को जानती है। तथापि वह ज्ञान की पर्याय स्वतंत्ररूप से कर्ता होकर उस सर्वज्ञस्वभाव के प्रति झुकती नहीं। अत: वह जानने का स्वभाव होने पर भी जानती नहीं। आहाहा ! किन्तु वह एक समय की पर्याय द्रव्य का आश्रय लेती है इसलिये पराधीन (है) ऐसा (नहीं)। **`भूयत्थ मस्सिदो खलु'** (समयसार) ११वीं (गाथा में आया न) ! आहाहा ! किन्तु उस पर्याय में स्वतंत्र कर्तापना है अत: वह पर्याय कर्ता होकर द्रव्य के प्रति झुकती है। तब भी उसे द्रव्य का ज्ञान था फिर भी जानता नहीं था ऐसा जानने में आ गया है। आहाहा ! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई ! मार्ग कोई ऐसा है !

ग्यारह अंग का ज्ञान अनंत बार किया किन्तु वह पर्याय में पर का ज्ञान है। वह ज्ञान परज्ञेय निमग्न है। परज्ञेय निमग्न है। (वह) क्या कहा प्रभु ? कि, ग्यारह अंग में करोड़ श्लोक, अरबों श्लोक का उसकी ज्ञान की पर्याय में ज्ञान हुआ, तथापि वह तो परज्ञेय है। (क्योंकि) उसमें स्वज्ञेय भगवान(आत्मा) आया नहीं, आहाहा ! एक एक आचार अंग में १८ हजार पद और एक एक पद में ५१ करोड़ से अधिक श्लोक! इस (प्रकार) सूयगडांग, ठाणांग, ऐसा ग्यारह अंग का (ज्ञान) जीव ने किया है, भाई! किन्तु वह ज्ञान की पर्याय है वह परज्ञेय में निमग्न है। स्वज्ञान करने का उस पर्याय का स्वभाव होने पर भी (स्वज्ञान नहीं किया इसलिये) उस पर्याय में ग्यारह अंग का ज्ञान (हुआ) वह परज्ञेय निमग्न है। आहाहा ! वह परज्ञेय में निमग्न है। आहाहा! उस पर्याय का जो द्रव्य को जानने का स्वभाव है, वह पर्याय कर्ता होकर परज्ञेय में निमग्न (हुई) है उसे छोड़कर, पर्याय (स्वयं) कर्ता होकर द्रव्य के प्रति झुकती है। तब वह (स्वभाव) जानने में (आता) है उसका ज्ञान हुआ। आहाहा ! ऐसा मार्ग!

मुमुक्षु :- ज्ञान की मुख्यता है या झुकने की मुख्यता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- उस तरफ झुका तो द्रव्य के कारण झुका, ऐसा नहीं। केवल पर्याय कर्ता होकर अंदर झुकती है। वह स्वयं स्वतंत्र है। सूक्ष्म बात है, भाई ! आहाहा! जीव को अनंतकाल हुआ... अनंतकाल हुआ... आहाहा ! वह पर्याय स्वयं स्वतंत्र कर्ता-कर्म-करण-संप्रदान (आदि षट्कारकरूप) होकर (द्रव्य के प्रति झुकती है)। हमें यहाँ पर कर्ता(कारक) पर अधिक ज़ोर है। वह पर्याय जब ज्ञायक के प्रति झुकती है तब उसका सम्यग्दर्शन में यथार्थ ज्ञान होता है और तब उसने सर्वज्ञ को जाना। आत्मा से साथ (सर्वज्ञ के स्वरूप का) मिलान किया तब उसने सर्वज्ञ को जाना, ऐसा कहने में आता है। आहाहा ! ऐसा है।

यहाँ पर कहते हैं, `**उनके उत्पाद रहित विनाश है।**' आहाहा ! सर्वज्ञ पर्याय उत्पन्न हुई वह विनाश रहित उत्पाद है और अविद्या जनित रागद्वेष आदि का जो नाश हुआ, वह उत्पाद रहित नाश है। आहाहा ! उत्पाद विनाश रहित है (और) विनाश उत्पाद रहित है। आहाहा ! भाई ! यह बात स्वीकृत होना (वह अलौकिक है) ! आहाहा!

`**इसप्रकार यहाँ यह कहा कि वे सिद्धरूप से अविनाशी हैं।**' `**सिद्धरूप से अविनाशी है।**' ऐसा कहा था न पहले ? सिद्ध दशा हुई - परमात्मदशा हुई वह अविनाशी है। ऐसा होने पर भी... है (अंदर) ? `**इसप्रकार अविनाशी होनेपर भी...**' आहाहा ! सिद्ध की परमात्म दशा नमो सिद्धाणं वह सिद्ध की दशा सिद्धरूप से जो प्रगट हुई, वह उत्पन्न हुई उसका अब विनाश नहीं और पूर्व की जो अल्प ज्ञानदशा (और विभाव) आदि अशुद्धता थी उसका नाश हुआ, अब उसका उत्पाद नहीं। इसप्रकार पर्याय का अविनाशीपना होनेपर भी (यानी कि) सिद्ध की दशा का इसप्रकार अविनाशीपन होनेपर भी `**वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त हैं;...**' आहाहा ! वह दशा उसकी अविनाशी है। तथापि वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त हैं। है ? `**क्योंकि शुद्ध पर्याय की अपेक्षा से उनके उत्पाद है, अशुद्ध पर्याय की अपेक्षा से व्यय है और उन दोनों के आधारभूत आत्मतत्त्व की अपेक्षा से ध्रौव्य है।**' आहाहा !

ऐसी सिद्ध की दशा का भी निर्णय करता है कि उनकी पर्याय अविनाशी होने पर भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव सहित है। आहाहा ! ध्रुव(स्वरूप) अविनाशी है उसमें उत्पाद-व्यय नहीं। यहाँ पर अविनाशी पर्याय है तथापि उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव है। आहाहा ! समझ में आया ? `**उन दोनों के आधारभूत आत्मतत्त्व की अपेक्षा से ध्रौव्य है।**' आहाहा! वह १७ गाथा हुई। आहाहा !

`**अब, उत्पाद आदि तीनों** (**उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य**) **सर्व द्रव्यों के साधारण है इसलिये...**' आहाहा ! सर्व द्रव्य का - प्रत्येक द्रव्य का उत्पत्ति, व्यय और ध्रौव्य साधारण स्वरूप होने से, `शुद्ध आत्मा (केवली भगवान और सिद्ध भगवान) के भी अवश्यम्भावी है...' क्या

अथोत्पादादित्रयं सर्वद्रव्यसाधारणत्वेन शुद्धात्मनोऽप्यवश्यंभावीति विभावयति -

उप्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अट्ठजादस्स।
पज्जाएण दु केणवि अट्ठो खलु होदि सब्भूदो।।१८।।
उत्पादश्च विनाशो विद्यते सर्वस्यार्थजातस्य।
पर्यायेण तु केनाप्यर्थः खलु भवति सद्भूतः।।१८।।

यथाहि जात्यजाम्बूनदस्याङ्गदपर्यायेणोत्पत्तिर्दृष्टा, पूर्वव्यवस्थिताङ्गुलीयकादिपर्यायेण च विनाशः, पीततादिपर्यायेण तूभयत्राप्युत्पत्तिविनाशावनासादयतः ध्रुवत्वम्; एवमखिलद्रव्याणां केनचित्पर्यायेणोत्पादः केनचिद्विनाशः केनचिद्ध्रौव्यमित्यवबोद्धव्यम्। अतः शुद्धात्मनोऽप्युत्पादादित्रयरूपं द्रव्यलक्षणभूतमस्तित्वमवश्यंभावि।।१८।।

अथोत्पादादित्रयं यथा सुवर्णादिमूर्तपदार्थेषु दृश्यते तथैवामूर्तेऽपि सिद्धस्वरूपे विज्ञेयं पदार्थत्वादिति निरूपयति - **उप्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अट्ठजादस्स** उत्पादश्च विनाशश्च विद्यते तावत्सर्वस्यार्थजातस्य पदार्थसमूहस्य। केन कृत्वा। **पज्जाएण दु केणवि** पर्यायेण तु केनापि विवक्षितेनार्थव्यञ्जनरूपेण स्वभावविभावरूपेण वा। स चार्थः किंविशिष्टः। **अट्ठो खलु होदि सब्भूदो** अर्थः खलु स्फुटं सत्ताभूतः सत्ताया अभिन्नो भवतीति। तथाहि - सुवर्णगोरसमृत्तिकापुरुषादिमूर्तपदार्थेषु यथोत्पादादित्रयं लोके प्रसिद्धं तथैवामूर्तेऽपि मुक्तजीवे। यद्यपि शुद्धात्मरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिलक्षणस्य संसारावसानोत्पन्नकारणसमयसारपर्यायस्य विनाशो भवति तथैव केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारपर्यायस्योत्पादश्च भवति, तथाप्युभयपर्यायपरिणतात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यत्वं पदार्थत्वादिति। अथवा यथा ज्ञेयपदार्थाः प्रतिक्षणं भङ्गत्रयेण परिणमन्ति तथा ज्ञानमपि परिच्छित्त्यपेक्षया भङ्गत्रयेण परिणमति। षट्स्थानगतागुरुलघुकगुणवृद्धिहान्यपेक्षया वा भङ्गत्रयमवबोद्धव्यमिति सूत्रतात्पर्यम्।।१८।

कहा ? कि, **'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्'।** (आता) है न तत्त्वार्थ सूत्र में? प्रत्येक द्रव्य (की) समय-समय पर जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली (होती है) वह उत्पन्न होती है। पूर्व की पर्याय का व्यय होता है और दोनों के आधारभूत द्रव्य नित्य रहता है। ऐसा प्रत्येक पदार्थ का स्वभाव होने से सिद्धभगवान को भी वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अवश्यभावी लागू होता है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा ! 'ऐसा व्यक्त करते हैं।' उसे १८वीं गाथा में प्रगट व्यक्त करते हैं।'

'उप्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अट्ठजादस्स।
पज्जाएण दु केणवि अट्ठो खलु होदि सब्भूदो।।१८।।'
'उत्पाद तेमज विनाश छे, सौ कोई वस्तु मात्र ने।
वली कोई पर्यय थी दरेक पदार्थ छे सद्भूत खरे।।१८।।'

यहाँ ध्रुव को पर्याय कहा। क्योंकि तीन हुये न ! यह पर्यायनय का विषय हुआ।

अब, उत्पाद आदि तीनों (उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्य) सर्व द्रव्योंके साधारण है इसलिये शुद्धआत्मा (केवली भगवान और सिद्ध भगवान)के भी अवश्यम्भावी है ऐसा व्यक्त करते हैं :-

गाथा-१८

उत्पाद तेम विनाश छे सौ कोई वस्तु मात्र ने।
वली कोई पर्यय भी दरेक पदार्थ छे सद्‌भूत खरे।।१८।।

अन्वयार्थ :- [उत्पाद] किसी पर्यायसे उत्पाद **[विनाशः च]** और किसी पर्यायसे विनाश **[सर्वस्य]** सर्व **[अर्थजातस्य]** पदार्थमात्रके **[विद्यते]** होता है; **[केन अपि पर्यायेण तु]** और किसी पर्यायसे **[अर्थ]** पदार्थ **[सद्‌भूतः खलु भवति]** वास्तवमें ध्रुव है।

टीका :- जैसे उत्तम स्वर्णकी बाजूबन्दरूप पर्यायसे उत्पत्ति दिखाई देती है, पूर्व अवस्थारूपसे वर्तनेवाली अँगूठी इत्यादिक पर्यायसे विनाश देखा जाता है और पीलापन इत्यादि पर्यायसे दोनोंमें (बाजूबन्द और अँगूठी में) उत्पत्ति - विनाशको प्राप्त न होनेसे ध्रौव्यत्व दिखाई देता है। इसप्रकार सर्व द्रव्योंके किसी पर्यायसे उत्पाद, किसी पर्यायसे विनाश और किसी पर्यायसे ध्रौव्य होता है, ऐसा जानना चाहिये। इससे (यह कहा गया है कि) शुद्ध आत्माके भी द्रव्यका लक्षणभूत उत्पाद, व्यय ध्रौव्यरूप अस्तित्व अवश्यम्भावी है।

भावार्थ :- द्रव्यका लक्षण अस्तित्व है और अस्तित्व उत्पाद-व्यय-ध्रोव्यरूप है। इसलिये किसी पर्यायसे उत्पाद, किसी पर्यायसे विनाश और किसी पर्यायसे ध्रौव्यत्व प्रत्येक पदार्थके होता है।

आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! यह तो प्रवचनसार है। समयसार ग्रंथ सूक्ष्म है। इसप्रकार यह प्रवचनसार ज्ञानप्रधान किन्तु सूक्ष्म ग्रंथ है। आहाहा ! प्रवचनसार है न ! प्र + वचन = दिव्यध्वनि। प्र = दिव्य, वचन = ध्वनि। भगवान की वाणी जो दिव्यध्वनि (है)। उसमें आया हुआ यह प्रवचनसार है। आहाहा !

टीका. **'जैसे उत्तम स्वर्ण की...'** 'उत्तम स्वर्ण' (कहा) **'बाजूबंदरूप पर्याय से उत्पत्ति...'** बाजूबंद पर्याय (अर्थात्) गहना। **'दिखाई देती है, पूर्व अवस्थारूप से वर्तनेवाली अँगूठी इत्यादि पर्याय से विनाश देखा जाता है...'** उस स्वर्ण की पूर्व अवस्था अँगूठी थी, उस अँगूठी का व्यय होकर बाजूबंद - कड़ा आदि उत्पन्न होता है। आहाहा ! **'विनाश देखा जाता है और पीलापन इत्यादि पर्याय से दोनों में (बाजूबंद और अँगूठी में) उत्पत्ति-विनाश को**

प्रश्न :- `द्रव्यका अस्तित्व उत्पादादिक तीनोंसे क्यों कहा है ? एकमात्र ध्रौव्यसे ही कहना चाहिये; क्योंकि जो ध्रुव रहता है वह सदा बना रह सकता है ?'

उत्तर :- यदि पदार्थ ध्रुव ही हो तो मिट्टी, सोना, दूध इत्यादि समस्त पदार्थ एक ही सामान्य आकारसे रहना चाहिये; और घड़ा, कुंडल, दही इत्यादि भेद कभी न होना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं होता अर्थात् भेद तो अवश्य दिखाई देते हैं। इसलिये पदार्थ सर्वथा ध्रुव न रहकर किसी पर्यायसे उत्पन्न और किसी पर्यायसे नष्ट भी होते हैं। यदि ऐसा न माना जाये तो संसारका ही लोप हो जाये।

इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है, इसलिये मुक्त आत्माके भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अवश्य होते हैं। यदि स्थूलतासे देखा जाये तो, सिद्ध पर्यायका उत्पाद और संसार पर्यायका व्यय हुआ तथा आत्मत्व ध्रुव बना रहा। इस अपेक्षासे मुक्त आत्माके भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है। अथवा, मुक्त आत्माका ज्ञान ज्ञेय पदार्थोंके आकाररूप हुआ करता है इसलिये समस्त ज्ञेय पदार्थोंमें जिस जिस प्रकारसे उत्पादादिक होता है उस-उस प्रकारसे ज्ञानमें उत्पादादिक होता रहता है, इसलिये मुक्त आत्माके समय समय पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है। अथवा अधिक सूक्ष्मतासे देखा जाये तो, अगुरुलघुगुणमें होनेवाली षटगुनी हानि वृद्धिके कारण मुक्त आत्मामें समय-समयपर उत्पाद-व्यय-ध्रोव्य वर्तता है। यहाँ जैसे सिद्धभगवानके उत्पादादि कहे हैं उसीप्रकार केवली भगवानके भी यथायोग्य समझ लेना चाहिये।।१८।।

प्राप्त न होने से ध्रौव्यत्व दिखाई देता है।' आहाहा ! लोगों को समझने के लिये दृष्टांत दिया।

स्वर्ण कड़े की पर्यायरूप उत्पन्न होता है और अँगूठी की पर्याय थी उसका व्यय होता है और दोनों के आधारभूत (ऐसा) पीलापन - स्निग्धतायुक्त तत्त्व है वह तो ध्रुव है। आहाहा ! `**इसप्रकार...**' (अर्थात्) इस दृष्टांत की भाँति आहाहा ! `**सर्व द्रव्यों के...**' (अर्थात्) प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक आत्मा - निगोद का आत्मा हो या सिद्ध का आत्मा हो, भिन्न एक परमाणु हो या स्कंध हो, किन्तु प्रत्येक द्रव्य को किसी पर्याय से उत्पाद (होता है)। (अर्थात्) उस-उस समय की पर्याय उत्पन्न (होने का) काल है इसलिये वह उत्पाद (होता है)। आहाहा ! सर्व द्रव्य की उस समय पर वह पर्याय (उत्पन्न होने का) निज क्षण - काल है इसलिये उत्पन्न होती है। आहाहा! उसका काल है न ! काल कहा न ! द्रव्य की कोई पर्याय उत्पन्न होती है, उसी समय पर ही उसका उत्पाद होने का काल है। उस समय पर वह उत्पाद होता है। आहाहा ! `**किसी पर्याय से विनाश...**'

होता है। पूर्व की पर्याय का उस काल में विनाश (होने का) स्वभाव है अत: विनाश होता है। आहाहा ! **`और किसी पर्याय से...'** भाषा देखिये ! **`पर्याय से ध्रौव्य होता है।'** इसप्रकार तीन लिये हैं न! (अत: ऐसा कहा)। है तो द्रव्य ध्रुव - किन्तु दो अंश लिया और तीसरा (ध्रौव्य) अंश (है) अर्थात् पर्याय ऐसा (कहा) सद्भूत (अर्थात्) स्थिर - स्थिर, ध्रुव। ऐसी बातें हैं! ध्रुव किसी (अपेक्षा से) भेदरूप है। उत्पाद भेदरूप है, व्यय भेदरूप है। **और ध्रुव भी तीन अंश की अपेक्षा से भेदरूप - पर्याय है। वे तीनों पर्यायनय का विषय हैं।**

प्रवचनसार ज्ञेय अधिकार (की) १००वीं गाथा में आता है। उत्पाद, व्यय, ध्रुव - तीनों पर्यायनय के विषय हैं। आहाहा ! समझ में आया ? बाद में १०१ गाथा में तो ऐसा आता है कि, प्रत्येक द्रव्य की जो पर्याय उत्पन्न हुई (उस) उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं। उस उत्पाद को व्यय की अपेक्षा नहीं। जो व्यय हुआ उसे उत्पाद की अपेक्षा नहीं। व्यय हुआ उसे ध्रुव की अपेक्षा नहीं। ध्रुव है उसे उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं। आया है वहाँ १०१ गाथा (में) ? आहाहा ! ऐसा तत्त्व है!

सत् है उसे कोई हेतु नहीं होता। उत्पाद भी सत् है, व्यय भी सत् है, ध्रुव भी सत् है। **`उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्'।** सत् का अंश है उसे भी हेतु (नहीं)। अहेतुक है। व्यय भी सत् है। ख़रगोश के सींग (की) भाँति (असत्) नहीं। व्यय भी एक सत् है। आहाहा ! अत: पर्याय व्यय होकर द्रव्य में जाती है। व्यय अस्तिरूप था। अंदर में जाता है न ! अत: था वह जाता है या नहीं था वह जाता है ?

मुमुक्षु :- अंदर गया अर्थात् व्यय नहीं रहा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- व्यय हुआ इसका अर्थ ही वह हुआ कि वह द्रव्य में गया। जो था वह गया या नहीं था वह गया ? ऐसा (कहना है)। अत: उसे सत् कहा है। था वह गया है। अत: वर्तमान में व्यय(रूप) है। किन्तु गया है वह अंदर में अर्थात् परिणामिकभावरूप हो गया है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है। समझ में आया ? चाहे तो राग का उत्पाद हो और दूसरे समय पर उसका व्यय होता हो - किन्तु वह गया कहाँ ? अंदर में राग गया नहीं। किन्तु उसकी जितनी योग्यता थी उतनी योग्यता अंदर गई है। सूक्ष्म बातें (हैं) बापू !

मुमुक्षु :- व्यय होता है वह द्रव्य में जाता है या भावांतररूप परिणमित होकर नया उत्पाद होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह (व्यय) द्रव्य में जाता है। वह व्यय होकर पुनः उत्पाद होता है, ऐसा नहीं। (यानी कि) व्यय जो हुआ वह भावान्तर (दूसरे भाव) में उत्पाद होता है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु :- व्यय पर्याय नवीन भावान्तररूप उत्पन्न होती हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं-नहीं, ऐसा नहीं। नई पर्याय दूसरी (उत्पन्न) होती है। जो व्यय हुई वह पर्याय भावान्तर(रूप) होती है वह प्रश्न हो गया है। यहाँ तो बहुत चर्चा हो गई (है)। आहाहा ! जो (पर्याय) भावान्तर हुई तो वही पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं। क्या कहा वह ?

जो वस्तु की पर्याय थी वह व्यय हुई। वह व्यय होकर - उस पर्यायरूप व्यय होकर बाद में वही उत्पन्न हुई है, इसप्रकार भावान्तर नहीं। एक बार तो बड़ी चर्चा हुई थी। इसप्रकार (भावान्तर) नहीं, भाई ! (पर्याय) व्यय होकर द्रव्य में जाती है। पानी की तरंग जो उठती है वह उत्पाद हुआ, किन्तु उस तरंग का व्यय हुआ और दूसरी तरंग उत्पन्न हुयी तो वह (पहले की तरंग) गयी कहाँ ? (वह तरंग) पानी में गयी है। आहाहा !

मुमुक्षु :- नवीन कार्यरूप परिणमित हो गयी !

पूज्य गुरुदेवश्री :- नवीन कोई परिणमित हुई नहीं। वह पर्याय स्वयं ही भावान्तर पर्याय होकर उत्पन्न हुई है, ऐसा नहीं।

वह पर्याय सत्‌रूप उत्पन्न हुई है ऐसा कहना है (क्योंकि) वस्तु में थी इसलिये आयी और (पर्याय) अशुद्धतारूप उत्पन्न हुई है। वह जो अशुद्ध (पर्याय) पहले नहीं थी और हुई (है)। (इसप्रकार) दो प्रकार हैं। प्रवचनसार में (ऐसा लिया है)। भाई! (है)। **सत् उत्पाद और असत् उत्पाद।** आहाहा ! शैली तो कोई शैली ! कोई गज़ब शैली है ! जो पर्याय उत्पन्न हुई वह सत्‌रूप से थी वह (उत्पन्न हुई है)। (उसे सत् उत्पाद) इस अपेक्षा से (कहने में आता है)। वह (अशुद्ध पर्याय) पूर्व में नहीं थी (और) हुई इसलिये असत् उत्पाद (कहा) और वही पर्याय अंदर थी इसलिये हुई उसे सत् उत्पाद (कहने में आता है)। आहाहा ! अरे...! ऐसा उपदेश मनुष्य को कैसे (स्वीकार हो) ? वह तो सेवा करना, व्रत का पालन करना, भक्ति करना, पूजा करना, भाषा का सुधार करना और पुरस्कार देना। (ऐसा कहते हो तो) समझ में आये तो सही! वह सब अज्ञान है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है भगवान ! आहाहा !

यहाँ पर क्या कहा ? '**किसी पर्याय से विनाश और किसी पर्याय से ध्रौव्यत्व...**' ऐसा यहाँ कहना है ! किसी पर्याय से ध्रुव ! द्रव्य से ध्रुव, ऐसा नहीं। (उत्पाद-व्यय) दो अंश हैं। वैसे तीसरा (ध्रौव्यत्व) अंश मानकर - तीनों को मानकर पर्यायनय का विषय सिद्ध किया है। आहाहा ! समझ में आया ? १७वीं गाथा के संस्कृत में है, देखिये ! जयसेनाचार्य की (टीका में है)। सत्रहवीं गाथा की (टीका) पूर्ण होने पर (आता) है। (ऐसा कहा है)। आहाहा ! द्रव्यार्थिकनय से त्रिकाली द्रव्य है। किन्तु तीन प्रकार के भेद पड़े उस अपेक्षा

से पर्यायार्थिकनय से तीन (भेद) संभवित हैं। (ऐसा कहना है)। आहाहा ! **'ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहाँ समजवुं तेह।'** आहाहा ! वीतराग मार्ग (में) इस समय बहुत विपरीतता हो गई हैं ! आहाहा !

सुबह में तो ऐसा आया था कि, अपनी एक समय की पर्याय (स्वयं) उत्पन्न करता है, अन्य की (पर्याय को) उत्पन्न नहीं करता - अन्य की पर्याय को भी उत्पन्न करता है और अपनी पर्याय को भी उत्पन्न करता है - (ऐसा माननेवाला) द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! (आत्मा) भाषा की पर्याय को भी उत्पन्न करता है और राग को (भी उत्पन्न करता है, ऐसा नहीं)। राग है वह (भाषा की) पर्याय को अनुकूल निमित्त है। आहाहा ! भाषा की वह पर्याय राग को अनुरूप है। निमित्त है वह अनुकूल है (और) उत्पन्न होता है वह अनुरूप है। तथापि उस-उस पर्याय का, अन्य पर्याय कर्ता (है), ऐसा नहीं। आहाहा !

घड़े की पर्याय को कुम्हार की (विकल्प की) पर्याय अनुकूल है और कुम्हार की (विकल्परूप) पर्याय को घड़ा अनुरूप है क्योंकि उसे (कुम्हार को) जो विकल्प है उसरूप सामने (घड़े की पर्याय) परिणमित होती है। आहाहा ! ऐसी बात है, वह मार्ग को अनुरूप है। (समयसार-८६वीं) गाथा में अनुकूल - अनुरूप आता है। भाई! आहाहा ! बात भारी, भाई ! मनुष्य को फुरसत नहीं मिलती। अत: जो कहते हैं वह चलाये (रखता है) जे नारायण... जे नारायण... (करते) चलता है, वैसा का वैसा... भाई ! मार्ग कोई न्यारा है, भाई !

प्रत्येक पर्याय (का), उस-उस काल में उत्पन्न होने का काल (है) वह होती है और वह-वह पर्याय षट्कारक से उत्पन्न होती है। आहाहा ! प्रत्येक पर्याय अपने काल में ही उत्पन्न होती है - आगे पीछे नहीं। (प्रवचनसार) ९९ गाथा में हार का दृष्टांत दिया है न ! जहाँ मोती है वहाँ पर ही मोती (है)। इधर-उधर, आगे-पीछे होता नहीं। आहाहा ! वैसे द्रव्य की जिस समय पर जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है वही (पर्याय) षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न होती है। वह (पर्याय) द्रव्य से (उत्पन्न) हुई है ऐसा उपचार से कहने में आता है। वह सुबह में कहा था। आहाहा ! भाई! जिस प्रकार वस्तु है उसी प्रकार उसका ज्ञान यथार्थ होना चाहिये। आगे पीछे (या) विपरीत होता है तो अज्ञान होगा। आहाहा ! इस समय में तो १०-१० हजार मनुष्यों की बड़ी सभा करते हैं (उसमें ऐसा कहते हैं) ऐसा करो... ऐसा करो... ऐसा करो... करो... करो... करो... ऐसा (कहनेवाले) मिथ्यादृष्टि हैं। फलाना करो... इसका करो... इसका करो... गरीब को आहार दो, जिसकी जो भाषा हो उसे हिन्दी आदि भाषा सिखाओ। आहाहा ! अरे प्रभु ! बहुत कठिन कार्य है, भाई ! वीतराग मार्ग (कोई न्यारा है)। आहाहा !

सभी बात कही न इसमें **`सव्वसस अट्ठजायस्स'** १८वीं गाथा में दूसरा पद है न ! **`उत्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अट्ठजादस्स'** सर्व पदार्थ की उत्पत्ति के लिये ये तीन बोल हैं। है ? **`पज्जाएण दु केणवि अट्ठो खलु होदि सब्भूदो'** प्रत्येक पदार्थ के लिये (यह बात है)। आहाहा ! **`अट्ठजायस्स'** जगत (के) पदार्थ की जो कुछ स्थिति है, उसमें प्रत्येक समय पर उत्पाद, व्यय और ध्रुव स्वतंत्र होता है। आहाहा ! अन्य के कारण तो नहीं किन्तु उसका उत्पाद उसके ध्रुव के कारण (भी) नहीं ! यह बात (किस प्रकार स्वीकार हो) ? उन तीनों को जो तीनपना है वह स्वयं के कारण है। आहाहा ! शब्द है न ! **`अट्ठजायस्स'** (अर्थात्) प्रत्येक पदार्थ। एक परमाणु भी (उसमें समाविष्ट है)। आहाहा !

यह भाषा की पर्याय होती है, (तो) उस काल में उस परमाणु की भाषा की पर्याय उत्पन्न (होने का) काल है - निजक्षण है। (प्रवचनसार) १०२ गाथा (में ऐसा कहेंगे)। समझ में आया ? भाषा के रजकण हैं। उनमें शब्दवर्गणा (हैं)। उनसे भाषा की यह पर्याय होती है, वह पर्याय उस काल में (उन) परमाणु का निजक्षण है। तभी भाषा की पर्याय (होने का) निजकाल है। आत्मा विकल्प करता है कि मुझे बोलना है इसलिये पर्याय हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है, बापू ! प्रभु ! प्रभु का मार्ग (शूरवीर का है)। आहाहा !

`वचनामृत वीतराग नां परम शांत रसमूल
औषध जे भवरोगनां कायरने प्रतिकूल।'

आहाहा ! हीजड़े को जिस प्रकार वीर्य नहीं तो पुत्र नहीं होता वैसे कायर जो अज्ञानी है उसके उल्टे पुरुषार्थ में उसे आत्मधर्म नहीं होता। आहाहा ! राग का कर्ता होता है वह अज्ञानी है।

सुबह में वह आया था न ! वह राग का कर्ता होने पर भी, उसी समय पर उसी प्रकार का उतना ही कर्म बंधन होता है। (अर्थात्) दया का भाव जितना मंद होता है (तो) उतनी साता का बंध होता है। तीव्र दया का (भाव) होता है तो उतना बंध होता है। तथापि उस कर्म की पर्याय का यह राग कर्ता नहीं। अरे प्रभु ! उसके उत्पाद, व्यय और ध्रुव उसमें है। ऐसा है, भाई ! है ?

`इससे (यह कहा गया कि) शुद्ध आत्मा के भी...'** पहले स्वर्ण का दृष्टांत कहा। बाद में सभी पदार्थ में इस प्रकार (है ऐसा सिद्ध) हुआ (और) अब सिद्ध को भी ऐसा है। (इस प्रकार) तीन बातें सिद्ध की, आहाहा ! **`शुद्ध आत्मा के भी...' `भी' (शब्द) है न ? किन्तु (पहले) दो (बात कही थी) न ! स्वर्ण में कडे की उत्पत्ति, अँगूठी का व्यय और स्वर्ण की स्निग्धता ध्रुव (रही)। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ में (नवीन पर्याय का) उत्पाद,

पूर्व की (पर्याय का) व्यय और (वस्तुरूप) ध्रुव (रहना)। जब सर्व पदार्थ का ऐसा स्वरूप है। तो सिद्ध का भी ऐसा स्वरूप है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा !

सिद्ध (को) अविनाशी कहा। (क्योंकि) उनकी (सिद्ध) पर्याय हुई उस पर्याय का नाश नहीं होगा। वह किस प्रकार (कहा) कि, विकार उत्पन्न होकर (सिद्धपर्याय का नाश नहीं होगा)। किन्तु उस पर्याय का तो नाश होता है और नवीन पर्याय दूसरे समय में उत्पन्न होती है। आहाहा ! नियमसार में आता है न ! भाई ! `जिवादीबहि - तच्चं हेय' वह केवलज्ञान की पर्याय भी नाशवान है अत: हेय है (ऐसा कहा)। आहाहा ! वह किस अपेक्षा से ? कि, एक समय रहती है इस अपेक्षा से (नाशवान कहा)। और यहाँ पर उसे अविनाशी किस प्रकार कहा ? कि वैसी की वैसी पर्याय कायम रहेगी। उसमें अब विकार की उत्पत्ति नहीं होगी, इसलिये पर्याय को अविनाशी कहा है। आहाहा ! ऐसा है।

सामान्य मनुष्य को तो यह समझना कठिन पड़ता है। वह (ऐसा कहता है कि) ऐसा करो... ऐसा करो... ऐसा करो... आहाहा ! देश की सेवा करो... आहाहा ! साधर्मी की मदद करो ! साधर्मी की सेवा करो ! आहाहा ! ऐसा समझ में तो आता है सही ! वह तो अज्ञान है। वह तो मिथ्यात्व की प्ररूपणा है और सुननेवाला हाँ कहता है कि, तुम्हारी बात सही है। वह (भी) मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! क्या करे?

(कहते हैं)। **`शुद्ध आत्मा के भी'** (अर्थात्) ऐसा कि, भले ही आपने स्वर्ण का दृष्टांत दिया उसमें हो और अन्य सर्व पदार्थ में भी ऐसा हो। किन्तु शुद्ध आत्मा को (भी - ऐसा है)। सिद्ध भगवान पूर्ण परमानंद को प्राप्त हुये और आपने उनको अविनाशी पर्याय कहा, उन शुद्ध आत्मा को भी... अत: `भी' लिया है। आहाहा !

भाई ! यह तो भगवान (की) कथा है। बापू ! यह कोई वार्ता - कथा नहीं। आहाहा ! अरे...! तीनलोक के नाथ परमात्मा ने यह कहा है ! आहाहा ! इस समय पंचमकाल में उनका विरह है। और यह बात रह गई। आहाहा ! उसको समझने के लिये, मानने के लिये बहुत प्रयत्न चाहिये। आहाहा ! यहाँ तो कहते (हैं) कि, मैं पर की दया पाल सकता हूँ (ऐसा माननेवाला) मिथ्यादृष्टि है। पर की (जिंदा रहने की - स्थिर रहने की) पर्याय स्वयं से होती (है)। उसे कहते हैं कि, मैं उसकी दयापालन करूं, मैं उसे जीवित रखता (हूँ), आहाहा ! उसकी जीवित रहने की - स्थिर रहने की पर्याय स्वयं के कारण उत्पन्न होकर जीवित रहता है और (अज्ञानी) कहता है कि, मैं उसे जीवित रखता हूँ। (ऐसा माननेवाला) मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कठिन कार्य बहुत ! दुनिया के साथ रहना और दुनिया से भिन्न मान्यता (करना)! आहाहा ! (यहाँ पर कहते हैं) किसी के साथ रहा ही नहीं। अनादि से जीव स्वयं स्वयं में ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वरूप रहा है। बस !

आहाहा !

वह **`शुद्ध आत्मा के भी द्रव्य का लक्षणभूत उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अस्तित्व...'** (अस्तित्व) अर्थात् मौजूदगी। उन तीनों की मौजूदगी कि जो द्रव्य का लक्षण है। **`उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्।'** तत्त्वार्थसूत्र (में आता है)। आहाहा ! अत: ऐसा कहा कि **`शुद्ध आत्मा के भी...'** स्वर्ण का दृष्टांत देकर उत्पाद-व्यय-ध्रुव सिद्ध किया। प्रत्येक पदार्थ में उत्पाद-व्यय-ध्रुव सिद्ध किया। **`इससे (यह कहा गया कि) शुद्ध आत्मा के भी द्रव्य का लक्षणभूत उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अस्तित्व अवश्यम्भावी है।'** आहाहा ! सिद्ध भगवान को भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप (कि जो) द्रव्य का लक्षण है। केवलज्ञान की पर्याय एक समय की हुई है। वह दूसरे समय पर अन्य होगी। वैसी होगी किन्तु दूसरी होगी और पूर्व की पर्याय का व्यय होगा, और ध्रुव (नित्य) रहेगा। ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध में भी है। आहाहा ! ऐसी बात और ऐसा उपदेश ! सत् स्वरूप ऐसा है, भाई ! सत् का सत् उत्पाद-व्यय-ध्रुव से है। वह पर के कारण उत्पाद होता नहीं। और उत्पाद का आगे-पीछे काल में उत्पाद होता है ऐसा भी नहीं, आहाहा! जिस समय जिस (पर्याय का) उत्पाद है, निश्चय से उसी समय वही (उत्पाद) होगा वह निश्चय है और उस समय पूर्व की अवस्था का व्यय वह भी निश्चय है और उसके आधारभूत ध्रुव भी उस समय पर निश्चय है। उन तीनों का अस्तित्व हैं - ऐसा कहा न ! आहाहा ! तीनों सत् हैं - तीनों की मौजूदगी हैं। वह अपने-अपने कारण से मौजूदगी हैं। (अस्तित्व) कि जो द्रव्य का लक्षण है। वह तो वस्तु का लक्षण है। वस्तु का लक्ष करना हो तो उसका लक्षण यह है। परमाणु और आत्मा (सर्व का लक्षण यह है)। आहाहा !

यह होंठ हिलता है (वह) उसकी पर्याय (का) उत्पाद है और (पूर्व में) उस प्रकार था और इस प्रकार होता है वह पूर्व की पर्याय का व्यय है और वस्तु ध्रुवरूप नित्य है। पर्यायार्थिकनय से वे तीन (अंश) उसमें वर्तते हैं, वे आत्मा के कारण नहीं। आहाहा! आत्मा की इच्छा के कारण ऐसा होता है, ऐसा नहीं। ऐसी बात है। समझ में आया? इस समय तो दुनिया खुश किस प्रकार रहे ऐसी बातें करते हैं तो दुनिया सुनती है और पाँच-दस हजार, बीस हजार (लोग इकट्ठा होते हैं)। एक दूसरे का कार्य करना, एक दूसरे की सहायता करना, साधर्मी हैं (इसलिये) सेवा करना, आहार नहीं हो तो आहार देना, पानी नहीं हो तो पानी देना, कपड़े नहीं हो तो कपड़े देना, गरीब को रहने का स्थान नहीं हो तो रहने का स्थान बना देना, लो ! ऐसा (कहे तो) कैसा ठीक लगता है लोगों को ! दीन हैं इसलिये ऐसी बातें (ठीक लगती हैं)। किन्तु वह सब मिथ्यात्वभाव है। आहाहा !

मुमुक्षु :- इससे तो परोपकार का लोप हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री :- परोपकार कर सकता है कौन ? परोपकार (अर्थात्) स्वयं-पर = प्रधान आत्मा - उसका उपकार। (पर अर्थात्) पर (वस्तु) जैसा नहीं। भगवानआत्मा `पर' = (अर्थात्) उत्कृष्ट वस्तु है। उसका उपकार उत्पाद से करना है (अर्थात्) निर्मल पर्याय का उत्पाद करना वह उपकार है। ऐसी बातें हैं ! यह कहीं पर सुनने में आता नहीं। अरेरे...! जगत कहाँ पड़ा है ! अरेरे...! चौरासी के अवतार में भाई ! वहाँ कोई शरण नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व (और) अज्ञान का सेवन किया होगा (तो) उस मिथ्याश्रद्धा के फल में बवंडर का तिनका कहाँ जायेगा ? जिसकी श्रद्धा में अनंत भव का गर्भ है। आहाहा! वह कहाँ जाकर (अवतार लेगा) ? अन्जान क्षेत्र में - अन्जान काल में अवतार लेगा। आहाहा ! इसकी उसे ख़बर नहीं।

यहाँ पर सत् ऐसा है। - ऐसा जिसे अंदर श्रद्धान होता है, उसे पर की अपेक्षा से मेरा उत्पाद होता है वह (बात) छूट जाती है। उत्पाद तो मेरा होता है इसी प्रकार मैं दूसरे का भी उत्पाद कर सकता हूँ, वह बात छूट जाती है। ऐसी पराधीनता पर्यायमें से छूट जाती है। आहाहा ! और वह उत्पाद स्वतंत्र (होता) है। द्रव्य की भी अपेक्षा जिसे नहीं। (ऐसा श्रद्धान उत्पन्न होता है)। आहाहा ! ऐसा है !

भावार्थ :- `**द्रव्य का लक्षण अस्तित्व है...**' द्रव्य का लक्षण सत् - मौजूदगी (है)। द्रव्य का लक्षण मौजूदगी (है)। `**और अस्तित्व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है।**' वह मौजुदगीवाला तत्त्व उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है। आहाहा ! `**इसलिये किसी पर्याय से उत्पाद,...**' इसमें से (लोग) ऐसा निकालते हैं कि, कोई भी पर्याय होती है, निश्चित पर्याय होती है ऐसा कोई नियम नहीं। `**किसी पर्याय से...**' उसका अर्थ (क्या) ? (कि) वह `**किसी**' अर्थात् उस समय की पर्याय से उत्पाद।

मुमुक्षु :- होनेवाली पर्याय ही हो सकती है, ऐसा नहीं। कोई भी पर्याय हो सकती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- किसी भी पर्याय का अर्थ यह है कि, उस समय की जो पर्याय है वह (ही) कोई भी पर्याय। आहाहा ! १३वीं साल, २२ बरस (पहले) बड़ी चर्चा हुई थी। वहाँ (पंचास्तिकाय की) ६२वीं गाथा का आधार देकर बात कही थी कि, आत्मा में जो विकार होता है - मिथ्यात्व का (या) राग-द्वेष का, वह स्वयं षट्कारक के परिणमन से होता है उसे द्रव्य की अपेक्षा नहीं। उसे कर्म की अपेक्षा तो है ही नहीं। परकारक की अपेक्षा नहीं, ऐसा है न उसमें ! किन्तु उसे द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं ! आहाहा ! लोग चौंक नहीं जाये इसलिये इतना सब उस समय नहीं कहा था। अभी तो पर से (विकार) नहीं होता (इतना कहा तो भी लोग चौंक गये। तो यह बात तो स्वीकार ही

कैसे हो) ? आहाहा ! भाई ! सूक्ष्म बात है, बापू ! किन्तु सत्य वस्तु की स्थिति कोई अलौकिक है !! आहाहा !

यहाँ कहते हैं, द्रव्य का लक्षण मौजूदगी (है)। वह मौजूदगी उत्पाद, व्यय और ध्रुवरूप है। **`इसलिये किसी पर्याय से...'** अर्थात् ? किसी पर्याय अर्थात् अनेक पर्यायें हैं उनमें से जो पर्याय होनेवाली है वही पर्याय उत्पन्न होती है। **`किसी पर्याय से विनाश...'** किसी अर्थात् जिस समय की पर्याय का विनाश होनेवाला है, उसी पर्याय से विनाश। **`और किसी पर्याय से ध्रौव्यत्व प्रत्येक पदार्थ के होता है।'** आहाहा ! (यहाँ पर पर्याय अर्थात् भेद से)।

वास्तव में तो अज्ञानी जीव राग का कर्ता होकर राग करता है उस समय कर्म का बंधन होता है। क्रमबद्ध (पर्याय) में उस परमाणु में उस प्रकार पर्याय होने का उसका स्वकाल है। उसमें भी क्रमबद्ध है या नहीं ? ऐसी बात है, भाई ! परमाणु में भी उस समय पर (क्रमबद्धपर्याय होती है)। जैसे कि दया का भाव हुआ। और अज्ञानी उसका कर्ता हुआ (तो) वहाँ उसे साता वेदनीय के परमाणु परिणमित होते हैं। उस समय पर क्रमबद्ध में उस पर्यायरूप परिणमित होने का उन परमाणु का काल था। (इसलिये परिणमित हुये हैं)। जीव को राग हुआ और कर्म को अनुकूल होने के कारण साता के पर्यायरूप परिणमित होना पड़ा, ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया? ऐसी बातें !

ऐसा कहना कि छः कारणों से ज्ञानावरणीय (कर्म) बँधता है। यहाँ कहते हैं कि छः दोषों का कर्ता अज्ञानी होता है और उस समय ज्ञानावरणीय(कर्म) बँधता है (तो) उस पर्याय का वह (जीव) कर्ता नहीं। आहाहा ! उस समय पर उस परमाणु में ज्ञानावरणीय की पर्याय होने का क्रमबद्ध में उसका उत्पाद का काल था। गज़ब बातें हैं, भाई ! आहाहा ! है ?

`प्रश्न :- द्रव्य का अस्तित्व उत्पादादिक तीनों से क्यों कहा है ? एकमात्र ध्रौव्य से ही कहना चाहिये;...' क्या कहा वह ? अस्तित्व आप कहते हो और तीनों से अस्तित्व कहा ! अस्तित्व तो एक ध्रौव्य से ही होना चाहिये। समझ में आया ? द्रव्य की अस्तित्व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों से कहा। (किन्तु) एक ध्रौव्य से ही कहना चाहिये। अस्तित्व है वह नित्य रहनेवाले (ध्रौव्य की) अपेक्षा से कहना चाहिये। (और आप) उत्पाद-व्यय को भी अस्तित्व में मानते हैं ! प्रश्न समझ में आता है ? **`क्योंकि जो ध्रुव रहता है वह सदा बना रह सकता है ?'** इस प्रश्न का समाधान इसप्रकार है। वह विशेष आयेगा।

a a a

दि. २२-१-१९७९ - प्रवचन नं. - १६

(प्रवचनसार) १८(वीं गाथा चलती है)। उसका भावार्थ पुन: (लेते हैं)। **`द्रव्य का लक्षण...'** प्रत्येक द्रव्य जो आत्मा और परमाणु है - उसका लक्षण **`अस्तित्व है...'** **`सत् द्रव्यं लक्षणं'** तत्त्वार्थसूत्र में (आता) है न ? द्रव्य अर्थात् वस्तु - आत्मा और छ: द्रव्य आदि। उनका लक्षण सत् है। `सत् द्रव्यं लक्षणं' तत्त्वार्थसूत्र का सिद्धांत है। **`सत् द्रव्यं लक्षणं'** और **`उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्'** वह तत्त्वार्थसूत्र का सूत्र है। `अस्तित्व' अर्थात् सत्। **`उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है।'** आहाहा ! **`इसलिये किसी पर्याय से उत्पाद,...'** होता है। (यानी कि) प्रत्येक द्रव्य का **`किसी पर्याय से...'** अर्थात् अनंत पर्यायमें से उस समय पर जो (पर्याय) उत्पन्न होनेवाली (होती है) उस पर्याय से उत्पन्न होता है। **`किसी पर्याय से विनाश...'** (अर्थात्) पूर्व की पर्याय से विनाश होता है। **`और किसी पर्याय से ध्रौव्यत्व...'** (यहाँ पर) पर्याय अर्थात् एक अंश है इसलिये (पर्याय कहा)। यह कल आया था। **`ध्रुवत्व प्रत्येक पदार्थ को होता है।'** (अर्थात्) आत्मा हो, परमाणु हो, आकाश हो, काल हो, धर्मास्ति-अधर्मास्ति हो, प्रत्येक का लक्षण अस्तित्व - मौजूदगी है। और मौजूदगी तीन प्रकार से है - उत्पाद, व्यय और ध्रुव। नवीन अवस्था से उत्पन्न होता है, पूर्व (अवस्था) से व्यय होता है और नित्य रहनेवाला ध्रुव।

अब यहाँ प्रश्न हो सकता है। **`प्रश्न :- द्रव्य का अस्तित्व उत्पादादिक तीनों से क्यों कहा है ? एकमात्र ध्रौव्य से ही कहना चाहिये;...'** (अर्थात्) द्रव्य है वह नित्य रहनेवाला सत् है। तो ध्रुव से ही उसका अस्तित्व कहना चाहिये। किन्तु उत्पाद और व्यय से (भी) उसका अस्तित्व (है ऐसा) साथ में क्यों लिया ? समझ में आया ? वस्तु को आपने सत् कहा और सत् का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहा। तो वह उत्पाद-व्यय एक समय रहता है और ध्रुव नित्य रहता है, तो नित्य रहनेवाले को अस्तित्व कहना चाहिये। उत्पाद-व्यय को अस्तित्व क्यों कहते (हो) ? ठीक है न ? प्रश्न तो उसे (समझना चाहिये न) ! आहाहा !

`प्रश्न:- द्रव्य का अस्तित्व उत्पादादिक तीनों से क्यों कहा है ?'** ऐसा क्यों कहा तो ? मौजूदगी **`एकमात्र ध्रौव्य से ही कहना चाहिये...' मौजूदगी एकमात्र ध्रुव से ही कहना

चाहिये। और उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों से मौजूदगी है ऐसा क्यों कहा आपने ? **`क्योंकि जो ध्रुव रहता है वह सदा बना रह सकता है।'** जो ध्रुव रहता है वह सत्‌रूप नित्य रह सकता है। उत्पाद-व्यय है वह नित्य रह सकते नहीं। तथापि आपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों को मौजूदगीवाले (कहा)। तीनों को सत् कहा। आहाहा ! ऐसा मार्ग (है) !

`उत्तर :- यदि पदार्थ ध्रुव ही हो...'** (यानी कि) जो कोई भी आत्मा और परमाणु आदि ध्रुव ही हो तो यहाँ पर मिट्टी का दृष्टांत दिया (है) **`मिट्टी, सोना, दूध...' मिट्टी घड़ा आदि पर्याय में बदलती है। सोना कड़ा-कुंडल में बदलता है, दूध दही और छाछ में बदलता है। वह **`मिट्टी, सोना, दूध - इत्यादि समस्त पदार्थ एक ही सामान्य आकार से रहना चाहिये;...'** यदि ध्रुव ही सत् हो तो वह सोना, मिट्टी और दूध एकरूप रहने चाहिये। (किन्तु) एकरूप तो भासित होते नहीं। दूध की अवस्था दही आदि होती (है)। सोने की अवस्था कुंडल-कड़ा होती (है)। मिट्टी की अवस्था घड़ा और सकोरा होती है। आहाहा !

`समस्त पदार्थ एक ही सामान्य आकार से रहना चाहिये; घड़ा...'** (यानी कि) मिट्टी का घड़ा (होना), सोने का कुंडल (होना), दूध का दही (होना) **`इत्यादि भेद कभी न होना चाहिये।' यदि ध्रुव केवल सत् रहता हो तो मिट्टीमें से घड़ा, सोनेमें से कुंडल और दूधमें से दही ऐसी दशा होना चाहिये नहीं। न्याय से (बात करते हैं न) ! **`किन्तु ऐसा नहीं होता अर्थात् भेद तो अवश्य दिखाई देते हैं।'** मिट्टी ध्रुव रहकर भी घड़ा, सकोरा इत्यादि अवस्था दिखाई देती है। एकरूप दशा तो दिखाई देती नहीं। **`मिट्टी पदार्थ सर्वथा ध्रुव न रहकर...'** अत: आत्मा और परमाणु आदि पदार्थ एकरूप ध्रुव सदा न रहकर **`किसी अवस्था से उत्पन्न...'** दूध का दही होता है, दही की छाछ होती है (और) परमाणु तो नित्य (रहता) है - ध्रुव (रहता) है। पहले गोरस का दृष्टांत आ गया था।

`भेद तो अवश्य दिखाई देते हैं। इसलिये पदार्थ सर्वथा ध्रुव न रहकर किसी पर्याय से उत्पन्न और किसी पर्याय से नष्ट भी होते हैं। यदि ऐसा न माना जाये तो संसार का ही लोप हो जाये।' (क्योंकि) संसार की विकृत अवस्था का नाश होता है और मोक्ष अवस्था का उत्पाद होता है। (यदि) ध्रुव ही केवल मानो तो यह (उत्पाद-व्यय) नहीं होगा। आहाहा ! संसार की विकृत दशा का नाश होता है। अथवा दु:ख दशा का नाश होता है। भगवान आनंदस्वरूप ध्रुव नित्य रहकर दु:ख की अवस्था का नाश होता है (और) आनंद की अवस्था उत्पन्न होती है। आहाहा ! इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों नहीं हो तो वह वस्तु नहीं रह सकती। ऐसा है। है ?

`इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है, इसलिये मुक्त आत्मा के भी...' अब

ऐसा कहते हैं। सिद्ध तो करना है न ! आत्मा की सिद्ध दशा को भी `मुक्त आत्मा के भी' अर्थात् ? सभी को (ऐसा) है तो इनको भी - ऐसा (कहना है)। **`उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अवश्य होते हैं।'** परमात्मा सिद्ध होते हैं उनको भी सिद्ध की पर्याय का उत्पाद, संसार पर्याय का व्यय और ध्रुवरूप नित्य रहता है। सिद्धों को भी ऐसा है। आहाहा !

मुमुक्षु :- अस्तित्वगुण को लक्षण क्यों बताया ? जिस गुण के कारण (द्रव्य का कभी उत्पाद नहीं होता और द्रव्य का कभी नाश नहीं होता) ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उत्पाद रहित व्यय नहीं और व्यय रहित (उत्पाद) नहीं - वह तो सिद्ध करना है। बाक़ी उत्पाद को व्यय की अपेक्षा नहीं वह इस समय सिद्ध नहीं करना।

मुमुक्षु :- अस्तित्वगुण को लक्षण क्यों बताया ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह लक्षण यह है - उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्।

मुमुक्षु :- जैन सिद्धांत प्रवेशिका में तो वह बताया कि, द्रव्य का कभी भी नाश नहीं होता, द्रव्य का कभी भी उत्पाद नहीं होता - इसे अस्तित्वगुण कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- द्रव्य का भी कभी उत्पाद होता है ? वह तो पर्याय के उत्पाद की बात है। ध्रुव का कभी उत्पाद होता है ? ध्रुव की पर्याय का उत्पाद होता है और उसकी पर्याय का व्यय होता है। द्रव्य का उत्पाद नहीं। द्रव्य का उत्पाद और द्रव्य का व्यय कब होता है ? (यहाँ पर) द्रव्य अर्थात् वह त्रिकाली ध्रुव (है) वह। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त जो प्रमाण का द्रव्य है उसमें तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव होता है। आहाहा! है ?

`उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है, इसलिये मुक्त आत्मा के भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अवश्य होते हैं।'** आहाहा ! **`यदि स्थूलता से देखा जाये तो,...' अब तीन प्रकार सिद्ध करते हैं। कोई मनुष्य विरोध करता था (कहता था कि) पर्याय बदलती है - वह बदलना क्या ? बदलना तो अनित्य है। (और) वस्तु तो स्थिर नित्य है। वेदांत मानता है न !

राजकोट २००० की साल में एक बावा आया था न ! (उसे ऐसा लगा कि) **`यह अध्यात्म की बातें जैन में कहाँ से ? ये कौन महाराज हैं ? जैन में तो यह करना, यह व्रत करना ऐसी सब क्रिया (का उपदेश आता है) ऐसा कहनेवाले कौन हैं ? देखूँ तो सही** !' (हमारे पास) आया - ऐसे में बात हुई कि, `भाई ! देखिये! आत्मा है वह नित्य रहकर बदलता है।' हें ! बदलता है ? अनित्य (है) ? (इतना कहा तो) भागा।

तारणस्वामी का है न ! वह दिमाग में आया था। वह कहे कि, हें ! सिद्ध को ऐसी पर्याय हो गई ? सिद्ध को भी सभी पर्याय का बोज रह गया ? ऐसा कहते थे। अरे भगवान ! आहाहा !

(यहाँ पर कहते हैं) **`यदि स्थूलता से देखा जाये तो,...'** (अर्थात्) स्थूल लक्ष से देखा जाये तो। **`सिद्ध पर्याय का उत्पाद और संसार पर्याय का व्यय हुआ...'** यह तो स्थूलता से बात (कही)। (वैसे तो) सिद्ध होने के बाद भी उसकी पर्याय पलटती है, वह बात छोड़ दे और यह स्थूलता से - बाहर से देख, ऐसा कहते हैं। वरना तो सिद्ध पर्याय होती है वह पर्याय भी पलटती है। किन्तु इस समय का वर्तमान तुमको स्थूलता से समझाने के लिये (ऐसा कहते हैं)। सिद्ध होने के बाद भी पर्याय पलटती है वह बात तुमको तुरंत नहीं स्वीकार होती हो तो इस समय स्थूलता से कहते हैं। आहाहा ! (कहते हैं)। **`सिद्ध पर्याय का उत्पाद और संसार पर्याय का व्यय हुआ तथा आत्मत्व ध्रुव बना रहा। इस अपेक्षा से मुक्त आत्मा के भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है।'** आहाहा ! वह तारणस्वामी का शिष्य कहे, `अभी भी पर्याय ने सिद्ध का पीछा नहीं छोड़ा !' (उनका) स्वर्गवास हो गया। यहाँ पर आते थे। अरेरे...!

मुमुक्षु :- श्वेतांबर में भी कहते थे कि, कृत्यकृत्य होने के बाद परिणमन कैसा?

पूज्य गुरुदेवश्री :- (ऐसा लगता है कि) कृत्यकृत्य होने के बाद परिणमन (कैसा)? किन्तु कृत्यकृत्य तो पर्याय हो गई (है)। कृत्यकृत्य तो पर्याय हुई। पर्याय है वह एक समय की अवस्था है। वह पर्याय भले ही केवलज्ञान (की हो) किन्तु एक समय में विलय होगी। दूसरे समय पर दूसरी (आयेगी)। वैसी ही (आयेगी) किन्तु वह दूसरी (आयेगी)। वैसी ही (आयेगी)। आहाहा ! ऐसा है। (इस समय तो) तत्त्व की बात में इतनी विपरीतता हुई (है) ! आहाहा !

(यहाँ पर कहते हैं कि) **`इस अपेक्षा से मुक्त आत्मा के भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है।'** स्थूल अपेक्षा से एक बात कही। यानी कि संसार अवस्था का व्यय - अभाव, दुःख की दशा का अभाव (हुआ) मोक्षदशा का -आनंद की दशा का उत्पाद (हुआ) (और) वस्तुरूप ध्रुव (रही)।

`अथवा, मुक्त आत्मा का ज्ञान...'** लोगों को समझ में आये इसलिये (ज्ञान से बात करते हैं)। **`मुक्त आत्मा का ज्ञान ज्ञेय पदार्थों के आकाररूप हुआ करता है...' स्वयं की ज्ञान की पर्याय में (ज्ञेयाकार हुआ करता है)। जैसा ज्ञेय है, वैसा ही यहाँ पर पर्याय में ज्ञान होता है। **`इसलिये समस्त ज्ञेय पदार्थों में जिस जिस प्रकार से उत्पादादिक होता है...'** ज्ञेयो (यानी कि) जानने योग्य पदार्थों में भी जैसे जैसे उत्पाद होते हैं, वैसा वैसा यहाँ पर ज्ञान होता है। आहाहा ! ज्ञान का स्वभाव भी (ऐसा है कि) पर में जैसा उत्पाद-व्यय होता है वैसा यहाँ पर ज्ञान की पर्याय का पलटा (होता) है। आहाहा ! (अर्थात्) पहले समय में सामनेवाले (जीव की) दशा संसार अवस्था थी ऐसा जाना था। दूसरे समय

पर उसकी मोक्ष अवस्था हुई तब वह मोक्ष अवस्था को जाना। ज्ञान में वह पर्याय बदल गई। समझ में आया ? पहले समय में केवलज्ञान में ज्ञात हुआ था कि, यह आत्मा इस समय मनुष्यगति में है, दूसरे समय में वह स्वर्ग में गया तब ऐसा ज्ञान हुआ कि वह स्वर्ग में है। इतना ज्ञान में अपने कारण से उत्पाद हुआ। आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म और ऐसा सब (हैं)।

`समस्त ज्ञेय पदार्थों में जिस जिस प्रकार से उत्पादादिक होता है उस उस प्रकार से ज्ञान में उत्पादादिक होता रहता है, इसलिये मुक्त आत्मा के समय समय पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है।' यह (दूसरी) बात (कही)। एक स्थूलता से कही। अब यह सूक्ष्मता से (कहा कि) ज्ञान में एक समय में ज्ञेयों के उत्पाद-व्यय आते हैं, उसमें (सामनेवाले पदार्थ के) उत्पाद-व्यय पलटे (तो) यहाँ पर ज्ञान भी ऐसा जानता है। ज्ञान में भी ऐसा पलटा अपने कारण से होता है।

(अब) तीसरा (कहते हैं)। **`अथवा अधिक सूक्ष्मता से देखा जाये तो,...**' (पहले) स्थूलता से कहा था। (बाद में) मध्यम अवस्था से (बात कही)। (यानी कि) ज्ञेय और ज्ञानाकार से कहा। अब **`अधिक सूक्ष्मता से देखा जाये तो, अगुरुलघुगुण में होनेवाली षटगुनी हानि वृद्धि के कारण...**' आहाहा ! केवलज्ञान की पर्याय में भी षटगुण हानि वृद्धि हुआ करती है। आहाहा ! **`अगुरुलघुगुण में होनेवाली षटगुनी हानि वृद्धि के कारण मुक्त आत्मा के समय-समय पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वर्तता है।**' ये तीन बोल कहे।

`यहाँ जैसे सिद्धभगवान के उत्पादादि कहे हैं उसीप्रकार केवली भगवान के भी यथायोग्य समझ लेना चाहिये।' यह तो सिद्ध भगवान में (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) उतारे। वैसे केवली भगवान में भी - केवलज्ञान की पर्याय की उत्पत्ति, (पूर्व की) चार (बातों सहित) केवलज्ञान में भी लोक में जो घटना (होती) उसीप्रकार उत्पाद-व्यय है (उसको) उस (प्रकार) जानते। (ज्ञेयों में) जो उत्पाद-व्यय होता उसे उसप्रकार यहाँ (ज्ञान में) जानते और केवली के सूक्ष्म अगुरुलघु(गुण के) कारण केवली की पर्याय भी षट्गुण हानि वृद्धिरूप परिणमन करती है। ऐसा है ! लो ! यह १८ गाथा (पूरी) हुयी।

अथास्यात्मनः शुद्धोपयोगानुभावात्स्वयंभुवो भूतस्य कथमिन्द्रियैर्विना ज्ञानानन्दाविति संदेहमुदस्यति-

पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अहियतेजो।

जादो अदिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि।।१९।।

प्रक्षीणघातिकर्मा अनन्तवरवीर्योऽधिकतेजाः।

जातोऽतीन्द्रियः स ज्ञानं सौख्यं च परिणमति।।१९।।

अयं खल्वात्मा शुद्धोपयोगसामर्थ्यात् प्रक्षीणघातिकर्मा, क्षायोपशमिकज्ञानदर्शनासंपृक्तत्वादतीन्द्रियो भूतः सन्निखिलान्तरायक्षयादनन्तवरवीर्यः, कृत्स्नज्ञानदर्शनावरणप्रलयादधिककेवलज्ञानदर्शनाभिधानतेजाः, समस्तमोहनीयाभावादत्यन्तनिर्विकारचैतन्यस्वभावमात्मानमासादयन् स्वयमेव स्वपरप्रकाशकत्वलक्षणं ज्ञानमनाकुलत्वलक्षणं सौख्यं च भूत्वा परिणमते। एवमात्मनो ज्ञानानन्दौ स्वभाव एव। स्वभावस्य तु परानपेक्षत्वादिन्द्रियैर्विनाप्यात्मनो ज्ञानानन्दौ संभवतः।।१९।।

एवं सिद्धजीवे द्रव्यार्थिक नयेन नित्यत्वेऽपि विवक्षित पर्यायेणोत्पादव्ययध्रौव्यस्थापनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाद्वयं गतम्। अथ तं पूर्वोक्तसर्वज्ञं ये मन्यन्ते ते सम्यग्दृष्टयो भवन्ति, परम्परया मोक्षं च लभन्त इति प्रतिपादयति -

तं सव्वट्ठवरिट्ठं इट्ठं अमरासुरप्पहाणेहिं।

ये सद्दहंति जीवा तेसिं दुक्खाणि खीयंति।।१।।

तं सव्वट्ठवरिट्ठं तं सर्वार्थवरिष्ठं इट्ठं इष्टमभिमतं। कैः। **अमरासुरप्पहाणेहिं** अमरासुरप्रधानैः। **ये सद्दहंति** ये श्रद्दधति रोचन्ते **जीवा** भव्यजीवाः। **तेसिं** तेषाम्। **दुक्खाणि** वीतरागपारमार्थिकसुखविलक्षणानि दुःखानि। **खीयंति** विनाशं गच्छन्ति, इति सूत्रार्थः।।१।। एवं निर्दोषिपरमात्मश्रद्धानान्मोक्षो भवतीति कथनरूपेण तृतीयस्थले गाथा गता।। अथास्यात्मनो निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणशुद्धोपयोगप्रभावात्सर्वज्ञत्वे सतीन्द्रियैर्विना कथं ज्ञानानन्दाविति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति - **पक्खीणघादिकम्मो** ज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयस्वरूपपरमात्मद्रव्यभावनालक्षणशुद्धोपयोगबलेन प्रक्षीणघातिकर्मा सन्। **अणंतवरवीरिओ** अनन्तवरवीर्यः। पुनरपि किंविशिष्टः। **अहियतेजो** अधिकतेजाः। अत्र तेजः शब्देन केवलज्ञानदर्शनद्वयं ग्राह्यम्। **जादो सो स** पूर्वोक्तलक्षण आत्मा जातः संजातः। कथंभूतः। **अणिंदियो** अनिन्द्रिय इन्द्रियविषयव्यापाररहितः।

'अब, शुद्धोपयोग के प्रभाव से...' भगवानआत्मा शुद्ध स्वरूप प्रभु है उसका शुद्ध उपयोग, वह शुद्ध का व्यापार (उसे शुद्धोपयोग कहते हैं)। (वह) **'शुद्ध उपयोग के प्रभाव से स्वयंभू हुए...'** (अर्थात्) स्वयं-अपने से उत्पादरूप - सिद्धरूप हुए। आहाहा! ऐसे **'आत्मा के इन्द्रियों के बिना ज्ञान और आनंद कैसे होता है ?...'** उसे इन्द्रिय के बिना ज्ञान कैसे हुआ ? ऐसा कहते हैं। यहाँ तो इन्द्रिय हो तो ज्ञान होता है, ऐसा (लोग) कहते हैं - **'आत्मा के इन्द्रियों के बिना ज्ञान और आनंद कैसे होता है ? ऐसे संदेह का निवारण करते हैं :-'** आहाहा !

अनिन्द्रियः सन् किं करोति। **णाणं सोक्खं च परिणमदि** केवलज्ञानमनन्तसौख्यं च परिणमतीति। तथाहि - अनेन व्याख्यानेन किमुक्तं भवति, आत्मा तावन्निश्चयेनानन्तज्ञानसुखस्वभावोऽपि व्यवहारेण संसारावस्थायां कर्मप्रच्छादितज्ञानसुखः सन् पश्चादिन्द्रियाधारेण किमप्यल्पज्ञानं सुखं च परिणमति। यदा पुनर्निर्विकल्पस्वसंवित्तिबलेन कर्माभावो भवति तदा क्षयोपशमाभावादिन्द्रियाणि न सन्ति स्वकीयातीन्द्रियज्ञानं सुखं चानुभवति। ततः स्थितं इन्द्रियाभावेऽपि स्वकीयानन्तज्ञानं सुखं चानुभवति। तदपि कस्मात्। स्वभावस्य परापेक्षा नास्तीत्यभिप्रायः।।१९।।

अब, शुद्धोपयोगके प्रभावसे स्वयंभू हुए इस (पूर्वोक्त) आत्माके इन्द्रियोंके बिना ज्ञान और आनन्द कैसे होता है ? ऐसे संदेहका निवारण करते हैं :-

गाथा-१९

प्रक्षीण घाति कर्म, अनहद वीर्य, अधिक प्रकाशने।
इन्द्रिय-अतीत थयेल आत्मा ज्ञानसौख्ये परिणमे।।१९।।

अन्वयार्थ :- [प्रक्षीणघातिकर्मा] जिसके घातीकर्म क्षय हो चुके हैं, **[अतीन्द्रियः जातः]** जो अतीन्द्रिय हो गया है, **[अनन्तवरवीर्यः]** अनन्त जिसका उत्तम वीर्य है और **[अधिकतेजाः]** अधिक जिसका (केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप) तेज है **[सः]** ऐसा वह (स्वयंभू आत्मा) **[ज्ञानं सौख्यं च]** ज्ञान और सुखरूप **[परिणमति]** परिणमन करता है।

टीका :- शुद्धोपयोगके सामर्थ्यसे जिसके घातीकर्म क्षयको प्राप्त हुए हैं, क्षायोपशमिक ज्ञान-दर्शनके साथ असंपृक्त (संपर्क रहित) होनेसे जो अतीन्द्रिय होगाय है, समस्त अन्तरायका क्षय होनेसे अनन्त जिसका उत्तम वीर्य है, समस्त ज्ञानावरण और दर्शनावरणका प्रलय हो जानेसे अधिक जिसका केवलज्ञान और केवलदर्शन नामक तेज है-ऐसा यह (स्वयंभू) आत्मा, समस्त मोहनीयके अभावके कारण अत्यंत निर्विकार शुद्ध चैतन्य स्वभाववाले आत्माका (अत्यन्त

`पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अहियतेजो।
जादो अदिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि।।१९।।'
`प्रक्षीण घाति कर्म, अनहद वीर्य, अधिक प्रकाशने।
इन्द्रिय-अतीत थयेल आत्मा ज्ञानसौख्ये परिणमे।।१९।।'

आहाहा ! यह ज्ञान अधिकार है न !

टीका :- **`शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से...'** यह कहकर ऐसा कहा कि, व्यवहार रत्नत्रय और शुभउपयोग के सामर्थ्य से केवलज्ञान होता नहीं। समझ में आया ? शुभ-अशुभ परिणाम -

निर्विकार शुद्ध चैतन्य जिसका स्वभाव है ऐसे आत्माका) अनुभव करता हुआ स्वयमेव स्वपरप्रकाशकता लक्षण ज्ञान और अनाकुलता लक्षण सुख होकर परिणमित होता है। इसप्रकार आत्माका ज्ञान और आनन्द स्वभाव ही है। और स्वभाव परसे अनपेक्ष होनेके कारण इन्द्रियोंके बिना भी आत्माके ज्ञान और आनन्द होता है।

भावार्थ :- आत्माको ज्ञान और सुखरूप परिणमित होनेमें इन्द्रियादिक पर निमित्तोंकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप स्वपर-प्रकाशता है ऐसा ज्ञान और जिसका लक्षण अनाकुलता है ऐसा सुख आत्माका स्वभाव ही है।।१९।।

अशुद्ध उपयोग है। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति-स्तुति-वंदन-विनय (आदि का भाव हो तथापि) वह सब विकल्प और अशुद्ध उपयोग है। आहाहा ! उस अशुद्ध उपयोग से केवलज्ञान नहीं होता। अशुद्ध उपयोग से तो बंधन होता है। आहाहा !

`शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से जिसके घातीकर्म क्षय को प्राप्त हुए हैं,...'** घातीकर्म क्षय को प्राप्त हुए हैं अत: केवलज्ञान हुआ है ऐसा नहीं लेकर - इस तरफ भगवानआत्मा द्रव्य-गुण से शुद्ध है। उसके प्रति का शुद्ध उपयोग का व्यापार करने पर (घातीकर्म क्षय हुये हैं)। आहाहा ! उस **`शुद्धोपयोग का सामर्थ्य से जिसके घातीकर्म क्षय को प्राप्त हुए हैं...' वह निमित्त से कथन है। बाक़ी सामर्थ्य से तो केवलज्ञान हुआ है। वह भी अपेक्षित कथन है। शुद्ध उपयोग के सामर्थ्य से (केवलज्ञान) हुआ। वह भी पूर्व की शुद्धउपयोग(रूप) पर्याय थी। इसलिये बाद में (पूर्ण पर्याय) हुई वह भी अपेक्षित (कथन) है। बाक़ी केवलज्ञान की पर्याय स्वयं से वर्तमान (में) स्वतंत्र परिणमित होकर हुई है। अब इतने सारे भेद ! आहाहा ! किन्तु यहाँ पर समझाना है न ! (इसलिये ऐसा कहा)।

`शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से जिसके घातीकर्म क्षय को प्राप्त हुए हैं, क्षायोपशमिक ज्ञान-दर्शन के साथ असंपृक्त (संपर्क रहित) होने से...'** अल्प ज्ञान में संपर्क रहित होने से आहाहा ! है ? **`जो अतीन्द्रिय हो गया है,...' भगवानआत्मा की पर्याय अतीन्द्रिय हुई है। आहाहा ! **`समस्त अंतराय का क्षय होने से अनंत जिसका उत्तम वीर्य है,...'** है न ? अनंत वीर्य ! आहाहा ! शुद्ध उपयोग के सामर्थ्य से समस्त अंतराय का क्षय होने से आहाहा ! **`समस्त अंतराय का क्षय होने से अनंत जिसका उत्तम वीर्य है,...'** अनंत... अनंत... पूर्ण आनंद, ज्ञान आदि पर्याय की रचना करे, ऐसा अनंत वीर्य प्रगट हुआ है। आहाहा !

और, **`समस्त ज्ञानावरण और दर्शनावरण का प्रलय हो जाने से...'** चार (घाति) कर्म लेने हैं न ! अत: प्रक्षीणघाती कर्मों का नाश हो जाने से, ऐसा (कहा)। (और) पहले कहा, क्षायोपशमिक ज्ञान का अभाव होने से अतीन्द्रिय हुआ है। अब (कहते हैं), समस्त

अंतराय का क्षय होने से अनंत वीर्य प्रगट हुआ है। अब वही (कहेंगे)। अधिक तेज (अर्थात्) अधिक प्रकाश (प्रगट हुआ है)। आहाहा ! **`समस्त ज्ञानावरण और दर्शनावरण का प्रलय हो जाने से...'** (अर्थात्) नाश होने से। प्र=विशेष लय=नाश होने से। **`अधिक जिसका केवलज्ञान और केवलदर्शन नामक तेज है...'** आहाहा ! **`ऐसा यह (स्वयंभू)...'** ऐसा जो भगवानआत्मा स्वयं ही केवलज्ञान केवलदर्शनरूप (और) अतीन्द्रियरूप परिणमित हुआ है। आहाहा ! अनंत अनंत वीर्यरूप स्वयं स्वयं से परिणमित हुआ है। आहाहा !

(किसी को तो) अभी भी समयसार निरस लगता (है)। अररर...! अरे प्रभु ! विषयानंद में ब्रह्मानंद मानता है वह। अररर...! गज़ब बात है।! क्या करे ? प्रभु ! अरे...! इस समय उसकी पर्याय का वह काल अज्ञान से है। अरे...! उसे दुःख होगा। ऐसा जिसे मिथ्या अभ्यास है उसे (दुःख होगा)। अरे...! कोई प्राणी दुःखी हो तो उसका तिरस्कार नहीं करना ? (उस पर तो) करुणा होती है। आहाहा ! श्रीमद् ने कहा है न ! **`कोई क्रिया जड़ थई रह्यां, शुष्क ज्ञान मां कोई, माने मारग मोक्षनो करुणा उपजे जोई।'** अरेरे...! क्या करता है ? प्रभु ! दुनिया को ठगता है। किन्तु तू ठगा जायेगा, प्रभु ! आहाहा ! (तुम स्वयं को) प्रत्येक पर्याय में ठगते हो, बापू ! भाई! आहाहा !

(यहाँ पर कहते हैं कि) **`ऐसा यह (स्वयंभू) आत्मा, समस्त मोहनीय के अभाव के कारण अत्यंत निर्विकार शुद्ध चैतन्य स्वभाववाले आत्मा का...'** आहाहा ! समस्त मोहनीय के अभाव के कारण। (इसमें) दर्शन (मोहनीय और) चारित्र(मोहनीय) दोनों (आ जाते हैं)। **`अनंत निर्विकार शुद्ध चैतन्य स्वभाव...'** (यानी कि) जैसा निर्विकारी शुद्ध चैतन्यस्वभाव स्वभावरूप है, वैसा ही पर्यायरूप अत्यंत निर्विकारी शुद्ध स्वभावरूप परिणमित हो गया। आहाहा !

`अत्यंत निर्विकार शुद्ध चैतन्य जिसका स्वभाव है ऐसे आत्मा का अनुभव करता हुआ...'** आहाहा ! अनंत ज्ञान का तेज है, अनंत दर्शन का तेज है, अनंत वीर्य का सामर्थ्य है और मोह के अभाव से शुद्ध चैतन्य (जिसका) स्वभाव (है)। ऐसे आत्मा का अनुभव करता हुआ। **`स्वयमेव स्वपरप्रकाशकता लक्षण ज्ञान और अनाकुलता लक्षण सुख होकर...' आहाहा ! स्वपर प्रकाशकता लक्षण ज्ञान है। ऐसा स्वयं स्वपर प्रकाशकता ज्ञान(रूप) परिणमित होता और अनाकूल सुख - आनंदरूप अनाकूलता लक्षण आनंद (है)। अतीन्द्रिय आनंद (है)। आहाहा ! ऐसे सुख(रूप) होकर परिणमित होता है। **`इसप्रकार आत्मा का ज्ञान और आनंद स्वभाव ही है।'** आहाहा ! इसप्रकार आत्मा का पर्याय में (भी) ज्ञान और आनंद स्वभाव ही है। **`और स्वभाव पर से अनपेक्ष होने के कारण...'** (अर्थात्) स्वभाव को पर की अपेक्षा - इन्द्रियों की अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा ! अनपेक्ष = स्वतंत्र, उदासीन, अपेक्षा रहित। **`इन्द्रियों के बिना भी आत्मा के ज्ञान और आनंद होता है।'** इन्द्रिय के बिना

भी (आत्मा को अनुभव है)। इस समय भी इन्द्रिय के कारण ज्ञान (होता) नहीं। केवल इन्द्रिय तो निमित्त है किन्तु जो निमित्त के आश्रय से होता है, वह इन्द्रिय ज्ञान है, और वहाँ (सिद्ध दशा में) तो पूर्ण अनइन्द्रिय ज्ञान हो गया। आहाहा ! ऐसे अनइन्द्रिय ज्ञान और आनंद का अनुभव करनेवाले (आत्मा को) आहाहा ! **`इन्द्रियों के बिना भी आत्मा के ज्ञान और आनंद होता है।'** ऐसा सिद्ध करना है।

`भावार्थ :- आत्मा को ज्ञान और सुखरूप परिणमित होने में...'** भगवानआत्मा को केवलज्ञानरूप होने में और अतीन्द्रिय आनंदरूप परिणमित होने में, **`इन्द्रियादिक पर निमित्तों की आवश्यकता नहीं है;...' आहाहा ! **`स्वयंभू'** है - स्वयं से ही अनंत ज्ञान और आनंदरूप भगवान - सिद्ध परिणमित हुये हैं। आहाहा ! **`क्योंकि जिसका लक्षण अर्थात् स्वरुप स्वपरप्रकाशकता है...'** वह तो ज्ञान का लक्षण है। ऐसा जो **`ऐसा ज्ञान...'** स्वपरप्रकाशकता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप (है)। ऐसा जो ज्ञान। **`और अनाकुलता है ऐसा सुख आत्मा का स्वभाव ही है।'** आहाहा ! (आत्मा अर्थात्) पर्याय का हाँ ! आहाहा !

त्रिकाल अतीन्द्रिय आनंद और अतीन्द्रिय ज्ञान से भरा भगवान है ही। किन्तु यहाँ पर तो शुद्ध उपयोग के बल से कहना है न ! (वह) पर्याय (है)। उस पर्याय में भी वह आत्मा का स्वभाव है। (अर्थात्) अनंत ज्ञान होना और अनंत आनंदरूप होना तो आत्मा का स्वभाव है। उसे कोई इन्द्रिय की या मन की अपेक्षा नहीं। आहाहा! यह १९ (गाथा पूर्ण) हुई।

अब यह विवाद का विषय है। श्वेतांबर कहते हैं न ! केवली को क्षुधा रोग होता है इसलिये आहार लेते हैं। भगवती सूत्र में पाठ आता है न ! भगवान महावीर को रोग हुआ। इसलिये एक मुनि रोने लगे। सिंहमुनि थे वे जंगल में रोने लगे। अरेरे...! भगवान का देह छूट जायेगा। (इसलिये) भगवान ने उनको बुलाया। (और कहा) `हे सिंह ! अभी मुझे तो कई बरस रहना है और मुझे यह रोग हुआ है तो रेवती के पास जाओ ! उसने मेरे लिये आहार बनाया है वह नहीं लेना किन्तु उसने जो घोड़े के लिये बनाया है वह आहार लाना।' वे सब बातें कल्पित हैं। अरे...! क्या करें ? श्वेतांबर की सभी कथन शैली ऐसी हैं। आहाहा ! उसका यहाँ निषेध करते हैं।

अथातीन्द्रियत्वादेव शुद्धात्मनः शारीरं सुखदुःखं नास्तीति विभावयति -

सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं।
जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं ।।२०।।
सौख्यं वा पुनर्दुःखं केवलज्ञानिनो नास्ति देहगतम्।
यस्मादतीन्द्रियत्वं जातं तस्मात्तु तज्ज्ञेयम्।।२०।।

यत एव शुद्धात्मनो जातवेदस इव कालायसगोलोत्कूलितपुद्गलाशेषविलासकल्पो नास्तीन्द्रियग्रामस्तत एव घोरघनघाताभिघातपरम्परास्थानीयं शरीरगतं सुखदुःखं न स्यात्।।२०।।

अथातीन्द्रियत्वादेव केवलिनः शरीराधारोद्भूतं भोजनादिसुखं क्षुधादिदुःखं च नास्तीति विचारयति - **सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि** सुखं वा पुर्नदुःखं वा केवलज्ञानिनो नास्ति। कथंभूतम्। **देहगदं** देहगतं देहाधारजिह्वेन्द्रियादिसमुत्पन्नं कवलाहारादिसुखम्, असातोदयजनितं क्षुधादिदुःखं च। कस्मान्नस्ति। **जम्हा अदिंदियत्तं जादं** यस्मान्मोहादिघातिकर्माभावे पञ्चेन्द्रियविषयव्यापाररहितत्वं जातम्। **तम्हा दु तं णेयं** तस्मादतीन्द्रियत्वाद्धेतोरतीन्द्रियमेव तज्ज्ञानं सुखं च ज्ञेयमिति। तद्यथा - लोहपिण्डसंसर्गाभावादग्निर्यथा घनघातपिट्टनं न लभते तथायमात्मापि लोहपिण्डस्थानीयेन्द्रियग्रामाभावात् सांसारिकसुखदुःखं नानुभवतीत्यर्थः। कश्चिदाह - केवलिनां भुक्तिरस्ति, औदारिकशरीरसद्भावात्। असद्वेद्यकर्मोदयसद्भावाद्वा। अस्मदादिवत्। परिहारमाह - तद्भगवतः शरीरमौदारिकं न भवति किंतु परमौदारिकम्। तथा चोक्तं - ``शुद्धस्फटिकसंकाशं तेजोमूर्तिमयं वपुः। जायते क्षीणदोषस्य सप्तधातुविवर्जितम्''।। यच्चोक्तमसद्वेद्योदयसद्भावात्तत्र परिहारमाह - यथा व्रीह्यादिबीजं जलसहकारिकारणसहितमङ्कुरादिकार्यं जनयति तथैवासद्वेद्यकर्म मोहनीयसहकारिकारणसहितं क्षुधादिकार्यमुत्पादयति। कस्मात्। `मोहस्स बलेन घाददे जीवं' इति वचनात्। यदि पुनर्मोहाभावेऽपि क्षुधादिपरीषहं जनयति तर्हि वधरोगादिपरीषहमपि जनयतु, न च

`अब अतीन्द्रियता के कारण ही शुद्ध आत्मा के (केवली भगवान के) शारीरिक सुख दुःख नहीं है...' उन्हें शरीर में असाता के उदय से रोग नहीं है। वैसे आहार मिलने से उन्हें सुख होता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! भगवतीसूत्र का १५वाँ अध्ययन है। उसमें वे सब बातें हैं। भगवान को रोग हुआ, तब सब को रुदन आया, भगवान ने बुलाया (और कहा) जाइये, आहार लेने जाइये ! आहार लाये, आहार किया, शरीर निरोग हो गया, सभी देव-देवी-मनुष्य संतुष्ट हो गये ! अरेरे...! ऐसा भगवान को होता नहीं। इस समय श्वेतांबर लोगों को बुरा लगता है। इस टीका में कई बातें (आयी) हैं। इस २०वीं गाथा की टीका में बहुत लिखा है। कवल आहार उन्हें होता नहीं। तो (कोई कहता है) उनको आहार लिखा है न ! शास्त्र में केवली को आहार (होता है ऐसा) लिखा है न ! आहार के छः प्रकार हैं। कर्म आहार, नोकर्म आहार, (इत्यादि आता है)। नोकर्म

तथा। तदपि कस्मात्। 'भुक्त्युपसर्गाभावात्' इति वचनात्। अन्यदपि दूषणमस्ति। यदि क्षुधाबाधास्ति तर्हि क्षुधाक्षीणशक्तेरनन्तवीर्यं नास्ति। तथैव क्षुधादुःखितस्यानन्तसुखमपि नास्ति। जिह्वेन्द्रियपरिच्छित्तिरूपमतिज्ञानपरिणतस्य केवलज्ञानमपि न संभवति। अथवा अन्यदपि कारणमस्ति। असद्वेद्योदयापेक्षया सद्वेद्योदयोऽनन्तगुणोऽस्ति। ततः कारणात् शर्कराराशिमध्ये निम्बकणिकावदसद्वेद्योदयो विद्यमानोऽपि न ज्ञायते। तथैवान्यदपि बाधकमस्ति - यथा प्रमत्तसंयतादितपोधनानां वेदोदये विद्यमानेऽपि मन्दमोहोदयत्वादखण्डब्रह्मचारिणां स्त्रीपरीषहबाधा नास्ति, यथैव च नवग्रैवेयकाद्यहमिन्द्रदेवानां वेदोदये विद्यमानेऽपि मन्दमोहोदयेन स्त्रीविषयबाधा नास्ति, तथा भगवत्यसद्वेद्योदये विद्यमानेऽपि निरवशेषमोहाभावात् क्षुधाबाधा नास्ति। यदि पुनरुच्यते भवद्भिः मिथ्यादृष्टयादिसयोगकेवलिपर्यन्तास्त्रयोदशगुणस्थानवर्तिनो जीवा आहारका भवन्तीत्याहारकमार्गणायामागमे भणितमास्ते, ततः कारणात् केवलिनामाहारोऽस्तीति। तदप्ययुक्तम्। ``णोकम्म-कम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो। ओजमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो''।। इति गाथाकथितक्रमेण यद्यपि षट्प्रकार आहारो भवति तथापि नोकर्माहारापेक्षया केवलिनामाहारकत्वमवबोद्धव्यम्। न च कवलाहारापेक्षया। तथाहि - सूक्ष्माः सुरसाः सुगन्धा अन्यमनुजानामसंभविनः कवलाहारं विनापि किञ्चिदूनपूर्वकोटिपर्यन्तं शरीरस्थितिहेतवः सप्तधातुरहितपरमौदारिकशरीरनोकर्माहारयोग्या लाभान्तरायकर्मनिरवशेषक्षयात् प्रतिक्षणं

के परमाणु आते हैं। (उसे नोकर्म आहार कहते हैं)। यह कवलाहार नहीं है। अरे...! भगवान ! अनंत आनंद के नाथ को कवलाहार कैसा? वह भगवतीसूत्र में पाठ है और उसकी टीका में वहाँ तक पाठ है (कि) मुर्गी का मांस (खाया) बिल्ली ने मुर्गी को मार डाला (था) उसका मांस लाये थे। यहाँ पर एक भाई आये थे (उनको) पूछा था। 'यह क्या लिखा है ?' (उन्होंने कहा) कि 'पूर्वाचार्य का मत है।' टीका में है। पूर्वाचार्य का मत है। भगवान को भी (मांस का आहार था)। अररर...! गज़ब बात है ! ऐसा टीका में पाठ है। १७ बार तो श्वेतांबर का भगवतीसूत्र पढ़ा था। आहाहा ! (टीका में ऐसा लिखा है कि) मूल अर्थ लेना। वृद्ध आचार्य का ऐसा मत है कि मूल अर्थ मांस है - वह लेना। ऐसा लिखा है। नीचे अर्थ है। यहाँ पर भगवतीसूत्र है। नीचे अर्थ में (लिखा) है। (दूर) चले गये, बहुत दूर चले गये। मार्ग बदल डाला ! मांस तो समकितदृष्टि को नहीं होता। आहाहा! अरे...!

पुरूषार्थसिद्धि उपाय में तो ऐसी गाथा ली है कि, सामान्य प्राणी जिसे मांस, शराब आदि आठ व्यसन का त्याग नहीं होता (तो) वह श्रवण करने योग्य नहीं। ७४ गाथा है। मच्छी का तेल आदि आता है न ! आहाहा ! इस समय तो बच्चों को अनुमति देते हैं। जाइये अँडे का रस लीजिये ! तुम्हारी तंदुरस्ती ठीक रहेगी! यहाँ पर तो कहते हैं कि जिसको ऐसे मांस, शराब आदि का त्याग नहीं वह तो जैनधर्म को श्रवण करने योग्य भी नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। इसके बजाय केवली को मांस का (आहार)

पुद्गला आस्रवन्तीति नवकेवलिलब्धिव्याख्यानकाले भणितं तिष्ठति। ततो ज्ञायते नोकर्माहारापेक्षया केवलिनामाहारकत्वम्। अथ मतम् - भवदीयकल्पनया आहारानाहारकत्वं नोकर्माहारापेक्षया, न च कवलाहारापेक्षया चेति कथं ज्ञायते। नैवम्। ``एकं द्वौ त्रीन् वानाहारकः'' इति तत्त्वार्थे कथितमास्ते। अस्य सूत्रस्यार्थः कथ्यते - भवान्तरगमनकाले विग्रहगतौ शरीराभावे सति नूतनशरीरधारणार्थं त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्यपुद्गलपिण्डग्रहणं नोकर्माहार उच्यते। स च विग्रहगतौ कर्माहारे विद्यमानेऽप्येकद्वित्रिसमयपर्यन्तं नास्ति। ततो नोकर्माहारापेक्षयाऽऽहारानाहार-कत्वमागमे ज्ञायते। यदि पुनः कवलाहारापेक्षया तर्हि भोजनकालं विहाय सर्वदैवानाहारक एव, समयत्रयनियमो न घटते। अथ मतम् - केवलिनां कवलाहारोऽस्ति मनुष्यत्वात् वर्तमानमनुष्यवत्। तदप्ययुक्तम्। तर्हि पूर्वकालपुरुषाणां सर्वज्ञत्वं नास्ति, रामरावणादिपुरुषाणां च विशेषसामर्थ्यं नास्ति वर्तमानमनुष्यवत्। न च तथा। किंच छद्मस्थतपोधना अपि सप्तधातुरहितपरमौदारिकशरीराभावे `छट्ठो त्ति पढमसण्णा' इति वचनात् प्रमत्तसंयतषष्ठगुणस्थानवर्तिनो यद्यप्याहारं गृह्णन्ति तथापि ज्ञानसंयमध्यानसिद्ध्यर्थं, न च देहममत्वार्थम्। उक्तं च - ``कायस्थित्यर्थमाहारः कायो ज्ञानार्थमिष्यते। ज्ञानं कर्मविनाशाय तन्नाशे परमं सुखम्''।। ``ण बलाउसाहणट्ठं ण सरीरस्स य चयट्ठ तेजट्ठं। णाणट्ठ संजमट्ठं झाणट्ठं चेव भुंजंति''।। तस्य भगवतो ज्ञानसंयमध्यानादिगुणाः स्वभावेनैव तिष्ठन्ति न चाहारबलेन। यदि पुनर्देहममत्वेनाहारं गृह्णाति तर्हि छद्मस्थेभ्योऽप्यसौ हीनः प्राप्नोति। अथोच्यते - तस्यातिशयविशेषात्प्रकटा भुक्तिर्नास्ति प्रच्छन्ना विद्यते। तर्हि परमौदारिकशरीरत्वाद्भुक्तिरेव नास्त्ययमेवातिशयः किं न भवति। तत्र तु प्रच्छन्नभुक्तौ मायास्थानं दैन्यवृत्तिः, अन्येऽपि पिण्डशुद्धिकथिता दोषा बहवो भवन्ति। ते चान्यत्र तर्कशास्त्रे ज्ञातव्याः। अत्र चाध्यात्मग्रन्थत्वान्नोच्यन्त इति। अयमत्र भावार्थः- इदं वस्तुस्वरूपमेव ज्ञातव्यमत्राग्रहो न कर्तव्यः। कस्मात्। दुराग्रहे सति रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति ततश्च निर्विकारचिदानन्दैकस्वभावपरमात्मभावनाविघातो भवतीति।।२०।।

सिद्ध करना ! प्रभु ! अरर...! काल विपरीत हो गया ! आहाहा! है ?

`सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं।
जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं।।२०।।'
`कँइ देहगत नथी सुख के नथी दुःख केवलज्ञानीने।
जेथी अतीन्द्रियता थई ते कारणे ए जाणजे।।२०।।'

आहाहा ! टीका में जयसेन आचार्य ने बहुत लिया है। बहुत लिया है।

`टीका :- जैसे अग्नि को लोहपिंड के तप्त पुद्गलों का समस्त विलास नहीं है...'** (अर्थात्) भिन्न अग्नि को लोहपिंड को तप्त पुद्गलों का समस्त विलास नहीं। (**`अर्थात् अग्नि लोहे के गोले के पुद्गलों के विलास से - उनकी क्रिया से भिन्न है)**...'** अग्नि केवल भिन्न है। आहाहा ! **`उसीप्रकार शुद्ध आत्मा के** (**अर्थात् केवलज्ञानी भगवान के**) **इन्द्रिय-समूह नहीं है;...'** आहाहा ! **`इसीलिये जैसे अग्नि को घन के घोर आघातों की परंपरा नहीं है...'** आहाहा !

अब अतीन्द्रियताके कारण ही शुद्ध आत्माके (केवली भगवानके) शारीरिक सुख दुःख नहीं है यह व्यक्त करते हैं :-

गाथा-२०

कँइ देहगत नथी सुख के नथी दुःख केवलज्ञानीने।
जेथी अतीन्द्रियता थई ते कारणे ए जाणजे।।२०।।

अन्वयार्थ :- [केवलज्ञानिनः] केवलज्ञानीके **[देहगतं]** शरीरसम्बंधी **[सौख्यं]** सुख **[वा पुनः दुःखं]** या दुःख **[नास्ति]** नहीं है, **[यस्मात्]** क्योंकि **[अतीन्द्रियत्वं जातं]** अतीन्द्रियता उत्पन्न हुई है **[तस्मात् तु तत् ज्ञेयम्]** इसलिये ऐसा जानना चाहिये।

टीका :- जैसे अग्निको लोहपिण्डके त्पत पुद्‌गलोंका समस्त विलास नहीं है (अर्थात् अग्नि लोहेके गोलेके पुद्‌गलोंके विलाससे-उनकी क्रियासे भिन्न है) उसीप्रकार शुद्ध आत्माक (अर्थात् केवलज्ञानी भगवानके) इन्द्रिय-समूह नहीं है; इसीलिये जैसे अगनिको घनके घोर आघातोंकी परम्परा नहीं है (लोहेके गोलेके संसर्गका अभाव होने पर घनके लगातार आघातोंकी भयंकर मार अग्निपर नहीं पड़ती। इसीप्रकार शुद्ध आत्माके शरीर सम्बन्धी सुख दुःख नही हैं।

भावार्थ :- केवली भगवानके शरीर सम्बन्धी क्षुधादिका दुःख या भोजनादिका सुखनहीं होता इसलिये उनके कवलाहार नहीं होता।।२०।।

(यानी कि) भिन्न अग्नि को घन के आघात पड़ते हैं ? (नहीं पड़ते)। यदि अग्नि लोहे में प्रवेश करती है तो घन पड़ते हैं। आहाहा ! यह बैलगाड़ी के पहिये बनाते हैं न ! अत्यंत तपाते हैं पहिया अग्नि की गर्मी से (लाल हो जाता है)। बाद में टीपते हैं। उसीप्रकार अग्नि लोहे में प्रवेश करती है तो उसे घन पड़ते है किन्तु भिन्न अग्नि हो तो उसे घन पड़ते ? आहाहा ! आहाहा !

उसीप्रकार जिसे इन्द्रियसमूह नहीं है, आहाहा ! `(**केवलज्ञानी भगवान के**) **इन्द्रिय-समूह नहीं है; इसीलिये जैसे अग्नि को घन के घोर आघातों की परंपरा नहीं है...**' घोर घन के (आघात) एक के बाद एक पडते हैं न ! आहाहा !

वहाँ पालेज की दुकान के पीछे एक बढ़ई था। वह व्होरा बढ़ई था। वह ऐसा सब करता था और वह करता था तब हम अंदर देखने के लिये जाते थे। अग्नि का यदि लोहे में प्रवेश हुआ तो घोर घन के आघात (पड़ते हैं)। (किन्तु जो) अग्नि भिन्न

है उसे आघात की परंपरा नहीं है। **`लोहे के गोले के संसर्ग का अभाव होने पर...'** यानी कि, अग्नि का लोहपिंड में प्रवेश नहीं करने पर, **`घन के लगातार आघातों की भयंकर मार अग्नि पर नहीं पडती।'** आहाहा ! **`इसीप्रकार शुद्ध आत्मा के शरीर संबंधी सुख दुःख नहीं है।'** आहाहा ! भगवान को शरीर में रोग होता है (वह बात ही कल्पित है)। परम औदारिक शरीर में रोग होता नहीं। आहाहा ! यद्यपि तीर्थंकर का तो जन्म से ही परम औदारिक शरीर होता है। आहाहा ! तीर्थंकर जो है उनको तो जन्म से परम औदारिक शरीर (होता है)। उनको (जन्म से) रोग होता नहीं। क्षुधा - आहार होता है किन्तु उनको दुःख नहीं होता, आहाहा ! आहार लेते हैं, पानी लेते हैं किन्तु उनको (इसका) कोई सुख दुःख नहीं। उनको पहले से रोग नहीं ऐसा कहना है। उनके शरीर में रोग आता है, बुखार आता है (ऐसा होता नहीं)। आहाहा ! ऐसा तो परमऔदारिक शरीर है ! और केवली होते हैं तब तो परमऔदारिक (शरीर रहता है)। अन्य अज्ञानी सामान्य मनुष्य को केवल(ज्ञान) होता है तो भी उनका शरीर परमऔदारिक बन जाता है। यह बात श्वेतांबर में नहीं है। आहाहा ! ऐसी बात है।

यशोविजयजी ने लिखा है कि, केवली को आहार है वह निश्चय करना। संशय नहीं करना कि केवली को आहार होता है या नहीं। आहाहा ! यशोविजयजी के ग्रंथ में है। अंत में (आता) है। ऐसा (लिखा है कि) केवली को आहार होता है या नहीं ऐसा संदेह नहीं करना। केवली को आहार होता ही है। आहाहा !

मुमुक्षु :- क्षुधा परिषह कहा तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- क्षुधा परिषह कहा है - इसमें लिखा है। वह परिषह है किन्तु वह तो कहाँ ? अंश मात्र अशाता का उदय है। सारे समुद्र के पानी में जैसे चुटकी भर राख जैसा है। राग व्यक्त हो ऐसा उसका अशाता का उदय होता नहीं। जयसेन आचार्य की टीका में देखा ? आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि, **`नवग्रैवेयकाद्यहमिन्द्रदेवानां वेदोदये विद्यमानेऽपिमन्दमोहोदयेन स्त्रीविषयबाधा'** (अर्थात्) ग्रैवयेक के देव असंयमी हैं, तथापि उन्हें पुरुषवेद (का उदय) अत्यंत मंद है। उन्हें स्त्री विषय की बाधा नहीं है। आहाहा ! ग्रैवेयक के असंयमी देव को (स्त्री विषय की बाधा नहीं है)। वह (जयसेनाचार्यदेव की) संस्कृत टीका में है। समझ में आया ? आहाहा ! **`नवग्रैवेयकाद्यहमिद्रदेवानां वेदोदये'** - (यानी कि) उन्हें (पुरुष) वेद का उदय होने पर भी, **`विद्यमानेऽपिमन्दमोहोदयेन स्त्रीविषयबाधा, नास्ति, तथा भगवत्यसद्वेद्योदये विद्यमानेऽपि निरवशेष मोहावात् क्षुधाबाधा नास्ति।'** संस्कृत टीका में यह कई बार पढ़ा गया है। आहाहा ! तो कहते हैं कि, उनको आहार कहा है न ! **`आहारका भवन्तीत्याहारकमार्गणायामारगमे**

भणितामास्ते' (अर्थात्) आहार कहा है न ? '**ततः कारणात केवलिनामाहारऽस्तीति। तदप्ययुक्तम्। णोकम्म-कम्महारो कवलाहारो च लेप्पमाहारो। ओजमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो।**' उनको नौकर्म आहार होता है। '**न च कवलाहारापेक्षया**' - है उसमें संस्कृत में (लिखा है) कवल आहार होता नहीं, (ऐसा है) भाई ! आहाहा !

मोक्षमार्ग(प्रकाशक) में कहा था न कि, आहार हम लेते हैं तब श्वास को खिंचना पड़ता है जबकि... भगवान को वह कहाँ है ? आहाहा ! बहुत विपरीतता... ! आहार संज्ञा छठे (गुणस्थान) से नहीं है। तथापि नौवें (गुणस्थान तक) वेदोदय होता है। तथापि उन्हें स्त्री का संग नहीं है। मंद उदय है। आहाहा ! तो भगवान को तो साता का तीव्र उदय है और असाता का उदय तो अनंतवें भाग थोड़ा है। आहाहा! समुद्र में असंख्य योजन के शीतल पानी में ज़रा सा उष्ण पानी पड़े उसकी गिनती क्या है ? आहाहा !

श्वेतांबर के ग्रंथ - शास्त्र सब कल्पित हैं। भगवान के बनाये हुये नहीं। अरे...! समकिती के बनाये हुये नहीं। लोगों को थोड़ा कठिन पडता है ! स्थानकवासी या श्वेतांबर दोनों के शास्त्र (कल्पित हैं)। स्थानवासी ३२ और श्वेतांबर ४५ मानते हैं (किन्तु) दोनों कल्पित हैं। आहाहा ! इसमें (जयसेनाचार्यदेव की टीका में) बहुत लिखा है।

यहाँपर कहते हैं कि, अग्नि को जिस प्रकार (घन के आघात) नहीं, '**इसप्रकार शुद्ध आत्मा के शरीर संबंधी सुख दुःख नही है।**' (अर्थात्) उन्हें क्षुधा से दुःख लगता है और आहार लेने पर सुख होता है, ऐसा (नहीं)। अरे...! सातवें गुणस्थान से आहार का विकल्प ही नहीं (तो केवलज्ञानी को आहार का विकल्प किस प्रकार हो) ? और सातवें गुणस्थान से तो वंद्य-वंदकभाव भी नहीं। यानी कि 'मैं भगवान को वंदन करता हूँ और मैं वंदन करनेवाला' - वह तो छठे गुणस्थान तक (होता है)। वह प्रवचनसार पहली (गाथा में) आ गया है। मैं कौन (कि), स्वसंवेदन करनेवाला मैं आत्मा ! ज्ञान, दर्शन संपन्न (हूँ) ! मैं भगवान को वंदन करता (हूँ)। वह तो विकल्प है। आहाहा! वह विकल्प भी छठे गुणस्थान तक होता है। सातवें (गुणस्थान) के बाद वंद्य-वंदकभाव होता नहीं। आहाहा !

'भावार्थ :- केवली भगवान के शरीर संबंधी क्षुधादि का दुःख या भोजनादि का सुख नहीं होता इसलिये उनके कवलाहार नहीं होता।' आहाहा ! (वे तो मानते हैं कि) भगवान को रोग हुआ ! खूनीदस्त (हुये)। भगवान को खून निकला। अररर...! कैसी कल्पना ! अरे...! (भगवान को) रोग कैसा ! खूनीदस्त छः महीना रहे। वे सब बातें बिलकुल झूठ (हैं) !

मल्लीनाथ स्त्री थे।. वह बिलकुल झूठ (बात है)। तीर्थंकर कभी स्त्री होते नहीं। आहाहा ! स्त्री को तीर्थंकरपना कहना ! स्त्री की मुक्ति कहना ! स्त्री को मुनिपना आता नहीं न

(तो मुक्ति तो कहाँ से हो ?) पाँचवाँ गुणस्थान आता है। वह किसे? कि, समकिती को। संप्रदाय के आग्रहवाले मिथ्यादृष्टि को तो समकित ही नहीं। किन्तु जिसे यथार्थ दिगंबर संप्रदाय मिला हो और उसमें से आत्मा की जिसे श्रद्धा हुई हो उसे बाद में पाँचवाँ (गुणस्थान) आता है। किन्तु छठा गुणस्थान सम्यक्‌दृष्टि स्त्री को आता नहीं। (श्वेतांबर) साधु-साध्वी को छठा गुणस्थान तीनकाल में है नहीं। (यदि माने तो) झूठी श्रद्धा (है) बिलकुल झूठ मार्ग है। यह तो मार्ग बापू ! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का है, भाई ! अन्य को दुःख लगता है (किन्तु मार्ग तो यह है)। आहाहा!

भगवान परमात्मा को रोग होता है और साधु को कहते हैं कि, जाओ ! आहार ले आओ और आहार लाकर देनेवाले का संसार कम हो गया ! ऐसा लिखा है। वह चर्चा भी गोंडल में हुई थी। भगवान को आहार होता ही नहीं। इसके बजाय (ऐसा कहे कि) रेवती ने आहार दिया (और उसका) संसार कम किया। अर्थात् संसार को संक्षिप्त कर दिया। आहाहा !

ऐसे तो विपाक(सूत्र) में १० सूत्र हैं। (आहार देनेवाले) मिथ्यादृष्टि अज्ञानी थे किन्तु साधु यथार्थ थे। वे साधु आये और उन्होंने आहारपानी का दान किया। उसका पूरा विपाकसूत्र बनाया है। आहारपानी देकर १०वें विपाक में संसार कम किया। पूरा विपाकसूत्र ही कल्पित (है)। वह बात सत्य नहीं। समझ में आया ? आहाहा! ऐसा है।

भगवान को दो माता-पिता तीनकाल में होते नहीं। एक ब्राह्मण पिता और एक क्षत्रिय - सिद्धार्थ पिता। सब कल्पित बातें ! श्वेतांबर शास्त्र अज्ञानी ने कल्पित बनाये हैं। केवली के (कहे) नहीं - मुनि के नहीं - समकिती के नहीं - अगृहीत मिथ्यादृष्टि के नहीं (गृहीत मिथ्यादृष्टि के हैं) ! ऐसा है, बापू !

(यहाँ कहते हैं) '**केवली भगवान के शरीर संबंधी क्षुधादि का दुःख या भोजनादि का सुख नहीं होता इसलिये उनके कवलाहार नहीं होता।**' विशेष कहेंगे।